Saurashtra University
Re – Accredited Grade 'B' by NAAC
(CGPA 2.93)

Odedara, P. H., 2008, "*आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में स्वतंत्रता संग्राम का चित्रण*", thesis PhD, Saurashtra University

http://etheses.saurashtrauniversity.edu/id/eprint/693

Copyright and moral rights for this thesis are retained by the author

A copy can be downloaded for personal non-commercial research or study, without prior permission or charge.

This thesis cannot be reproduced or quoted extensively from without first obtaining permission in writing from the Author.

The content must not be changed in any way or sold commercially in any format or medium without the formal permission of the Author

When referring to this work, full bibliographic details including the author, title, awarding institution and date of the thesis must be given.

Saurashtra University Theses Service
http://etheses.saurashtrauniversity.edu
repository@sauuni.ernet.in

© The Author

आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में स्वतंत्रता संग्राम का चित्रण

(DEPICTION OF MOVEMENT OF INDEPENDENCE IN MODERN HINDI NOVELS)

✰✰✰

सौराष्ट्र विश्वविद्यालय की पीएच.डी. (हिन्दी)
की उपाधि के लिए प्रस्तुत
शोध–प्रबंध

✰✰✰

✰ *अनुसंधित्सु* ✰
श्री पी. एच. ओड़ेदरा
हिन्दी–शिक्षक, देवड़ा हाइस्कूल, देवड़ा
ता. कुतियाणा
जि. पोरबंदर (सुदामापुरी)

✰✰✰

✰ *शोध निर्देशक* ✰
डॉ. एस. पी. शर्मा
पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष,
हिन्दी भवन,
सौराष्ट्र विश्वविद्यालय,
राजकोट

✰✰✰

वर्ष २००८

प्रमाणपत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **श्री पी. एच. ओड़ेदरा** द्वारा सौराष्ट्र विश्वविद्यालय – राजकोट की पीएच.डी. उपाधि हेतु – **''आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में स्वतंत्रता संग्राम का चित्रण''** विषय पर प्रस्तुत शोध–प्रबंध मेरे निर्देशन एवं निरीक्षण में तैयार किया गया है । इस शोध–प्रबंध में इन्होंने उक्त विषय का यथाशक्ति अध्ययन, अनुशीलन एवं शोधपरक विश्लेषण–विवेचन करके वैज्ञानिक ढंग से मौलिक निरूपण किया है ।

साथ ही, यह शोध–प्रबंध अथवा इसका कोई अंश न तो प्रकाशित हुआ है और न ही इसका कोई अन्य उपयोग हुआ है ।

राजकोट
दिनांक :

निर्देशक

डॉ. एस. पी. शर्मा
पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष,
हिन्दी भवन,
सौराष्ट्र विश्वविद्यालय,
राजकोट

भूमिका

किसी भी राष्ट्र के विकास एवं पतन में साहित्य की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है । साहित्य समाज की मूल्यवान धरोहर है । साथ ही साथ साहित्य समाज का दर्पण भी है । जिस तरह बिना सूर्य के चारों ओर अंधकार होता है उसी प्रकार बिना साहित्य कोई भी देश प्रकाशित नहीं हो सकता । भारतीय साहित्य मंगलकारी और कल्याणकारी रहा है । इसमें समन्वय की भावना चिरकाल से विद्यमान रही है साथ ही साथ भारतीय साहित्य हमेशा मानवीय एवं राष्ट्रीय एकता और अखंण्डता का पक्षधर रहा है ।

मानवजीवन के सर्वाधिक सन्निकट होने के कारण आधुनिक युग में उपन्यास साहित्य ने बड़ी शक्ति एवं महत्त्व प्राप्त कर लिया है । अब वह केवल मनोरंजन का साधन अथवा कल्पित गद्य कथा मात्र नहीं है, बल्कि मानवजीवन का ऐसा गद्य है जिसमें मनुष्य को समग्रता से समझने और अभिव्यक्त करने का प्रयास किया जाता है ।

हिन्दी उपन्यास की परंपरा अभी केवल सौ वर्ष पुरानी है, लेकिन इतने कम समय में ही वह एक शक्तिशाली संभावना पूर्ण साहित्यिक विद्या के रूप में उभरकर सामने आई है । आज के उपन्यास की परिधि जीवन के सभी अंगों और क्षेत्रों तक फैल गई है । क्योंकि जीवन का यथार्थ चित्रण उपन्यास में ही अधिक होता है । साहित्य मनीषियों ने भी उपन्यास को जीवन तथा समाज की व्याख्या का सर्वोतम साधन माना है । पिछली सदी में उपदेश कथाओं के रूप में (जातक कथा) आरंभ हुई हिन्दी की औपन्यासिक परंपरा प्रेमचंद युग में यथार्थवाद से समन्वित हो गई । आज का हिन्दी उपन्यास सृजन और

अभिव्यक्ति के नूतन आयामों के अन्वेषण और प्रयोग के साथ ही भारतीय समाज एवं जन जीवन की आशा–आकांक्षा, सुख–दुःख, समता–विषमता, सहजता, जटिलता, भय, प्रेम, आदि का यथार्थ चित्रण करता है इस प्रकार उपन्यास आधुनिक भारतीय साहित्य का एक विश्वसनीय दस्तावेज है ।

सभी साहित्यिक विधाओं में संभवतः उपन्यास ही एक ऐसी विधा है जिसमें परिवार का उसके समग्र रूप में चित्रण हो सकता है और होता है । उपन्यास मानवजीवन को अधिक समग्रता में उसके सभी संबंधों और रूपों में प्रस्तुत करता है । मानवजीवन के साथ ही उपन्यास में राष्ट्रीय एवं युगजीवन की समस्याओं का चित्रण पाया जाता है । देश, समाज या राष्ट्र में कोई हल–चल या प्रवाह प्रवाहित होता है तो उससे प्रभावित हुए बिना उपन्यासकार रह ही नहीं सकते ।

प्रस्तुत शोध–प्रबंध में मैंने आधुनिक काल के हिन्दी उपन्यासों में वर्णित भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का विश्लेषण एवं समीक्षा करने का अल्प प्रयास किया है, क्योंकि भारतवर्ष में पराधीनता के इतिहास का अपना एक विशेष महत्त्व रहा है । दो सौ से अधिक वर्षों तक गुलामी झेलने के बाद भारतीय जनता पराधीनता की जंजीरों को तोड़ने के लिए मचल उठी थी । इस देश में से अंग्रेजों को निष्कासित करने के लिए, समय–समय पर विभिन्न राष्ट्रीय आंदोलन उठ खड़े हुए थे एवं जनता में क्रांति का शंख फूँका गया था । राष्ट्र की इन सारी परिस्थितियों के चक्र से प्रभावित होकर पूर्व प्रेमचंद युग और प्रेमचंदोत्तरकाल के उपन्यासकारों ने उपन्यासों का सृजन किया था । इन उपन्यासों में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की घटनाओं का अन्वेषण एवं विश्लेषण करना इस शोध–प्रबंध की विशेषता है ।

✰ प्रस्तुत विषय के अध्ययन की प्रेरणा :

बाल्यावस्था से ही प्राचीन कथाएँ एवं कहानियाँ सुनने का शौकीन रहा हूँ । जब मैं छोटा था तब मुझे अपने माता–पिता, जिन्होंने पराधीन भारत की तस्वीर देखी थी, पराधीनता के युग में भारत देश में चलाये गये क्रांतिकारी आंदोलनों की घटनाएँ सुनाया करते थे । इसके अतिरिक्त प्राथमिक एवं हाईस्कूल की शिक्षा के दौरान भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की विभिन्न घटनाओं के पाठ पढ़ने का मौका मिला था । आगे स्नातक एवं स्नातकोत्तर शिक्षा की कक्षाओं में पाठयक्रम के रूप में हिन्दी साहित्य का इतिहास पढ़ने का मौका मिला था । इतिहास में भी पहले से ही मेरा लगाव आधुनिक काल एवं उपन्यासविधा के प्रति रहा है । अतः मैंने जब स्नातकोत्तर कक्षा में मेरे गुरु डॉ. शर्मा साहब के सामने जब यह जिज्ञासा प्रकट की कि मैं आधुनिक हिन्दी उपन्यास एवं स्वतंत्रता संग्राम पर शोध करना चाहता हूँ तो उन्होंने मेरी रुचि के अनुसार विषय सूचित किया । आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का चित्रण विषय पर शोध कार्य करने की प्रेरणा दी तथा उनके निर्देशन में मैंने इस शोध–प्रबन्ध का प्रणयन किया है ।

मेरे लिए सौभाग्य की बात यह रही है कि डॉ. शर्मा जी जैसे विद्वान व्यक्ति का मुझे पूर्ण सहयोग मिला है । जब मुझे आवश्यकता होती तब मैं दौड़कर उनके पास जाता । उन्होंने समय–समय पर मुझे मार्गदर्शन प्रेरणा एवं संबल प्रदान किया है । निराशा के क्षणों में आशा की किरणें दिखाई हैं । उन्हीं की छत्रछाया में मैंने आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में स्वतंत्रता संग्राम का चित्रण शीर्षक तय किया और प्रस्तुत शोध–ग्रंथ उसी की फलश्रुति है ।

✰ प्रस्तुत विषय के अध्ययन की आवश्यकता :

राष्ट्र के उत्थान एवं पतन में समाज की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है । वस्तुतः जैसा समाज होता है, उसके अनुरूप ही राष्ट्र की तस्वीर

निर्मित होती है । जिस तरह मानव की समस्त शारीरिक संरचना रीढ़ पर ही आधारित है उसी प्रकार राष्ट्र की भव्यतम इमारत की नींव उसका आदर्श समाज ही है । इतिहास इस चिरंतन सत्य का साक्षी रहा है कि जब भी समाज का स्वरूप विघटित हुआ है तब परिवर्तनकारी, युगीन सामाजिक स्वरूप के प्रभाव वश राष्ट्र के स्वरूप में भी परिवर्तन–विघटन हुआ है ।

आज का युग विज्ञान का युग रहा है । इस युग में हम देखते हैं कि समाज–राष्ट्र में अनेक परिवर्तन आये, परंतु विज्ञान के विविध आविष्कारों के बीच भी हम जानते हैं कि मानव इतना अकेला हो गया कि इसमें प्रेम, दया, ममता, स्नेह आदि का अभाव मिलता है । देश–देश में भी एकता का अभाव सा छा गया । इन सबका कारण बन गया संघर्ष ।

हम जानते हैं कि आज मानव युद्ध के कगार पर खड़ा है । ऐसे संघर्ष के युग में हमारा देश जो पराधीनता की जंजीरों में जकड़ा हुआ था उसकी याद आज आती है । ऐसे संघर्षमय काल में मेरी दृष्टि में समाज–राष्ट्र में यदि कोई जाग्रति ला सकता है तो केवल साहित्यकार ही । भारतवर्ष की पराधीनता एवं संघर्ष के समय में आधुनिक काल के हिन्दी उपन्यासकारों ने राष्ट्रीय समस्याओं के चित्रण के साथ ही साथ भारतीय जनता में क्रांति का शंख फूँककर उसे जाग्रत करने का जबरदस्त प्रयास किया था । आधुनिक हिन्दी उपन्यासकार प्रेमचंद, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', प्रसाद, निराला, अज्ञेय, नागार्जुन, जैनेन्द्रजी, धर्मवीर भारती, भीष्मसाहनी, कमलेश्वर, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों के द्वारा राष्ट्रीय जीवन की जाग्रति और जनता में एकता एवं संगठन के लिए अभूतपूर्व योगदान दिया है ।

प्रस्तुत शोधग्रंथ के अध्ययन से आधुनिक काल के प्रमुख उपन्यासकारों का संदेश भी मुखरित हो सका है जिसके माध्यम से वे तत्कालीन समाज और

राष्ट्र को उन्नत बनाना चाहते थे । राष्ट्र की उन्नति और राष्ट्र के अतीत चित्रण में आधुनिक हिन्दी उपन्यासकारों की महती भूमिका को रेखांकित करना इस शोध अध्ययन की सब से बड़ी उपलब्धि है ।

✰ प्रस्तुत विषय का महत्त्व :

विश्व में प्रत्येक वस्तु का अपना विशेष महत्त्व होता है । इस दृष्टि से किसी विषय का शोध परक अध्ययन तो और भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है । वस्तुतः अध्ययन की प्रक्रिया, ज्ञान से संबद्ध है । ज्ञान निश्चय ही मस्तिष्क को तर्क–वितर्क, सही–गलत, अच्छा–बुरा आदि के संदर्भ में नया आयाम प्रदान करता है ।

आधुनिक काल में हिन्दी के पूर्व प्रेमचंद्युग – प्रेमचंद्युग और प्रेमचंदोत्तर युग के उपन्यासों में हमारे देश के स्वाधीनता संग्राम के जितने आयाम, घटनाएँ, चरित्र चित्रित हुए हैं, उन पर पुनः विचारणा एवं अन्वेषण करते हुए उनके राष्ट्रीय महत्त्व को प्रकाशित करना इस शोध–ग्रंथ की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है ।

इस विषय का महत्त्व अपने आप में पूर्ण है । आज देश की परिस्थितियाँ पराधीनता जैसी ही हैं । हमें राष्ट्रीय साहित्यकारों के साहित्य से प्रेरित होकर राष्ट्रीय जाग्रति लाने का प्रयास करना चाहिए ।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के चितेरे – प्रेमचंद, प्रसाद निराला, कमलेश्वर, बालकृष्ण शर्मा, 'नवीन' अज्ञेयजी, सुबद्राकुमारी चौहान, धर्मवीर भारतीय, नागार्जुन आदि के उपन्यासों में हमें राष्ट्रप्रेम की झांकी दिखाई देती है । इस साहित्य से राष्ट्र के नवनिर्माण व समृद्धि का मार्ग प्रशस्त होता है । प्रस्तुत विषय का अध्ययन इस अर्थ में भी महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगा ।

✰ विषय क्षेत्र एवं सीमाएँ :

'आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में स्वतंत्रता संग्राम का चित्रण' करना प्रस्तुत शोध–प्रबंध का उद्देश्य है । युगीन संदर्भ में देखा जाय तो सन् १८५७ में एक ओर हिन्दी–साहित्य में नवजागरणकाल या आधुनिककाल की शुरुआत हो रही थी तो दूसरी ओर उसी समय भारतवर्ष में अंग्रेजी हुकूमत की स्थापना हो रही थी । उस हुकूमत के खिलाफ ही सन् १८५७ में भारत की ओर से विप्लव किया गया था । बदकिस्मती से उस स्वतंत्रता संग्राम में भारतीय जनता को असफलता मिली थी । इस प्रकार आधुनिककाल का प्रथम चरण आंदोलन से भरपूर है । उस काल में देशभक्ति की सभी शक्तियाँ सामूहिकरूप से स्वराज्य प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील दिखाई पड़ती हैं ।

युगीन संदर्भ में आधुनिक–हिन्दी साहित्य तत्कालीन विभिन्न भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम के आंदोलनों से प्रभावित है । आधुनिक हिन्दी साहित्य, एक मिशन के रूप में था । मैंने प्रबंध की मर्यादा को ध्यान में रखते हुए इस शोध–अध्ययन को बृहद रूप न देकर संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया है । अर्थात् मैंने 'आधुनिक–हिन्दी–साहित्य' में से केवल उपन्यासों में ही भारतीय स्वाधीनता संग्राम के चित्रण तक ही अपने अध्ययन को मर्यादित रखा है ।

हिन्दी–साहित्य के आधुनिककाल – पूर्व प्रेमचंद युग, प्रेमचंद युग और प्रेमचंदोत्तर युग के उपन्यासकार अपने युगीन प्रभाव से अछूते नहीं रहे, बल्कि यह कहना अनुचित नहीं होगा कि आधुनिककाल के हिन्दी उपन्यासकारों ने स्वतंत्रता प्राप्ति के महायज्ञ में हिस्सा लेते हुए अपनी लेखनी द्वारा उस पराधीनता के काल को चित्रित किया है । अतः मैंने युगीन संदर्भ को अपने अध्ययन की सीमा में लेते हुए आधुनिक हिन्दी उपन्यासकारों के उपन्यासों में वर्णित भारतीय स्वाधीनता संग्राम के चित्रण की समीक्षा की है ।

प्रबंध का शीर्षक है – 'आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में स्वतंत्रता संग्राम का चित्रण' जैसा कि शीर्षक से ही सुविदित है कि मैंने आधुनिककाल को पूर्व प्रेमचंद युग, प्रेमचंद युग और प्रेमचंदोत्तर युग के उपन्यासकारों के कथ्यपक्ष को चुना है । अर्थात् आधुनिककाल के हिन्दी उपन्यासकारों के उपन्यासों में चित्रित स्वतंत्रता संग्राम के चित्रण की समीक्षा तक ही अध्ययन को मर्यादित रखा है । वस्तुतः आधुनिककाल के (पूर्व प्रेमचंद युग, प्रेमचंद युग और प्रेमचंदोतर युग) उपन्यासकारों के उपन्यासों में अनुस्यूत भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के विभिन्न आयाम, प्रवृत्तियाँ एवं घटनाओं, प्रसंगों, चरित्रों का विवेचना करना ही मेरे शोध–प्रबंध का विषय क्षेत्र है ।

✰ पूर्ववर्ती शोध–कार्य :

हिन्दी–भाषा के शोध इतिहास पर दृष्टिपात करें तो आधुनिक हिन्दी साहित्य और भारतीय स्वाधीनता संग्राम के चित्रण के विषय में एकाधिक अनुसंधान हुए हैं । साथ ही साथ आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में भारतीय स्वाधीनता संग्राम के चित्रण को लेकर शोधपूर्ण तथा आलोचनात्मक साहित्य प्राप्त होता है । हमारी जानकारी के अनुसार आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में भारतीय स्वाधीनता संग्राम के चित्रण के विषय में उपाधि सापेक्ष एवं उपाधि निरपेक्ष निम्नलिखित कार्य उपलब्ध हैं :

१. हिन्दी उपन्यास : स्वातंत्र्य संघर्ष के विविध आयाम, डॉ. देवदत्त तिवारी
२. प्रेमचंद के उपन्यासों में स्वाधीनता संघर्ष का चित्रण (लघुशोध–ग्रंथ) दुधात्रा हर्षाबहन वी.
३. उपन्यासों में राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन की चेतना का स्वरूप, यशपाल
४. प्रेमचंद युग के उपन्यास साहित्य का दृष्टिकोण, डॉ. मोहनलाल रत्नाकर
५. हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों का अनुशीलन, ब्रजभूषणसिंह आदर्श
६. राष्ट्रीय आंदोलन का इतिहास, मन्मथनाथ गुप्त

७. भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन का इतिहास, मन्मथनाथ गुप्त
८. भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, डॉ. ताराचंद
९. प्रेमचंद एक अध्ययन, इन्द्रनाथ मदान
१०. भारत का प्रथम स्वातंत्र्य संग्राम, कार्ल मार्क्स तथा फ्रे. एंगेल्स, (अनु. रमेश सिन्हा)
११. उन्नीसवीं शताब्दी के हिन्दी उपन्यासकार, विश्वंभर, मानव
१२. आधुनिक हिन्दी–साहित्य, लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
१३. स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य, डॉ. रामविलास शर्मा
१४. भारतीय राष्ट्रवाद के विकास की हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्ति, सुषमा नारायण ।

इन सारे शोध ग्रंथों को देखते हुए ऐसा लगता है कि आधुनिक उपन्यास साहित्य और उसमें भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के चित्रण के विषय में प्रस्तुत शोधकार्य स्वतंत्र, नवीनतम एवं महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगा ।

✰ सामग्री–संकलन के सूत्र :

किसी भी शोध–कार्य के लिए सर्वप्रथम शोधार्थी को अपने आप में मानसिक रूप से तैयार होना पड़ता है । शोधकार्य की प्रक्रिया अत्यंत जटिल तथा श्रमसाध्य होती है, इस तथ्य को नजर अंदाज नहीं किया जा सकता । प्रस्तुत शोध–प्रबंध–संबंधी अपेक्षित सामग्री के संचयन में मुझे सख्त मेहनत एवं कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है ।

शोध–कार्य के प्रारंभ में मैंने हिन्दी–साहित्य की राष्ट्रीय काव्यधारा यानी भारतीय स्वाधीनता संग्राम विषयक आलोचनात्मक ग्रंथों को ढूँढ़ना शुरू किया । शोध के दौरान मेरे हाथ 'हिन्दी उपन्यास में स्वातंत्र्य संघर्ष के विविध आयाम' (ले. डॉ. देवदत तिवारी) पुस्तक लगी । जिस पुस्तक की सहायता से मेरा बहुत सारा काम आसान हो गया । दूसरा दुधात्रा हर्षाबहन लिखित 'प्रेमचंद के

उपन्यासों में स्वाधीनता – संघर्ष का चित्रण' नामक लघु–शोध प्रबंध मिला । इन दोनों ग्रंथों ने मेरी शोधयात्रा को गतिशील एवं सरल बनाया ।

आधुनिककाल के उपन्यास और उसमें भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के चित्रण को लेकर मुझे काफी पापड़ बेलने पड़े । फिर भी विश्वंभर मानव लिखित 'उन्नीसवीं शताब्दी के उपन्यासकार' एवं सुरेश सिंहा रचित 'हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास' दोनों सहायक ग्रंथों से आधुनिक हिन्दी उपन्यासों के विषय में काफी जानकारी प्राप्त हो गई ।

हिन्दीतर क्षेत्र में रहकर शोधकार्य के लिए संदर्भ ग्रंथ जुटाना अपने आप में एक कठिन कार्य है । तदपि सौराष्ट्र विश्वविद्यालय ग्रंथालय – राजकोट, हिन्दी भवन, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय ग्रंथालय – राजकोट, गुजरात विद्यापीठ ग्रंथालय – अहमदाबाद, देवड़ा हाईस्कूल ग्रंथालय – देवड़ा, श्री एस. एम. जे. कोलेज ग्रंथालय – कुतियाणा, श्री सरस्वती महिला विद्यालय ग्रंथालय – कुतियाणा एवं विभिन्न प्रकाशन संस्थाओं तथा प्रकाशकों से फोन एवं पत्रव्यवहार के द्वारा मैंने विभिन्न सहायक एवं संदर्भग्रंथ प्राप्त किये ।

मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि उक्त ग्रंथालयों से अपने विषय से संबंधित ग्रंथों का मैंने प्रचुर मात्रा में उपयोग किया । इस प्रकार मेरी सामग्री–संकलन की जटिल यात्रा पूरी हुई और इसके फलस्वरूप यह शोध–प्रबंध प्रस्तुत हो सका है ।

✰ प्रबंध सारांश :

प्रस्तुत शोध–अध्ययन कुल मिलाकर पाँच अध्यायों में विभाजित है । 'भूमिका' और 'उपसंहार' अध्यायविहीन है । संपूर्ण प्रबंध का सारांश निम्नलिखित रूप में है –

प्रथम अध्याय :

'आधुनिककाल की विभिन्न परिस्थितियाँ'

प्रस्तुत शोधकार्य के शीर्षक का संबंध आधुनिककाल के साथ है । अतः आधुनिककाल की विभिन्न परिस्थितियों से अनुप्राणित होता है । परतंत्रताकालीन भारत का माहौल ही कुछ इस प्रकार का था कि भावुक संवेदनशील साहित्यकार के लिए उससे अपरिचित रहना संभव नहीं था । अतः आधुनिककाल (सन् १८५७ ई. से आजतक) के स्वातंत्र्यपूर्व एवं स्वातंत्र्योत्तरकालीन उपन्यासकारों ने अपने युग की समकालीन राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक तथा साहित्यिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर उपन्यास साहित्य की रचना की थी । आधुनिककाल की विभिन्न परिस्थितियों का आकलन प्रस्तुत अध्याय में किया गया है ।

द्वितीय अध्याय :

'भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम के विविध आयाम'

प्रस्तुत शोध-प्रबंध के द्वितीय अध्याय का शीर्षक है – 'भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम के विविध आयाम ।' अंग्रेजों ने दो सौ साल के लम्बे शासनकाल के दौरान भारतवर्ष में अपने शासन की नींव मजबूत कर ली थी । इस लंबे शासनकाल में भारतीय जनता का हर तरह से शोषण किया गया । इस शोषण से व्यथित होकर भारतीय जनता ने पराधीनता का अहसास किया था । भारतदेश को इस परतंत्रता के पाश से मुक्त कराने के लिए इस देश में राष्ट्रीय उन्नायकों, चिंतकों द्वारा विभिन्न अभियान चलाये गये थे । दूसरे शब्दों में राष्ट्रीय मुक्ति का आंदोलन चलाया गया था । अतः प्रस्तुत अध्याय में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के विविध आयामों एवं घटनाओं – कांग्रेस के विभिन्न अधिवेशन, जलियाँवालाबाग हत्याकांड, बंगाल का अकाल, भारत- पाकिस्तान विभाजन, हिन्द छोड़ो आंदोलन, नमक सत्याग्रह, असहयोग आंदोलन इत्यादि का जिक्र किया गया है ।

तृतीय अध्याय :

‘स्वतंत्रता संग्राम से प्रभावित हिन्दी उपन्यासों का परिचय’

तृतीय अध्याय का शीर्षक है – ‘स्वतंत्रता संग्राम से प्रभावित हिन्दी उपन्यासों का परिचय ।’ प्रस्तुत अध्याय में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की घटनाओं से प्रभावित होकर स्वातंत्र्य–पूर्व एवं स्वातंत्र्योत्तरकालीन उपन्यासकारों की औपन्यासिक रचनाएँ – चंद हसीनों के खतूत, गोदान, कर्मभूमि, रंगभूमि, वरदान, गबन, कायाकल्प, प्रेमाश्रम, चंद्रकांता, जागरण, मनुष्यानंद / बुधुवा की बेटी, सरकार तुम्हारी आँखों में, सत्याग्रह, सुनीता, मुक्तिबोध, त्यागपत्र, मेरा देश, राम–रहीम, गांधी टोपी, पुरुष और नारी, दो पहलू, निमंत्रण, टेढ़ेमेढ़े रास्ते, हृदयमंथन, चलते–चलते, पतवार, सुखदा, विवर्त, जयवर्धन, कल्याणी, आत्मदाह, निशिकांत, गाँधीवादी चबूतरा, बलि का बकरा, दादा कामरेड, देशद्रोही, शेखर : एक जीवनी, पार्टी कामरेड, चढ़ती धूप, नई इमारत, अल्का, मनुष्य के रूप, विसर्जन, झूठासच, मशाल, सतीमैया का चौरा, बीज, बलचनमा, बाबा बटेशरनाथ, रतिनाथ की चाची, रंगमंच, प्रतिशोध, मृत्युकिरण, रक्तमंडल, सफेद शैतान, निर्वासित, जययात्रा, मैला आँचल, स्वाधीनता के पथ पर, अमरबेल, भँवरजाल, डॉ. शेफाली, शेष–अवशेष, प्रत्यागत, विद्या, बयालीस, अप्सरा, उलका, कुल्लीभाट, आत्मदाद, घृणामयी, मुक्तिपथ, पथिक, चढ़ती धूप, विषादमठ, गिरती दीवारें, महाकाल, स्वराज्यदान, देश की हत्या, स्वतंत्र भारत, अनबुझी प्यास, मुक्ति के बंधन, बयालीस के बाद, संक्रांति, इन्सान, पूरब और पश्चिम, बुझते दीप, ज्वालामुखी, भूले बिसरे चित्र, रूपजीवा दो–दुनिया, रैनअंधेरी, अपराजित, तमस इत्यादि उपन्यासों का सांकेतिक रूप से परिचय दिया गया है ।

चतुर्थ अध्याय :

‘आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में स्वतंत्रता संग्राम का चित्रण’

चतुर्थ अध्याय का शीर्षक है – आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में स्वतंत्रता संग्राम का चित्रण । प्रस्तुत अध्याय में सन् १८५७ से लेकर सन् १९६० तक

के हिन्दी उपन्यासों में निरूपित भारतीय सवतंत्रता संग्राम के चित्रण को आलेखित किया गया है । क्योंकि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की वास्तविक शुरुआत सन् १८५७ के प्रथम विप्लव से होती है और अंत महात्मा गाँधीजी की मृत्यु से होती है । अतः इन प्रमुख दो धारा–प्रवाहों में विभाजित हिन्दी उपन्यासों का चित्रण किया गया है ।

पंचम अध्याय :

'भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के परिप्रेक्ष्य में आधुनिक हिन्दी उपन्यासों का मूल्यांकन'

प्रस्तुत अध्याय में भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम की प्रमुख घटनाओं एवं वादों गाँधीवाद, आश्रम स्थापना, आतंकवाद, गदर आंदोलन, राजनीतिक डकैतियाँ, काकोरी–ट्रेन–कांड, अधिकारीवर्ग की हत्याएँ, समाजवाद, मजदूर–आंदोलन, चौराचौरी हिंसात्मक घटनाकांड, कृषक आंदोलन, ग्राम्य जागरण, नारी–जागरण, अछूतोद्धार–आंदोलन, हिन्दू–मुस्लिम ऐक्य, स्वदेश प्रेम, स्वभाषा–प्रेम, स्वदेशीवस्तु का प्रचार, नमक सत्याग्रह, कांग्रेस अधिवेशन, जलियाँवालाबाग हत्याकांड, रोलेट एक्ट, साइमन कमिशन–विरोध, बंगाल काल, भारत–पाकिस्तान विभाजन, गाँधी हत्या आदि विभिन्न घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में आधुनिक हिन्दी उपन्यासों की समीक्षा की गई है । इस शोध अध्याय में घटना एवं चरित्र को प्राधान्य दिया गया है । प्रेमचंद पूर्वयुग, प्रेमचंद्युग एवं प्रेमचंदोत्तरकालीन उपन्यासों में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की प्रमुख घटनाओं एवं भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के क्रांतिवीरों से प्रभावित आधुनिक हिन्दी उपन्यासों की समीक्षा की गई है । यह अध्याय शोध–ग्रंथ का महत्त्वपूर्ण अध्याय है । प्रस्तुत अध्याय में भारतीय स्वातंत्र्य–संग्राम की घटनाओं एवं चरित्रों से संबंधित उपन्यासों की समीक्षा को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है ।

शोध–प्रबंध के अंत में 'उपसंहार' दिया गया है । 'उपसंहार' में सारांश के रूप में संपूर्ण शोध–प्रबंध का परिचय दिया गया है । साथ ही भारतीय

स्वतंत्रता संग्राम की घटनाओं को पुनः स्मृति पर लाने का प्रयत्न किया गया है । भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास का उपन्यासों पर प्रभाव रेखांकित करना इस शोध–अध्ययन की सबसे बड़ी विशेषता है । साथ ही राष्ट्रीय आंदोलन में वैचारिक दृष्टि से योग देनेवाले उपन्यासकारों के योगदान को निरूपित करना शोध–प्रबंध की उपलब्धि मानी जायेगी ।

✰ कृतज्ञताज्ञापन :

प्रस्तुत शोध–प्रबंध परम आदरणीय विद्वान गुरुवर्य डॉ. एस. पी. शर्मा, पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी–भवन, सौराष्ट्र विश्वविदालय, राजकोट के कुशल निर्देशन एवं पर्यवेक्षण में तैयार किया गया है । आपके सुयोग्य, विद्वतापूर्ण मार्गदर्शन के बिना शोध–कार्य करना मेरे लिए संभव नहीं था । आपने विषय–चयन से लेकर शोध–प्रबंध प्रस्तुति तक मूल्यवान निर्देश दिये हैं । आपके समक्ष अंतःकरणपूर्वक आभारनत ही नहीं, बल्कि नतमस्तक होकर आपका ऋण स्वीकार करता हूँ ।

डॉ. शर्मा साहब की धर्मपत्नी श्रीमती शान्ताबहन शर्मा, एवं आपके समग्र परिवार ने मुझे सदैव प्रोत्साहित किया । अतः आप सभी परिवारजनों के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ ।

इस साधना यात्रा में मेरे स्नातकोत्तर अध्ययन के श्रद्धेय गुरुवर्य डॉ. गिरीशभाई त्रिवेदी (पूर्व प्राध्यापक, हिन्दी भवन, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट) ने समय–समय पर शोधकार्य–संबंधी सुयोग्य मार्गदर्शन दिया है । अतः आपका भी कृतज्ञ हूँ । आपके ही सहयोगी डॉ. बी. के. कलासवाजी (अध्यक्ष, हिन्दी भवन, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट) की ओर से आधुनिक–हिन्दी उपन्यास साहित्य के विषय में हर वक्त समुचित मार्गदर्शन मिलता रहा । आप हिन्दी साहित्य के इतिहास के विद्वान हैं । अतः आपके प्रति भी आभारनत हूँ ।

मेरी स्नातकस्तर की शैक्षिक संस्था श्री एस. एम. जे. कोलेज के प्रिन्सिपल एवं मेरे बंधु डॉ. नवघणभाई ओड़ेदरा ने अपने कॉलेज के ग्रंथालय से पुस्तकें उपलब्ध करवाके विषय के संदर्भ में सुयोग्य मार्गदर्शन दिया है । अतः आपके प्रति अहसाननत हूँ । मेरे स्नातकस्तर की शिक्षा एवं हिन्दी शिक्षा के गुरुवर्य डॉ. जोषी साहब (श्री एस. एम. जे. कोलेज, कुतियाणा) की ओर से साथ, सम्बल एवं निराशा के क्षणों में आशा की किरणें दिखाई देती रहीं, अतः आप सभी गुरुजनों के प्रति नतमस्तक हूँ ।

मेरे देवड़ा हाईस्कूल के प्रिन्सिपल भलाणी साहब तथा स्टाफ मित्रों–विशेषकर मेरी सहधर्मिणी गीता ओड़ेदरा, जिन्होंने शोध–प्रबंध विषयक सुझाव तथा विभिन्न पुस्तकें उपलब्ध कराने में सहयोग दिया है । अतः आप सभी के प्रति मैं अपना सद्भाव व्यक्त करता हूँ ।

मैं विभिन्न ग्रंथालयों के नामी ग्रंथपालों का आभार मानता हूँ जिनकी सहायता से मैंने सामग्री प्राप्त की । विशेष रूप से सौराष्ट्र युनिवर्सिटी ग्रंथालय के ग्रंथपाल श्री सोनी साहब तथा मेरे हाईस्कूल के ग्रंथालय के इन्चार्ज प्रिन्सिपल का शुक्रगुजार हूँ ।

प्रस्तुत शोध–प्रबंध में मेरी ममतामयी स्वर्गस्थ माताजी, मेरे पिताजी हाजाभाई ओड़ेदरा तथा सहधर्मचारिणी गीता ओड़ेदरा की सदभावनाएँ – शुभकामनाएँ मेरा सम्बल रही हैं । जिन्होंने मुझे हमेशा प्रस्तुत प्रबंध की पूर्ति के लिए प्रोत्साहित बनाये रखा । निराशा एवं मायूसी के क्षणों में आशा की किरणें दिखाकर ढाढ़स बँधाने का हमेशा प्रयत्न किया ।

विनीत

पी. एच. ओड़ेदरा

अनुक्रमणिका

	पृष्ठ क्रमांक
प्रथम अध्याय	१–२४
आधुनिककाल की विभिन्न परिस्थितियाँ	
दूसरा अध्याय	२५–७७
भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के विविध आयाम	
तीसरा अध्याय	७८–१२६
स्वतंत्रता संग्राम से प्रभावित हिन्दी उपन्यासों का परिचय	
चतुर्थ अध्याय	१२७–२७२
आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में स्वतंत्रता संग्राम का चित्रण	
पंचम अध्याय	२७३–२९८
भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के परिप्रेक्ष्य में आधुनिक हिन्दी उपन्यासों का मूल्यांकन	
उपसंहार	२९९–३०७
परिशिष्ट	३०८–३१८
ग्रंथानुक्रमणिका	
(क) आधार ग्रंथ	
(ख) सहायक ग्रंथ सूची	
(ग) हिन्दी पत्रपत्रिकाएँ	

प्रथम अध्याय
आधुनिककाल की विभिन्न साहित्यिक परिस्थितियाँ

- ✪ प्रस्तावना (नामकरण व सीमा निर्धारण)
- ✪ आधुनिक काल की परिस्थितियाँ

(I) राजनीतिक परिस्थिति
(II) धार्मिक एवं सामाजिक परिस्थिति
(III) आर्थिक परिस्थिति
(IV) साहित्यिक परिस्थिति

- ✪ भारतीय राष्ट्रीय नव चेतना : सांस्कृतिक जागरण

(I) ब्रह्मसमाज
(II) प्रार्थनासमाज
(III) आर्यसमाज
(IV) रामकृष्ण मिशन
(V) थियोसोफिकल सोसायटी
(VI) अरविंद दर्शन

- ✪ उपसंहार

प्रथम अध्याय
आधुनिककाल की विभिन्न साहित्यिक परिस्थितियाँ

✰ आधुनिककाल का नामकरण व सीमा निर्धारण :

वैसे तो काल एक अखंड, अनंत व अविरल प्रवाह परंपरा है किन्तु उसे सुविधा के लिए कुछ खंडों में विभाजित कर लिया जाता है । काल विभाजन की सामान्य पद्धति है कि उसे आदि, मध्य और आधुनिक रूप में विभक्त करने की । इस दृष्टि से आचार्य शुक्ल जी ने हिन्दी के उत्तर मध्य अर्थात् रीतिकाल के अनन्तर आधुनिक काल को माना है । जिसे उन्होंने इस काल में गद्य की प्रधानता को लक्ष्य रखकर गद्यकाल की संज्ञा से अभिहित कर दिया है । आधुनिककाल निश्चित रूप से कई दृष्टियों से रीतिकाल से भिन्न है भक्तिकाल का साहित्य आमुष्मिक्ता से अनुप्रेरित होते हुए भी जनता का साहित्य है और रीतिकाल का साहित्य बहुधा दरबारों का साहित्य है वह अधिकतर राजकिय मनोवृत्ति तथा आश्रयदाताओं की तुष्टि को लक्ष्य रखकर लिखा गया है । आधुनिक काल का हिन्दी साहित्य भारतीय समाज के एक सर्वथा नवीन वर्ग की वाणी को मुखरित करता है जो वर्ग की नवीन शासन प्रणाली तथा नयी अर्थ व्यवस्था के परिणाम स्वरूप पीड़ित व शोषित था, वह था जनता का सामान्य और मध्यवर्ग । पूर्वकालों के साहित्यकारों ने बहुधा सामयिक समस्याओं को और संघर्षो के प्रति उपेक्षा भाव रखकर साहित्य में स्थायी और शाश्वत मूल्यों को स्थान दिया किन्तु आधुनिककाल के साहित्य में वास्तविक अर्थों में आधुनिक जीवन की आवश्यकताओं और इसके महत्त्वपूर्ण प्रश्नों को रूपायित किया गया और विशेष रूप से इसका गद्य साहित्य जीवन के यथार्थ चित्रण का विषय बना । इस प्रकार साहित्य में जीवन का अधिक व्यापक चित्रण होने से वह हमारे आधुनिक काल के अधिक निकट आ सका । इस रूप में

आधुनिककाल, विगत के मध्यकाल से भिन्न ठहरता है । इसके उपरांत आधुनिक युग की पीठिका के रूप में जिन उन्नायकों राजा राममोहनराय से लेकर स्वामी विवेकानंद एवं अरविंद जैसे दार्शनिकों, विचारकों एवं समाज सुधारकों ने जिस राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक जागरण का उपस्थापन किया उसमें लौकिकता के साथ आध्यात्मिकता व पारमार्थिकता अभिन्न रूप से जुड़ी हुई है ।

आचार्य शुक्ल जी ने आधुनिक काल को तीन चरणों में विभक्त कर यह संकेतित कर दिया कि इन्हें क्रमशः भारतेन्दुकाल और द्विवेदीकाल भी कहा जा सकता है । तीसरे चरण को शायद उसके प्रवाहमय रूप के कारण उन्होंने कोई नाम नहीं दिया । शुक्लजी ने तृतीय उत्थान के लिए किसी अन्य विशिष्ट नाम का प्रयोग नहीं किया जिसे बहुधा छायावादकाल या प्रसादकाल कह दिया जाता है किन्तु आज के बहुत से आलोचक विद्वान इतिहासकार इसे स्वच्छंदवादी काल कहना, अधिक तर्कसंगत समजते हैं । हालाकि छायावाद और स्वच्छंदतावाद (Romanticism) में एक अद्भुत प्रवृत्तिगत साम्य दृष्टिगोचर होता है ।

साहित्य की सर्वाधिक विधाओं कविता और कहानी के क्षेत्रों में क्रमशः नई कविता, अकविता आदि तथा नई कहानी अकहानी आदि आंदोलनों की भरमार सी आ गई । आधुनिक हिन्दी साहित्य में कुछ वर्षों तक अनास्था, निराशा, तनाव, अकेलापन, कुंठा, जीवन के मूल्यों का सततविघटन जीवन की टूटन एवं सिद्धांत–विध्वसन के भावों के उन्मुक्त चित्रण का जो कुहासा छाया रहा । अच्छा हुआ कि पाश्चात्य जगत के तथाकथित आधुनिक बोध व अन्य अनेक अवांछनिय प्रवृत्तियों के प्रति हिन्दी साहित्यकार का मोहभंग हुआ और आज वह अपने देश की आवश्यकता के अनुसार यथार्थ को तराश ने तथा भारतीय अस्मिता को तलाश ने के कार्य में संलग्न है । उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आधुनिक साहित्य की गतिविधियों में एक अद्भूत त्वरा और गति

है । युग जीवन के हर बदलाव के साथ वह बदला तथा उसमें अभिवांछित विस्तार व वैविध्य आये ।

✰ आधुनिककाल सीमा निर्धारण :

इतिहास के किसी कालखंड की सीमा निर्धारण का कार्य अत्यंत जटिल हुआ करता है । आचार्य शुक्ल ने आधुनिक हिन्दी साहित्य का आरंभ १९०० से माना है किन्तु स्मरण रखना होगा कि उक्त संवत एकान्वित रूप से इस काल के साहित्य निर्माण का प्रारंभिक वर्ष हो ऐसी बात नहीं है । आधुनिक काल के साहित्य की प्रवृत्तियों का बीजबपन इससे भी पचास-साठ वर्ष पूर्व आरंभ हो चुका था । और उसका पल्लवन लगभग भारतेन्दुयुग से हुआ । प्रकारान्तर कहा जा सकता है कि लगभग ७५ वर्षों का समय आधुनिक हिन्दी साहित्य का संधिकाल है यह ७५ वर्षों की अवधि का एक छोर कोर्ट विलियम कालिज की स्थापना से संबंध है तो दूसरा छोर भारतेन्दुकाल अर्थात् नवजागरण या पुनर्जागरण से । १८५७ का भारतीय स्वतंत्रता संग्राम भारतीय इतिहास की एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण घटना है जिसे निरापद रूप से आधुनिक हिन्दी साहित्य के काल का प्रारंभिक बिन्दु स्वीकार किया जा सकता है निसंदेह भारतेन्दु हरिशचंद का जन्म सं. १८५० में हुआ किन्तु उसके जन्मवर्ष से आधुनिक काल का प्रारंभ मानने में किसी प्रकार का कोई भी औचित्य नहीं है । आधुनिक हिन्दी साहित्य की गतिविधियों के आधार पर निम्नलिखित भागों में एवं उपविभागों में विभक्त किया जा सकता है –

(१) प्रथम चरण या उत्थानकाल : भारतेन्दुयुग, नवजागरण या पुनर्जागरण काल – १८५७–१९०० ई.

(२) द्वितीय चरण उत्थानकाल : द्विवेदीयुग, जागरण सुधारकाल पूर्व स्वच्छंदताकाल १९००–१९१८ ई.

(३)	तृतीय चरण या उत्थानकाल	: प्रसादयुग, छायावादयुग (परंपरागत) स्वच्छंदतावादकाल १९१८–१९३८ ई.
(४)	प्रसादोत्तरकाल, छायावादोत्तरकाल	: (परंपरागतनाम) उत्तर स्वच्छंदतावादकाल १९३८–१९५३ ई. जिसमे प्रगति, प्रयोग, यथार्थपरक काव्य आदि समाहित हैं ।
(५)	नवलेखन या अभिनवलेखन कालः	१९५३ से अद्यावधिपर्यन्त इसे अत्यंत व्यापकरूप एवं अर्थों में ग्रहण करना होगा । इसमें यथार्थवादी जीवन की प्रखरता है । इसमें नानाविध काव्यधाराओं का त्वरित गति से विकास हुआ है और हो रहा है, तथाकथित आधुनिकता बोध के प्रति मोहभंग के उपरांत मानवतावादी दृष्टि सम्पन्न यथार्थपरक स्वस्थ साहित्य सृजन की प्रक्रिया सतत गति से चल रही है । इससे उत्थानवादी पद्धति से अनुगमन पर साहित्य को प्रथम दशक, द्वितीय दशक तथा तृतीय दशक के कृत्रिम उपविभाजन के कटघरों में विभक्त करने की जरूरत नहीं पड़ेगी ।

✰ आधुनिक काल की परिस्थितियाँ

(I) राजनीतिक परिस्थिति

इस युग के साहित्य की राजनीतिक पृष्ठभूमि में इस्ट इण्डिया कंपनी के राज्य की स्थापना, प्रथम स्वतंत्रता संग्राम भारत में विक्टोरिया शासन की प्रतिष्ठा, इंडियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना, बंग–भंग, मार्लेमिन्टो सुधार द्वारा सांप्रदायिक निर्वाचन प्रणाली, संसार का प्रथम महायुद्ध, जापान द्वारा रुस की पराश्रय, जलियावाला बाग हत्याकांड, खिलाफत आंदोलन, गांधीजी का असहयोग आंदोलन, स्वराज पार्टी की स्थापना, जिन्ना का कांग्रेस से पृथक होना तथा मुस्लिम लीग में सम्मिलित होना कांग्रेस और सरकार के बीच अनेक परिषदों और अन्य पार्टियो के मंत्रिमंडलों की स्थापना द्वितीय महायुद्ध का आरंभ, १९३९ में कांग्रेस–मंत्रिमंडलों का त्यागपत्र, १९४० में पाकिस्तान की मांग, क्रिप्स महोदय का भारत आगमन, १९४२ में 'भारतछोडो' आंदोलन, इंग्लैंड में मजदूर दल का विजयी होना, १९४६ में अंतरिम सरकार की स्थापना, मुस्लिम लीग की घृणोत्पादक नीति के फलस्वरूप कलकता, बिहार, पंजाब में भयंकर सांप्रदायिक दंगे, १५ अगस्त १९४७ के भारत का स्वतंत्र होना और अनेक देशी समस्याएँ आती हैं ।

१७५७ में अंग्रेजों ने बंगाल जीत लिया और १८५७ में दिल्ली । इस बीच उनका राज्य क्रमशः भारत में फैलता गया । विजित प्रदेशों पर उन्होंने अपने ढंग की शासन–व्यवस्था तथा अर्थव्यवस्था को लागू किया । राज–काज में सहयोग प्राप्ति के लिए भारत के सस्ते कर्ल्को की प्राप्ति के निमित्त उन्होंने स्कूल और कालेज भी खोले । छापखाने खुले तथा रेल–तार आदि का भी आविष्कार किया । यह सब इस्टइण्डिया कंपनी के द्वारा भारत में किया गया । इस नीति के द्वारा कई देशी रियासतों – सतारा, झाँसी, नागपुर, जैतपुर (म.प्र.) को अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया । बलतः छोटे–छोटे रजवाड़ों के

समाप्त हो जाने से रीतिकालीन श्रृंगार परक साहित्य का निर्माण भी प्रायः बंद हो गया ।

१८५७ का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम इस काल की एक अन्य प्रमुखतम घटना है । कंपनी की राज्य स्थापना के समय न जाने भारतीयों को क्या–क्या अनुभव हुआ । पर अब उनके मन में यह बात स्पष्ट होती जा रही थी कि हमारे ही सिपाहियों और सेना के बल पर ये लोग हमारे देश पर शासन कर रहे हैं । नाना साहेब और उनके मंत्री अजीमुल्ला ने भारत के अनेक राज्यों में स्वतंत्रता की विचारधारा प्रचारित की । अजीमुल्ला अंग्रेजी, फ्रेंच आदि कंडू भाषाओं का ज्ञाता था । लंदन से लौटते समय वह क्रीमिया में अंग्रेजों और रुसियों के साथ होते हुए युद्ध को भी देख आया था । अंग्रेजों को क्रिमिया में उलझा देखकर तथा कुछ अन्य कारणों से ६ मई १८५७ में सारे भारत में अंग्रेज के विरुद्ध विद्रोह की आग भड़क उठी । यही स्वतंत्रता की तरंग लगभग एक साल तक चलती रही । अंग्रेजी सेना के दमन और भारतीय राजा–महाराजाओं के विश्वासघात से स्वतंत्रता का प्रथम संग्राम असफल रहा, जिसमें नानासाहेब, बांदा का नवाब, अहमदशाह, तात्याटोपे और झांसी की रानी आदि वीर काम आये । भारतेन्दुकालीन साहित्य इस संबंध में बिल्कुल मौन है, यह एक बड़े आश्चर्य की बात है ।

इसके पश्चात् भारत में विकटोरिया का शासन काल आया । इसमें अनेक प्रकार की सात्वनामयी घोषणाएँ हुई धर्म में हस्तक्षेप न करने की नीति आदि । वस्तुतः अंग्रेजी शासन की दृढता का यह काल है । अंग्रेजी सभ्यता भाषा और साहित्य की उच्चता का प्रचार करने के लिए लोर्ड मेकोले ने अंग्रेजी शिक्षा–प्रणाली का प्रचलन करवाया इस प्रकार भारतीय शिक्षत समाज अंग्रेजी सभ्यता के रंग में बुरी तरह से रंगा जाने लगा । यह सब कुछ परोक्ष कूटनीति का परिणाम था, जिसकी प्रतिध्वनि हम भारतेन्दुकालीन साहित्य में सुन सकते है –

"अंग्रेजराज सुख साज, सजे सब भारी ।

पै धन विदेश चली जात है य है अति ख्वारी ।"[१]

सन् १८८५ में कांग्रेस की स्थापना हुई जिसका । जिसका उद्देश्य भारतीय प्रशासकीय कार्यों में सहयोग देना था । परंतु बालगंगाधर तिलक के प्रवेश के साथ यह स्वाधीनता संस्था के रूप में बदल गयी । बंग–भग के कानून से भारतीय स्वाधीनता की भावना और भी तीव्र हुई और भीतर ही भीतर अंग्रेजी राज्य को उलट ने के लिए क्रांतिकारी संस्थाओं का निर्माण एवं विकास होने लगा । इन संस्थाओं में सक्रिय भाग लेनेवालों में से उल्लेखनीय नाम है – तिलक, हरदयाल, अरविंद घोष, रासबिहारी घोष, शचीन्द्रनाथ, भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद, सुखदेव और राजगुरु । १९१४ में प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ा और १९१९ में समाप्त हुआ । इस युद्ध में भारतीयों के सक्रिय सहयोग को प्राप्त करने के लिए अंग्रेजों ने भारत के नेता वर्ग को नाना प्रकार के सब्जबाग दिखाए । १९१९ में रोलेट एक्ट पास करके अंग्रेजी सरकार ने भारतीयों की रही–सही आशाओं पर पानी फेर दिया । जलियावाला बाग का निर्मम हत्याकांड लगभग इसी समय की दुःखावह घटना है । खिलाफत आंदोलन भी लगभग इसी समय चलाया गया था ।

१९२० में कांग्रेस की बागड़ोर गांधीजी ने संभाली । उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों को सम्मिलित करके असहयोग आंदोलन आरंभ किया । इसमें विदेशो वस्त्रों, सरकारी नौकरी, कौसिलों न्यायालयों, स्कूलों कॉलेजों और उपाधियों का बहिष्कार कर दिया गया । ब्रिटिश सरकार के दमन–चक्र के फलस्वरूप बड़े–बड़े नेताओं मोतीलाल नहेरू, लालालजपतराय, आजाद आदि को बड़े घर भेज दिया गया । कांग्रेस के कुछेक ऐसे सदस्य थे जिनको असहयोग की नीति पर विश्वास नहीं था । और वे कौसिलों तथा धारासभाओं में भाग लेने के पक्षपाती है । इन्होंने 'स्वराज पार्टी' नामक एक संस्था की स्थापना की । इस संस्था के प्रवर्तको में चिरंतनदास तथा मोतीलाल नहेरू के नाम उल्लेखनीय है ।

इधर कांग्रेस की नीति मुसलमानों को प्रसन्न करने की हो गयी थी। परिणामतः मदनमोहन मालवीय तथा लाजपतराय आदि कुछेक नेताओं ने हिन्दू महासभा का साथ दिया। इसी समय मुहलदअली जिन्हा कांग्रेस को छोड़कर मस्लिम लीग में सम्मिलित हो गये। १९२०–३० तक अंग्रेजों की कूटनीति का दमन भी खूब चला। हिन्दू–मुसलमानों में सांप्रदायिकता, हिन्दी–उर्दू संबंधी भाषा–समस्या और मुस्लिम लीग की स्थापना आदि उनकी दुर्नीति का कुफल है। १९३० में एक भयंकर सांप्रदायिक दंगा हुआ जिसमें गणेशशंकर विद्यार्थी जैसे साधक को प्राण न्यौछावर करने पड़े। अंग्रेजों द्वारा डाली गई बाधाओं का यह परिणाम है कि अंत में भारत को जो स्वतंत्रता मिली वह भी विभक्त रूप में। १९३१–३५ तक का समय कमीशनों, पैक्टों और संधियों का समय है। १९३७ में निर्वाचन हुए उनमें भारत के अधिकतर प्रांतों में कांग्रेस के मंत्रिमंडल बने, किन्तु १९३९ में उन्हें त्यागपत्र देने पड़े क्योंकि अंग्रेज सरकार ने भारतीयों की सम्मति के बिना भारत के द्वितीय महायुद्ध में सम्मिलित होने की घोषणा कर दी थी। १९४० में पाकिस्तान की मांग की गयी युद्ध में भारतीयों के सक्रिय सहयोग को प्राप्त करने के लिए १९४२ में क्रिप्स महोदय भारतीय संघ निर्माण की एक योजना लेकर भारत आए, जिसके प्रतितोष की अपेक्षा रोष अधिक हुआ। १९४२ में कांग्रेस ने 'भारत छोडो' का प्रस्ताव पास किया जिसके फलस्वरूप असंख्य गिरफ्तारियाँ हुईं और प्रायः कांग्रेस के सभी प्रमुख नेताओं को जेल में बंद कर दिया गया। १९४५ में ब्रिटन में उदारदल की सरकार बनी जिस भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के साथ काफि सहानुभूति थी। परिणामतः १९४६ में भारत में अंतरिम सरकार बनी। इसी समय मुस्लिम लीग की घृणोत्पादक और अनुवाद नीति के फलस्वरूप कलकता, बिहार, पंजाब आदि में भयंकर सांप्रदायिक दंगे हुए। १५ अगस्त १९४७ को भारत में स्वतंत्रता का सूरज निकला। तत्पश्चात् नवचेतना नव निर्माण में परिणत हो गयी। आज के स्वतंत्र भारत राष्ट्र की राजनीतिक चेतना राष्ट्रीयता और

अन्तर्राष्ट्रीयता के रूप में विकसित हो रही है । भारत का पंचशील का संदेश युद्धों की विभीषिका से त्रस्त मानव जाति के लिए एक अमर देन है हिन्दी साहित्य ने इस नव जागरण और नव राष्ट्रीय चेतना का केवल अनुसरण ही नहीं किया वरन् उसे प्रेरित भी किया और उसका मार्ग भी प्रशस्त किया ।

(II) धार्मिक एवं सामाजिक परिस्थिति

इस काल के राजनीतिक आंदोलनों को चारित्रिक दृढ़ता और अगाध विश्वास की भावना की प्राप्ति तत्कालीन धार्मिक आंदोलनों तथा सामाजिक क्रांति के द्वारा हुई । इन समस्त आंदोलनों का उद्देश्य था समाज सुधार एवं भारतीय स्वाधीनता । इन उक्त उद्देश्यों की पूर्ति प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से होती ही रही । इन आंदोलनों में प्रमुख है ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज, थियोसोफी, सनातन धर्म स्वामी रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद और श्री अरविंद के वेदान्त दर्शन तथा गांधीजी का मानवतावाद ।

ब्रह्म समाज के प्रवर्तक राजा राममोहन राय थे । इनका उद्देश्य था समाज की कमियों, संकीर्णताओं और रूढ़ियों को समाप्त करना किन्तु कुछ समय के पश्चात् वे स्वयं ईसाई रंग में इतने रंग गये कि भारतीय संस्कृति को हीन दृष्टि से देखने लगे और अपने पथ से विचलित हो गये । महाराष्ट्र देश में महादेव गोविंद रानाडे के नेतृत्व में अनेक सामाजिक संस्थाओं की स्थापना हुई, जिनका उद्देश्य सामाजिक सुधार एवं भारतीय संस्कृति के प्रति अनुराग उत्पन्न करना था । स्वामी दयानंद ने इसाई धर्म और प्रचार की प्रतिक्रिया में आर्यसमाज की स्थापना की उनका व्यक्तित्व सामाजिक और धार्मिक क्षेत्रों में उतना ही क्रांतिकारी था जितना कि राजनीतिक क्षेत्र में तिलक का । कांग्रेस के राजनीतिक आंदोलनों की सफलता का बहुत कुछ श्रेय स्वामी जी द्वारा तैयार किये गये त्यागी एवं कर्मठ नरपुंगवों को है । स्वामी जी के कार्य अत्यंत महत्त्वपूर्ण है राष्ट्रीयता का संचार और राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रचार ।

"प्राचीन संस्कृति का पुनरुत्थान, वेदों के प्रति श्रद्धा जागरण, शिक्षा–संस्थाओं के निर्माण द्वारा शिक्षा का प्रचार, नारी जाति के प्रति समादर की भावना, निम्न जातियों के प्रति अस्पृश्यता की भावना का निवारण, पुरातन रूढ़ियों का परित्याग इन सब कार्यो के लिए भारतीय जनता आर्यसमाज के प्रवर्तक स्वामी दयानंद की सदा ऋणी रहेगी ।"[२]

थियोसोफिकल सोसायटी के द्वारा एनीबेसेन्ट जैसी पूज्या विदेशीनारी, जो अपने आपको पूर्वजन्म की हिन्दू तथा हिन्दू धर्म को सर्वश्रेष्ठ भी मानती थी, उन्होंने देश की राष्ट्रीयता को जाग्रत किया । इसने विज्ञान की अति बौद्धिकता का विरोध करके भारतीय आध्यात्मिकता का उत्थान किया । इस संबंध में परमहंस रामकृष्ण तथा उनके शिष्य विवेकानंद का नाम विशेष उल्लेखनीय है । इन्होंने एक ओर राष्ट्रीयता का प्रचार किया तथा दूसरी ओर धर्म के सच्चे स्वरूप को व्यावहारिक रूप में उपन्यस्त किया । इनके गहन चिंतन तथा आध्यात्मिकता की हिन्दी साहित्य पर गहरी छाप है । विश्व कवि अरविंद का आस्तिकतापूर्ण मानवतावादी दृष्टिकोण तथा रहस्यवाद, परमहंस रामकृष्ण, विवेकानंद एवं एनी बेसेन्ट से प्रभावित है, इन्हें इसाईयों की देन कहना भ्रम है । इन सभी विचारधाराओं की हिन्दी के छायावादी काव्य पर गहरा प्रभाव पड़ा । परमर्षि अरविंद पहले क्रांतिकारी राजनीति के नेता और बाद में तत्त्वदृष्टा परम योगी थे । ये कवि भी थे । इनकी रचनाओं में आध्यात्मिक आनंद की अनुभूति है । इनके योग में कर्म, उपासना और ज्ञान का समन्वय है इनके अतिमानवतावाद में पृथ्वी को स्वर्ग बनाने की भावना है । अरविंद दर्शन का हिन्दी काव्य पर स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है । गांधीजी का समन्वयात्मक दृष्टिकोण है । उनका जीवन दर्शन गीता का अनासक्ति योग है । सत्य और अहिंसा उनके अमोध शस्त्र है जिनके द्वारा उन्होंने भारत स्वतंत्रता के स्वप्न को सत्य में परिणत कर दिखाया । गांधीजी ने भारतीय जनता में आत्मबल, नैतिकता, दृढ़ता उदारता और चारित्रिक गुणों का विकास किया ।

हिन्दी साहित्य के आधुनिककाल के द्वितीय चरण में गांधीवादी विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव है भारतेन्दु राष्ट्रीयतावादी है गुप्त गांधीवादी, प्रसाद आनंदवादी तथा पन्तक्रमशः गांधीवादी, साम्यवादी और अरविंदवादी है ।

भारत में अंग्रेजी शासन की स्थापना से जहाँ एक और राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्र में दयनीय शोषण हुआ वहाँ धार्मिक एवं सामाजिक सुधार में एक नवचेतना भी आई । इन धार्मिक आंदोलनों तथा सामाजिक क्रांतियों के द्वारा बालविवाह, मिथ्या रूढ़ियों, जातिभेद, धार्मिकमतभेद, समुद्रयात्रा निषेध दहेजप्रथा, पूंजीवाद, जमींदारी प्रथा और अंधविश्वासों का घोर विरोध किया गया । विधवा विवाह को समर्थन किया गया और अछूतोद्धार पर बल दिया गया । शोषित एवं पीड़ित समाज तथा नारी के प्रति संवेदना प्रकट की गई । मानवतावाद तथा आध्यत्मिकता का प्रचार हुआ । स्वतंत्रता के पश्चात् सबको विकास के लए समान अवसर मिला ।

(III) आर्थिक परिस्थिति

सन् ५७ के पश्चात् अंग्रेजों की शासन सत्ता भारत में अच्छी प्रकार जम गई, जिसके फलस्वरूप मध्यकालीन सामंती व्यवस्था और संस्कृति का लोप होने लगा । उस समय सामन्तीयुग का अंत और आधुनिक युग का आरंभ इतिहास की आवश्यकता थी । यदि अंग्रेजों का आगमन न भी हुआ होता तो भी यह आर्थिक और सांस्कृतिक क्रांति हमारे देश में अवश्य होती । कुछ विद्वानों का विचार है कि विदेशीयों के आगमन से इन क्रांति में विलंब ही हुआ । हमारे देश में उद्योग और धंधे काफी फैले हुए थे, किन्तु अंग्रेजों ने उन्हें नष्ट करके हमारी सामाजिक और आर्थिक उन्नति में महान व्याघात उपस्थित कर दिया । अंग्रेजों का उद्‌देश्य आर्थिक शोषण करना था इनकी पूर्ति के लिए एक ओर तो उन्होंने देशी उद्योग–धंधे स्थापित किए । रेल, तार, डाक आदि की व्यवस्था उन्होंने अपनी आर्थिक और राजनीतिक सत्ता की सुविधा की

दृष्टि से की । शिक्षा का प्रचार भी कदाचित विशाल साम्राज्य को चलाने के लिए सस्ते कलर्कों के उत्पादन के निमित्त था । उनकी स्वार्थ–सिद्धि का यह चक्र उलटकर उनका ही मर्मच्छेदी बना महंगाई, अकाल, टैक्स और दरिद्रता भारतेन्दु युग की प्रमुख आर्थिक समस्याएँ है, जिनकी प्रतिध्वनि तत्कालीन साहित्य में स्पष्ट है । यही कारण है कि कांग्रेस ने राजनीतिक स्वाधीनता के साथ आर्थिक स्वतंत्रता की भी प्रबल माँग की । १८५७ की क्रांति के उपरांत अंग्रेजों ने अपने आततायियों को तो घसियारा बना दिया और अपने समर्थकों को बड़ी–बड़ी जागीरे प्रदान कर जमीदारी प्रथा को प्रोत्साहन दिया । कृषक वर्ग पर मालगुजारी का बोझा लादकर तथा जमीदारों के अत्याचारों को प्रश्रय देकर अंग्रेजों ने किसानों को अत्यधिक दीनहीन बना दिया । प्रथम महायुद्ध के पश्चात् कांग्रेस ने विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार के द्वारा अंगेजों की औद्योगिक नीति तथा आर्थिक शोषण का विरोध किया । मुंशी प्रेमचंद तथा उनके समकालीन साहित्य में इसकी स्पष्ट छाया है । द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के पश्चात् भारत को विश्वव्यापी महँगाई और बेरोजगारी का शिकार होना पड़ा । पूंजीवाद का बोलबाला हो जाने के कारण श्रमिक और कृषक वर्ग शोषण की चक्की के दो निर्मम पाटों में बुरी तरह पिसे । अंग्रेजों की आर्थिक नीति में कुछ परिवर्तन हुआ । उन्होंने अपने साम्राज्यवादी हितों की सिद्धि के लिए भारत की औद्योगिक उन्नति की किन्तु उससे शोषण बढ़ा, कम नहीं हुआ ।

स्वतंत्रता के बाद देश की आर्थिक दशा में यथेष्ट सुधार हुआ । पंचवर्षीय योजनाओं तथा अन्य व्यवसायों और उद्योग–धंधों एवं प्रसार के द्वारा राष्ट्र की आर्थिक स्थिति में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आ रहा है ।

(IV) साहित्यिक परिस्थिति

आधुनिक काल का साहित्य विषय और शैली दोनों क्षेत्रों में अपने पूर्ववर्ती साहित्य से भिन्न है । इस भिन्नता का कारण जहाँ तत्कालीन

राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक चेतना है, वहाँ इस दिशा में बाह्य संपर्क तथा विविध साहित्यों के प्रभावों ने भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। रीतिकाल का अधिकतर साहित्य राजमहलों में पल रहा था जो कि अब सहर्ष झोपडियों में आकर जनता के सुख, दुःख की बात कहने लगा। रीतिकालीन साहित्य नारी के कुच कटाक्ष के सीमित कटघरे में बंद था जबकि आधुनिक हिन्दी साहित्य में एक विशिष्ट उदारता, व्यापकता और विविधता आई जिसके फलस्वरूप उसने विशाल जन–समूह को खुली आँखों से देखा। संक्षेप में रीतिकालीन साहित्य में निम्नांकित प्रवृत्तियाँ थीं ऐन्द्रियता एवं रसिकताप्रधान श्रृंगारिकता, जिसमें जीवन के संतुलित दृष्टिकोण का अभाव है, अलंकरण प्रवृत्ति के प्रति अनावश्यक मोह, रीति निरूपण, प्रकृति का परंपरामुक्त चित्रण, विशिष्ट अभिव्यंजना प्रणाली, सामंतीवातावरण में पुष्ट होने के कारण जीवन के प्रति अत्यंत सीमित और संकुचित दृष्टिकोण यांत्रिक रूढ़िबद्ध तथा अवैयक्तिक जीवन दर्शन, वीर रस भक्ति और नीति संबंधी कविता, मुक्तक शैली की प्रधानता तथा काव्य के विविध रूपों का अभाव और ब्रजभाषा का प्रयोग। संक्षेप में रीति साहित्य की भाषा, भाव और शैली सभी कुछ रूढ़िग्रस्त थी जो कि बदले हुए आधुनिक युग की आवश्यकताओं के अनुकूल नहीं थी, अतः आधुनिक हिन्दी साहित्य में इन सभी क्षेत्रो में महत्त्वपूर्ण क्रांति हुई। भारतेन्दु युग आधुनिक हिन्दी साहित्य का प्रवेश द्वार है जिसमें काफी सीमा तक संधि–साहित्य का निर्माण हुआ भारतेन्दुयुग का साहित्य हिन्दी के विकास क्रम को स्वाभाविक रूप से आगे बढ़ाता है, द्विवेदी युग के साहित्य में विषयगत और कलागत आमूलचूल परिवर्तन हुआ। छायावादी युग के साहित्य को अपने पूर्ववर्ती साहित्य परंपराओं के प्रतिक्रियात्मक एक चिर स्मरणीय महान आंदोलन समझना चाहिए। प्रगतिवादी साहित्य में विश्व–मानवता का स्वर मुखरित है। इन साहित्य की विषय और कलागत अपनी मान्यताएँ हैं।

आधुनिक साहित्य की सबसे बड़ी महत्त्वपूर्ण घटना है गद्य का आविष्कार तथा खड़ीकोली का साहित्य के गद्य और पद्य दोनों क्षेत्रों में अभिव्यक्ति का शसक्त माध्यम स्वीकृत होना । इनके साथ–साथ आधुनिक हिन्दी साहित्य में विभिन्न काव्यरूपों का भी प्रचलन हुआ । कहानी, उपन्यास, नाटक, जीवन–चरित आलोचना, एकांकी और रिपोर्ताज आदि । साहित्य की इन बहुत सी विधाओं का रूप विधान पाश्चात्य साहित्य के अनुकरण पर हुआ है । वर्ण्य सामग्री की दृष्टि से न सही पर विभिन्न काव्यरूपों के लिए जिस प्रकार हिन्दी साहित्य बंगला, गुजराती और मराठी भाषाओं के साहित्य का ऋणी है उसी प्रकार अंग्रेजी साहित्य का भी ।

✰ भारतीय राष्ट्रीय नव चेतना : सांस्कृतिक जागरण

इस्टइंडिया कंपनी की नीति की सूक्ष्म कतर–व्योंतो और तत्पश्चात् अंग्रेजी राज्य की स्थापना के फलस्वरूप भारत के धर्म, संस्कृति, अर्थनीति और सभ्यता को एक प्रबल आघात पहुँचा यह आघात मुसलमानों के राज्य स्थापना के आघात से सर्वथा भिन्न था । उस समय सन्तो व भक्तो के द्वारा प्रवर्तित भक्ति आंदोलन एक प्राण बना । उस आंदोलन की पृष्ठभूमि में भावात्मक विह्वलता, खेदात्मक स्वर व इश्वर शरणागति काम कर रही थीं, अतः पद्यात्मक भक्ति साहित्य उद्भूत हुआ क्योंकि उसमें क्षमास्वर की प्रधानता थी और क्रांति की भावना की कमी थी । निःसंदेह मुस्लिम शासन से हिन्दूधर्म व संस्कृति आहत हुई किन्तु ब्रिटिश राज्य की स्थापना के समूची हिन्दू जीवन शासन के निर्मम आर्थिक शोषण ने जन सामान्य को निपट गरीब बना दिया तो दूसरी और मिशनरी पादरीयों के इसाइ धर्म के निष्ठुर आक्रामक प्रचार से हिन्दू–धर्म संस्कृति, रहन–सहन व रीति–नीति आदि बुरी तरह से प्रभावित हुई । सदियों से गुलामी का जीवन व्यतीत करने वाले हिन्दू समाज में अनेक अवांछनीय बुराइयाँ, आत्महीनता की भावना परास्त मानसिकता, अंधविश्वास, निरर्थक

रूढ़ियाँ, जातिपाति, उच–नीच का भेदभाव तथा पौराणिक धर्म की असंख्य थोथी मान्यतायें घर कर चुकी थीं । ऐसे समय में एक जबरदस्त क्रांति की आवश्यकता थी जो उसकी सुषुप्त चेतना को समयानुकूल प्रबुद्ध कर उसके यथार्थ स्वरूप को उसके सामने रखे । इस पुनीत व महनीय कार्य की पूर्ति ब्रह्मसमाज, प्रार्थनासमाज, रामकृष्णमिशन, आर्यसमाज एवं अरविंद दर्शन व स्वराज्य आंदोलन आदि के प्रतिष्ठापन से हुई जिसकी हम संक्षिप्त चर्चा करेंगे ।

(I) ब्रह्मसमाज

इसाइयों का व्यापक और संगठित धर्म प्रचार का कार्य हिन्दुओं को बहुत बुरा लगा क्योंकि इससे काफी संख्या में हिन्दुओं ने धर्मपरिवर्तन कर लिया इसाई धर्म प्रचारकों ने हिन्दू धर्म की कर्मकाण्ड, बहुदेवोपासना बाह्याडंबर तथा समाज में व्याप्त कुरीतियों की कड़ी निन्दा कर इसाईपन के प्रचार के लिए अनुचित लाभ उठाया । बंगाल में इसकी घोर प्रतिक्रिया हुई । राजा राममोहन राय संस्कृत, अरबी, फारसी के बहुत बड़े विद्वान थे । वे अरबी के माध्यम से यूनानी विचारकों और दार्शनिकों के विचारों से परिचित हुए । वे मुसलमानों के एकेश्वरवाद एवं इसाई धर्म से प्रभावित हुए । उन्हें उक्त सभी धर्मों की विचारधाराओं का मूल उत्स वेदान्त अर्थात् उपनिषदों में मिला । अतः उन्होंने राष्ट्रीय जागरण व सांस्कृतिक पुनरुत्थान की दिशा में सर्वप्रथम (१८२८) में ब्रह्मसमाज की स्थापना की । वे निरंतर अठारह वर्षों तक अपने उद्देश्यपूर्ति के लिए संघर्ष करते रहे । उन्होंने कर्मकांड, अंधविश्वास, मूर्ति पूजा, बाह्याडंबर, अंधरूढ़िवादिता, जातिप्रथा तथा सतीप्रथा का प्रबलविरोध किया । नर–नारी के समान अधिकारों और विधवा विवाह पर बल दिया । उनका यह दृढ़ विश्वास था कि धार्मिक व सामाजिक सुधारों की प्रक्रिया साथ–साथ चलनी चाहिए क्योंकि हिन्दू समाज मूलतः धर्म प्राण है । इन सुधारों का मूल रहस्य शिक्षा में

व्यापक प्रचार व प्रसार में निहित है । अतः उन्होंने पाश्चात्य के ज्ञान–विज्ञान तथा अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार–प्रसार में मूल्यवान योग दिया । अतः इसमें कोई संदेह नहीं कि ब्रह्मसमाज के इस सांस्कृतिक आंदोलन और नवचेतना का प्रभाव परोक्ष रूप से हिन्दी साहित्य पर अनेक दिशाओं में पड़ा ।

(II) प्रार्थनासमाज

ब्रह्म समाज के प्रचार व प्रसार के लिए केशवचन्द्र सेन ने देश के दूर–दूर तक लंबी यात्रायें कीं । इस दौरान महाराष्ट्र में महादेव गोविंद रानाडे, सेन के संपर्क में आये । परिणामतः रानाडे ने १८६७ ई. में प्रार्थना समाज की स्थापना की । रानाडे ने निरंतर चालीश वर्षो तक सामाजिक रूढ़ियों, अंधविश्वास निष्प्राण पुरातन परंपराओं और जाति–पाँति के विरुद्ध कड़ा संघर्ष किया । इन्होंने भारतीय संस्कृति का वैज्ञानिक विचार पद्धति के अनुरूप ढालने का भरसक प्रयास किया । यद्यपि ये प्राचीनता के प्रेमी थे और हिन्दू धर्म का अपार गर्व था । भागवत धर्म के अनुयायी होने के नाते, इनकी मध्यकालीन मराठा भक्त सन्न कवियों के प्रति गहरी आस्था थी । रानाडे एक उच्चकोटि के मेधावी विधिवेत्ता और तार्किक महापुरुष थे वे धर्म और समाज दोनों क्षेत्रों में प्रगति और विकास के पक्षधर थे अतः उनकी चिंतन पद्धति और विचारधारा में किसी भी प्रकार की संकीर्णता का अवकाश नहीं था । निरर्थक उनके लिए सर्वथा त्याज्य था तथा प्रगति और विकास स्वीकार्य थे ।

(III) आर्यसमाज

इधर उत्तरी भारत में स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा वैदिक धर्म प्रचार और आर्यसमाज (१८६७) की स्थापना के रूप में इसाई धर्म की घोर प्रतिक्रिया हुई । स्वामी दयानंद ने हिन्दुस्तान को आर्यवर्त तथा हिन्दी को आर्य भाषा का नाम दिया तथा प्रत्येक धर्म के लिए आर्य भाषा का पढ़ना आवश्यक ठहराया । स्वामी दयानंद तथा आर्यसमाज ने हिन्दी भाषा के प्रचार और प्रसार में जो

महत्त्वपूर्ण कार्य किया वह चिरस्मरणीय है । स्वामी दयानंद की आलोचना में खडनात्मकता की प्रवृत्ति प्रखर थी अतः वह कट्टरता से भी युक्त थी । उन्होंने अपने ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' में इसाई व मुस्लिम धर्मों की भत्यस्नामयी आलोचना की कुछ आलोचकों ने इसे स्वामी दयानंद की प्रतिगामी प्रवृत्ति का सूचक बनाया है जो कि कदाचित उस समय के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य का ठीक जायजा न लेने का फल है । इसी प्रकार स्वामी जी द्वारा "वेदों को अपौरुषेय और अतर्क्य मान लेने पर उस पर मुक्त व्यक्तिगत चिंतन अभाव का आरोप भी समीचीन नहीं है, क्योंकि आर्यसमाज ने हिन्दी भाषा और साहित्य को वैज्ञानिक तर्क पद्ध दी है, वह सर्वविदित है । सच तो यह है कि आज की हिन्दी में जो तर्क शक्ति है उसका बहुत कुछ श्रेम स्वामी दयानंद तथा उसके आर्य समाज को है ।"[३]

अस्तु ! इसके अतिरिक्त इन्होंने वेदांगप्रकाश, संस्कारविधि ऋग्वेद भाष्य भूमिका तथा वेदों के भाष्य आदि अनेक पुस्तकें लिखीं । आर्यसमाज के आंदोलन ने उत्तरी भारत में हिन्दी प्रचारार्थ महत्त्वपूर्ण योग दिया है और दे रहा है प्रत्येक स्तर की अनेक शिक्षण संस्थाओं की स्थापना के द्वारा प्रायः उतरी भारत में हिन्दी प्रचार का समूचा श्रेय आर्यसमाज को ही है । इसके अतिरिक्त आर्यसमाज का प्रभाव हिन्दी भाषा–भाषी प्रदेशों पर विशेष रूप से पड़ा अतः इन प्रदेशों के साहित्यकारो का भी इससे प्रभावित होना स्वाभाविक था । वास्तव में महावीर प्रसाद द्विवेदी के युग के बहुत से साहित्यकारों की आदर्शवादी भावनाओं की पृष्ठभूमि में आर्य समाज की नैतिकता और आदर्श काम कर रहे हैं ।

(IV) रामकृष्ण मिशन

भारतीय राष्ट्रीय चेतना और सांस्कृतिक जागरण की प्रक्रिया में रामकृष्ण परमहंस और उनके परम् सुयोग्य शिष्य विवेकानंद का आविर्भाव एक अद्भुत

चमत्कार समझना चाहिए परमहंस वास्तविक अर्थो में समग्रतः परमहंस थे । वे एक परम् उच्चकोटि के साधक, अद्भूत भक्त व अद्वितीय विचारक और ज्ञानी थे, जिन्होंने अपने समय में अपने अतीव विलक्षण व्यक्तित्व से सारे बंगदेश को हिलाकर रख दिया और विवेकांद वेदांत दर्शन के सजीव मूर्तिमान प्रतीक थे जिन्होंने भारतीय संस्कृति को सर्वश्रेष्ठत्तम उपलब्धि वेदांत के उद्घोष से सारे पाश्चात्यजगत को हिलाकर रख दिया । स्वामी विवेकानंद ने १८९३ ई. से अमेरिका के शिकागो नगर में आयोजित विश्वधर्म संसद में लाभ लेकर भारतीयदर्शन, धर्म व संस्कृति के उच्च सिंहनाद से विश्व की सांस्कृतिक दिग्विजय का गौरव प्राप्त हुआ । विश्व धर्म संसद में इनके सारगर्भित व ओजस्वी वेदांत संबंधी भाषण को सुनकर न्यूयोर्क की पत्र–पत्रिकाओं में छपा था । (धी न्युयोर्क हेरोल्ड)

“विश्वधर्म संसद में विवेकानंद श्रेष्ठ व्यक्ति थे । उनको सुनने के बाद एसा लगता है कि उस (भारत जैसे) महान देश में धार्मिक मिशनों को भेजना कितनी बड़ी मुखता थी ।”[४]

विश्व की इस सांस्कृतिक दिग्विजय के उपरांत स्वामी विवेकानंद का भारत के कोने–कोने से भव्य स्वागत हुआ । रामकृष्ण परमहंस यदि धर्म संस्कृति व दर्शन के सिद्धांत पक्ष है तो विवेकानंद उसके व्यावहारिक पक्ष विवेकानंद जीवन भर अपने परम् आराध्य रामकृष्ण के उपदेशों का प्रचार करते रहे । इसे संयोगवश योगेश्वर कृष्ण और धनुर्धर पार्थ का योग ही कहना चाहिए । इस काल के सांस्कृतिक जागरण के अन्य उन्नायको के क्रिया–कलाप का दायरा भारत भूतक सीमित रहा जबकि विवेकानंद ने भारत देश के अतिरिक्त विदेशों में भारतीय संस्कृति व धर्म की उज्ज्वल छवि को निखारा । रामकृष्ण परमहंस के देहावसान के बाद विवेकानंद ने परमहंस के उपदेशों के प्रचार के लिए देश तथा विदेशों में प्रमुख केन्द्रों रामकृष्ण मिशन की स्थापना

किये जो आज तक भी भारतीय संस्कृति, धर्म व दर्शन सामाजिक सुधार तथा प्रसार जैसे पुण्य कार्यों को सम्पन्न कर रहा है ।

स्वामि विवेकानंद ने रामकृष्ण के परलोक गमन के पश्चात् तथा अमेरिका और इग्लैंड आदि विदेशों से लौटने के बाद सारे भारत देश का दो बार व्यापक भ्रमण किया । स्वधर्म और संस्कृति के दौरान उन्होंने महसूस किया कि देश की अधिकतर जनता गरीबी, अशिक्षा, अंधविश्वास, कुरीतियों तथा छूआ–छूत जैसी घृणित बुराइयाँ का कितनी बुरी तरह से शिकार हो चुकी है । इसलिए उन्होंने विश्व और भारत देश के सामने यह प्रमाणित किया और गरीबों के प्रति गहन सहानुभूति का अभिव्यक्त करते हुए वह कहते हैं कि –

"पूजा के सभी उपकरणों को फेंक दो, शंख, घटा, घडियाल और दीप को प्रतिमा के सम्मुख डाल दो गाँव–गाँव जाओ और गरीबों की सेवा में अपने को न्यौछावर कर दो ।"[५]

भारतीय साहित्य पर स्वामी विवेकानंद के अद्वैतवाद या वेदांत दर्शन का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है हिन्दी की छायावादी काव्यधारा के मूल में बहुत कुछ अंशो में उनकी अद्वैतवादी विचारधारा काम कर रही है । प्रति वर्ष सारे देश में भारत सरकार द्वारा विवेकानंद के जन्म दिवस को युवादिवस के रूप में मनाया जाता है यह इसका ठोस सबूत है । इसके अतिरिक्त हिन्दी साहित्य में जहाँ राष्ट्रीयता के गौरव और पुरातन भारत के अतीत की महीमा का अनुगुंजन सुनाई पड़ता है, वहाँ विवेकानंद तथा रामकृष्ण मिशन के प्रभाव को लक्षित किया जा सकता है ।

(V) थियोसोफिकल सोसायटी

यह बड़ी अजीबसी बात है कि थियोसोफिक्ल की स्थापना १८७५ ई. में न्यूयोर्क में दो अमेरिकन बंधुओं के द्वारा की गई और शनैः शनैः इसकी शाखाओं का प्रवर्तन इग्लैंड आदि विदेशों में हुआ । श्रीमती एनी बेसट १८८८

में इग्लैंड की थियोसोफी संस्था में संबद्ध हो गई । इस सोसायटी के संस्थापक १८७६ ई. में भारत में पहुँचे और १८८२ ई. में मद्रास में इसकी शाखा खोल दी । श्रीमती एनी बेसेन्ट १९९३ में भारत आई और उक्त सोसायटी के विकास व सेवा में सर्वस्व जुटाकर समर्पित हो गई । इन्होंने समूचे देश का भ्रमण किया और स्थान–स्थान पर हिन्दूधर्म के महत्त्व और उसकी आध्यात्मिकता के गौरव के बारे में आजस्वी भाषण दिये अनेक शिक्षण संस्थायें खोली हिन्दू धर्म संस्कृति व उसके अध्यात्मक के व्यापक प्रचार से इस संस्था ने भारत में उदार समन्वयात्मक दृष्टिकोण का विकास किया । वे भारत आने पर वाराणसी में आजीवन अपने निवास शांतिकूंज में रहीं । बनारस में इन्होंने जो सेन्ट्रल स्कूल और कॉलेज खोले थे वे आगे चलकर बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के रूप में बदले । वे १८९४ से १९०७ तक थियोसोफि सोसायटी की अध्यक्षा बनी रही विश्वधर्म संसद में ये विवेकानंद के बाद प्रभावी प्रवक्ता थी । इनके भारतीय महिला संघ ने बालविवाह का विरोध किया ।

(VI) अरविंद दर्शन

महर्षि अरविंद का मानवतावादी दृष्टिकोण तथा रहस्यवाद रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद तथा एनी बेसेन्ट से प्रभावित है इन्हें इसाइयों की देन कहना भ्रामक है उक्त महापुरुषों की विचार धाराओं का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव पड़ा है । महर्षि अरविंद प्रारंभ में क्रांतिकारी राजनीति के नेता थे परंतु बाद में तत्त्वदृष्टा परम् योगी बने । आप उच्चकोटि के कवि भी थे । इनकी रचनाओं में आध्यात्मिक आनंद की अनुभूति है । इनके मानवतावाद में पृथ्वी को स्वर्ग बनाने की भावना है । अरविंददर्शन का पन्त पर काफि प्रभाव दिखाइ देता है खास करके उनके ‘लोकायतन’ पर । अरविंद जी की वेदों के प्रति गहन आस्था थी । पोंडीचेरी स्थित अरविंद आश्रम इनकी चिर साधना अन्तः प्रज्ञा व तात्त्विक दृष्टि का ज्वलंत प्रतीक है ।

(VII) स्वराज आंदोलन

उपर्युक्त चर्चित आंदोलनों ने जहाँ धर्म, समाज और संस्कृति के क्षेत्रों में एक आभिनव जागरण लाया, वहाँ राजनीतिक चेतना ने भी नया मोड़ लिया । यद्यपि १८५७ के स्वतंत्रता संग्राम की विफलता से भारतीय जनमानस में अंग्रेजी सरकार के दमन का आतंक तथा गहरी निराशा थी किन्तु उक्त आंदोलनों, अन्यायको के प्रेरक विचारो और शुभप्रेरणा के फलस्वरूप जनसामान्य में शक्ति विश्वास व उत्साह का संचार हुआ जिससे कि वह पुनः स्वतंत्रता प्राप्ति के कार्य में संघर्षरत हो गये । परिणामतः ह्युम महोदय की प्रेरणा से १८८५ में इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना हुई इसका प्रारंभिक उद्देश्य विभिन्न राजनीतिक कठिनाईयों को दूर कर भारतीयों को प्रशासन में अधिकाधिक अधिकार दिलाना था किन्तु धीरे–धीरे इसके कर्यक्षेत्र में व्यापकता आ गई ।

“दादा भाई नौरोजी, फिरोजशाह महेता, सुरेन्द्रनाथ बेनरजी, बाल गंगाधर तिलक, लाला लजपतराय एवं गोपाल कृष्णगोखले ।”[६] आदि जागरुक नेताओं के प्रगतिशील नेतृत्व के कारण स्वतंत्रता प्राप्ति की ललक क्रमशः तीव्रतर होती गई । १९२० में कांग्रेस की बागड़ोर गांधीजी ने संभाली । इसमें मोतीलाल नहेरू, जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, सुभाषचंद्र बोस, मौलाना आजाद जैसे कर्मठ नेता सम्मिलित हुए । इस समय कांग्रेस अनेक विकटों से गुजर रहा था । जलियावाला बाग का हत्याकांड, खिलाफतआंदोलन, गांधीजी का असहयोग आंदोलन, स्वराज्य व गदर आदि पार्टियों की स्थापना जिन्ना का कांग्रेस से अलग होकर मुस्लीम लीग में मिलना, कांग्रेस और अंग्रेजी सरकार के बीच अनेक संधियों का होना, १९३६–३७ में निर्वाचन, अनेक प्रांतों में कांग्रेस के मंत्रिमंडलों का गठन, १९३९ में द्वितीय महायुद्ध का प्रारंभ, १९४० में पाकिस्तान की मांग, १९४२ में भारत छोड़ो आंदोलन इग्लैंड में मजदूरदल का विजय होना । १९४६ में भारत में अंतरिम सरकार की स्थापना, मुस्लिम लीग की घृणोत्पादक नीति के फलस्वरूप बिहार, बंगाल तथा पंजाब में भयानक सांप्रदायिक

दंगों का होना और साथ–साथ असंख्य निरीह लोगों के रक्त से रंजित पाकिस्तान का बनना ।

स्वतंत्रता प्राप्ति की दिशा में एक ओर महात्मा गांधी सत्य, अहिंसा व शांति आदि साधनों का आश्रय ले रहे थे वहाँ दूसरी ओर उसके समानान्तर एक क्रांतिकारी सशक्त विचारधारा भी पर्याप्त सक्रिय थी । खुदीरामबोस, वीरसावरकर, महेन्द्रप्रताप, भगतसिंह, बटुकेश्वरदत्त, रामप्रसाद बिस्मिल, चन्द्रशेखर आझाद, अरविंद घोष, योगेश चेटर्जी तथा सुभाषचंद्र बोस, आदि नेताओं, क्रांतिकारी उपायों और आजाद हिन्दी फौज के गठन से अंग्रेजी सरकार के सामने एक सबल चुनौती खड़ी कर दी थी । यद्यपि ये क्रांतिकारी प्रयास विफल रहे किन्तु फिर भी इन प्रयासो ने भारतीय जनता के हृदय में स्वतंत्रता प्राप्ति की भावना और राष्ट्रीयता को प्रोत्साहित और उदीप्त किया । इस प्रकार इन क्रांतिकारी प्रयासों ने परोक्ष रूप से स्वतंत्रता प्राप्ति की दिशा में गांधीवाद को निश्चित रूप से सहयोग दिया । एक विशाल वटवृक्ष के समान महात्मा गांधीजी का व्यक्तित्व व कृतित्व बहुत व्यापक और विविधमुखी थे गांधीजी ने भारतीय जनता में आत्मबल नैतिकता, दृढ़ता, उदारता और चारित्रिक गुणों का विकास किया । द्विवेदी युग में गांधीवाद का स्पष्ट प्रभाव है । भारतेन्दु राष्ट्रीयतावादी है गुप्त गांधीवादी प्रसाद आनंदवादी तथा पन्त गांधीवादी साम्यवादी तथा अरविंदवादी है ।

संदर्भ सूची :

१	हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ	डॉ. शिवकुमार शर्मा	४५०
२	हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ	डॉ. विजयपाल सिंह	१०८
३	हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ	डॉ. शिवकुमार शर्मा	४५५
४	स्वामी विवेकानंद जीवन चरित्र	स्वामी जितात्मानंद	१६६
५	हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ	डॉ. शिवकुमार शर्मा	४५७
६	हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ	डॉ. शिवकुमार शर्मा	४५९

✩✩✩

दूसरा अध्याय
भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के विविध आयाम

- प्रस्तावना
- संघर्ष की ओर–राजनैतिक चेतना का बीजांकुर
- सन् १८५७ ई. का विप्लव
- ज्वालामुखी विस्फोट
- कोंग्रेस के विभिन्न अधिवेशन
- भारतीय राष्ट्रीय कँाग्रेस के उद्गम से सम्बद्ध सिद्धांत
- रोलेट–एक्ट (सत्याग्रह)
- जलियावाला बाग का हत्याकांड
- नरमदल–गरमदल
- बंग–भंग
- स्वदेशी आंदोलन
- सूरत–कँाग्रेस (सूरत–विभाजन)
- प्रथम विश्वयुद्ध

- ✪ होमरूल आंदोलन
- ✪ असहयोग आंदोलन
- ✪ साईमन कमिशन
- ✪ बारड़ोली सत्याग्रह
- ✪ नमक सत्याग्रह
- ✪ लगान बंदी आन्दोलन
- ✪ द्वितीय महासमर
- ✪ क्रिप्स–प्रस्ताव
- ✪ अगस्त क्रांति
- ✪ सन् १६४२ ई. का विद्रोह और भारत छोड़ो आंदोलन
- ✪ गदर आंदोलन
- ✪ आजाद हिन्द फोज का चित्रण
- ✪ नाविक विद्रोह
- ✪ मुस्लिम लीग की स्थापना
- ✪ स्वाधीनता का आलोक
- ✪ उपसंहार

दूसरा अध्याय
भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के विविध आयाम

✩ प्रस्तावना :

हिन्दी उपन्यासों में भारतीय स्वातंत्र्य संघर्ष का चित्रण उस रत्नमय सागर के समान है जिसमें जहाँ चाहें डूबकी लगाइए कोई न कोई घटनात्मक रत्न हाथ अवश्य लगेगा । संभव है कुछ रत्नों पर धूल लिपटी हो या कुछ दबे पड़े हों । परंतु राजनीतिक संदर्भ प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में चाहे या अनचाहे उपन्यासों ने बहुधा देखने को मिलते हैं । इच्छा तो था, उन सभी उपलब्ध चित्रित घटनाओं पर प्रकाश डाला जाए, परंतु जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि कुछ सीमाएं होती हैं । इस तथ्य का ध्यान आते ही कुछ को छोड़ना पड़ता है और कुछ को समेटना, इसलिए स्वातंत्र्य संग्राम की प्रमुख–प्रमुख घटनाओं का ही विश्लेषण संभव है ।

भारतवर्ष का स्वाधीनता आंदोलन आधुनिक विश्व के इतिहास की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना है । भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने १५ अगस्त १९४७ को भारतीय संविधान सभा को संबोधित करते हुए कहा था –

“वर्षों पहले हमने भाग्यवधू से एक प्रतिज्ञा की थी ।
आज वह क्षण आ गया है । जब हम उस प्रतिज्ञा
को समग्र रूप में अथवा पूर्ण रूप में न सही बहुत
हद तक पूरा करेंगे ।”

भाग्यवधू से की गई प्रतिज्ञा स्वातंत्र्य संघर्ष के इतिहास की एक अद्वितीय कड़ी है । उन्नीसवीं शताब्दी भारत के इतिहास में पुनर्जागरण का वह काल है । जब भारतीय समाज अपने अंधविश्वासों एवं परंपराओं से भरे गहन गह्वर से बाहर निकला था । पाश्चात्य नव शिक्षा के आलोक ने उसे एक

नवीन जीवन दृष्टि प्रदान की थी । क्योंकि विज्ञान एवं यंत्र की धनात्मक भूमिका ने संक्रामक भौगिकता की सर्वग्राही अंधी सत्ता के चक्रव्यूह का निर्माण किया था जो मानवीय जिजीविषा के लिए चुनौती बनकर सामने आया ।

भारतीय स्वाधीनता संग्राम की घटनाओं का प्रारंभ कहाँ से माना जाए बड़ा प्रश्न है क्योंकि इसके प्रारंभ से लेकर आजतक भारतवर्ष किसी न किसी की सत्ता के तले रोंदा गया, विवश बनाया गया । इतिहास को देखें तो चारों ओर घोर निराशा ही निराशा प्रतीत होती है । ऐसी स्थिति में किस घटना से शुरूआत की जाय । एक नजर डालें तो मुगल सल्तनत के समय में भी भारतीय जन–ज्वार ने गुलामी से मुक्ति पाने का प्रयत्न किया था, लेकिन हम सीमा से बंधे हुए हैं इसलिए आधुनिक काल के समय के अंतर्गत सवाधीनता संग्राम के लिए घटित घटनाओं को ही हम देखना उचित समझेंगे । इसलिए अंग्रेजों के शासनकाल से अर्थात् १८५७ से १९४७ तक की घटनाओं का उल्लेख करेंगे ।

✰ संघर्ष की ओर – राजनैतिक चेतना का बीजांकुर :

सांस्कृतिक पुनर्जागरण के फलस्वरूप भारतीय नवशिक्षित वर्ग धार्मिक तथा सामाजिक रूढ़ियों के अतिरिक्त राजनीतिक पराधीनता के चुंगल से मुक्ति पाना अनिवार्य मानने लगा । ब्रिटिश अत्याचारों, बाढ़, सूखा और अकालों का भारी भरकम बोझ जनता से उठाया न उठता था । भारतवासियों के मन में अब कटुता और धृणा का भाव उत्पन्न होने लगा । जिनके भी अनेक कारण थे । अंग्रेजों के अत्याचार दिन–प्रतिदिन बढ़ते जाते थे । जनता मूक पशु की तरह उनका विरोध किये ही बिना चुपचाप उसे सहन करती थी । शासक और शासित की दूरी दिन दूनी रात चौगुनी कटुता के कारण बढ़ती ही गई । सामाजिक सुधार आंदोलनों की विविध समस्याएँ शासन तंत्र से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखती हैं । बिना आर्थिक विकास तथा राजनीतिक कानूनों को प्राप्त किए

सामाजिक समस्याओं का समाधान संभव नहीं होता । व्यक्ति और समाज की उन्नति के लिए जनता जब स्वशासन पाना अनिवार्य मानने लगी । जनता का विचार सही था, हमारे देश में हमें ही पराधीन, गरीब और लाचार बना दिया, यह कहाँ का न्याय है फिर भी प्रत्येक भारतीय यह सब देख रहा था, उसके प्रत्येक अत्याचार का जवाब भारतवासी बड़ी सरलता से दे सकता था लेकिन हम खून बहाना नहीं चाहते । फिर भी ब्रिटिश शासन का रुख असहयोगपूर्ण तथा उदासीन था । भारतीय सोचने लगे थे कि –

"बिना स्वाधीनता के सुख संभव नहीं है ।"[२]

क्योंकि राष्ट्रीय स्वाधीनता सामाजिक स्वाधीनता पाने की प्रथम सीढ़ी है । हम जानते हैं कि किसी भी समाज को जब तक भौतिक आधार परिवर्तन नहीं होता तब तक उस समाज में पिछड़ापन विद्यमान रहता है । शासकों की प्रतिक्रियावादी हरकतों के कारण ही जन–आंदोलन जन्म लेते हैं । स्वशासन और स्वाधीनता द्वारा ही सामाजिक समस्याओं का समाधान संभव होता है ।

भारत में अंग्रेजोंने आकर उस वटवृक्ष की तरह कार्य किया जिसके नीचे कुछ ही विकसित नहीं होता था, अगर उनकी इच्छा थी तो केवल अपना स्वार्थ साधना, उसने भारतीयों पर इस तरह अत्याचार किये कि उसे एक जिन्दा लाश बना दिया । ब्रिटिश शासन ने अपनी नींव को सुदढ़ करने के लिए ही वटवृक्ष की जड़ों के समान भारत में अनेक नवीन वर्गों को जन्म दिया । जिनमें जमींदार, भूमिपति, जोतदार, मजदूर व्यापारी और साहुकार मुख्य थे । दूसरी ओर शिक्षित नवयुवक उनको वह दासतापूर्ण जीवन कचोटने लगता । वे निराश बन जाते थे । उनके साथ अंग्रेजों द्वारा किसी भी स्तर पर समानता का व्यवहार नहीं होता था । परिणाम स्वरूप उनके मन में राजनीतिक असंतोष का अंकुर उनके हृदय में अंकुरित होने लगा । जिनमें विशेषकर पेशेवर वर्ग–वकील, डॉक्टर, अध्यापक तथा सरकारी कर्मचारी थे जो जानते थे कि इस तरह हम

गुलाम और पराधीन रहे तो ब्रिटिश लोग कुछ नहीं रखेंगे, हमारी भारतमाता को वह लूट लेंगे ।

जनता में इसी असंतोष ने भारत में विभिन्न राजनीतिक संस्थाओं को जन्म दिया था । फिर भी हर संस्था के आंदोलन का स्वरूप ऐसा न था, जैसा स्वरूप उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों की संस्थाओं का था । यहाँ से ही राजनैतिक संघर्षों की शुरूआत हो गई थी । अब जनता जागृत हो गई थी, उसको अपने ही राष्ट्र में ऐसे मर–मर के जीना मंजूर नहीं था । वह ब्रिटिश शासन के प्रत्येक अत्याचार का जवाब अब हटकर देना चाहते थी । परिणाम स्वरूप विविध जन आंदोलनों का प्रारंभ हुआ था ।

✰ सन् १८५७ ई. का विप्लव :

ब्रिटिश भारत के इतिहास में १८५७ के विद्रोह ने एकदम कायापलट ही कर दी । यह एक ऐसा जन आंदोलन था, जिसको आज भी भारत का बच्चा उसे ऐसे ही अपने मस्तिष्क में संजोए रखा है ।

भारतीय इतिहास में १८५७ की क्रान्ति का महत्त्वपूर्ण स्थान है । इसे मात्र सिपाही विद्रोह नहीं मानते, सच पूछिए तो यह समस्त भारतवासियों द्वारा अंग्रेजी हुकूमत को ध्वंस करने का सर्वाधिक सर्व प्रथम प्रयास था । शासकों और शोषितों के सम्बन्धों में आमूलचूल परिवर्तन हो गया । डलहौली के लौट जाने के बाद एक वर्ष के भीतर ही उत्तर और मध्य भारत में एक शक्तिशाली जन विद्रोह भड़क उठा जिसने अंग्रेजीराज को लगभग खत्म सा कर दिया । १८५७ के इस विद्रोह का प्रारंभ इस्ट इन्डिया कंपनी के अधीन नौकरी कर रहे भारतीय सिपाहियों की बगावत से हुई लेकिन यह शीघ्र ही हमारे सारे देश में बिजली की तरह फैल गयी । भारतीय एक साल से भी अधिक समय तक अंग्रेजों के खिलाफ बहादुरी से लड़ते रहे थे ।

१८५७ का यह विद्रोह सिपाहियों की बगावत की उपज मात्र नहीं था । इसके पीछे अंग्रेजों के निर्मम अत्याचारों के विरुद्ध भारतीय जनता की शिकायतों तथा नफरत का इतिहास छिपा था । एक सदी से भी अधिक समय से अंग्रेज भारत पर अपना साम्राज्य बढ़ाते जा रहे थे । भारत की जनता ने उसे दिलसे कभी अंगीकार ही नहीं किया था । और यही कारण था कि इस विद्रोह से पहले भी ५० वर्षों से देशी सिपाहियों तथा जनता ने कइबार अंग्रेजों को चुनौती दी । अंग्रेज यहां व्यापारी के रूप में आये थे । उस समय भारत में मुगल शासन था । जब लोर्ड डलहौली ने १८५७ में कहा था कि वह एक शांत भारत को छोड़कर इग्लैंड जा रहा है । तब उसने बड़े विश्वास के साथ कहा था कि "अब भारत में कोई उथल-पुथल जल्दी नहीं होगी । बड़ी चतुराई से उसने अनेक राजाओं को अधिकार से वंचित कर दिया था । १८५७ की क्रांति के पहले छिट-पुट घटनाओं को भी उसने बड़ी बेरहमी से दबा दिया था, लेकिन खुदा को शायद यह मंजूर नहीं था, लोर्ड डलहेली के जाने के कुछ ही दिनों बाद भारतीयों ने कम्पनी सरकार के खिलाफ बगावत प्रारंभ हुआ ।"[३]

इस जन विद्रोह का एक महत्त्वपूर्ण कारण अंग्रेजों द्वारा किया जाने वाला भारत का आर्थिक शोषण था । ईस्ट इन्डिया कंपनी ने यहां के वस्त्र उद्योग को नष्ट कर दिया था । इंग्लैड अपने यहाँ बना कपड़ा भारत को निर्यात कर रहा था । इसका परिणाम यह हुआ कि यहाँ का कपड़ा उद्योग नष्ट हो गया जिससे मजबूर होकर लोग इन्लैड का बना हुआ कपड़ा खरीदने लगे । लाखों लोग बेकार बन गये अनेक लोगोंने खेती का सहारा ले लिया जिससे कृषि पर अधिक भार आ पड़ा । लाखों बुनकर बेकारी और भुखमरी से मर गये ।

भारतीयों की यह दयनीय स्थिति का वर्णन १८३४ में तत्कालीन गवर्नर जनरल लोर्ड विलियम बेंटिक ने स्वयं अपने शब्दों में उसका वर्णन किया है कि-

"भारतीयों की दयनीय दशा और मुसीबत की मिशाल दुनिया के व्यापार में कहीं नहीं मिलती । बुनकरों की हड्डियों से समस्त भारतीय मैदान भरे पड़े हैं ।"[४]

अंग्रेजों ने जिन तरीकों से भारतीयों का शोषण किया है, ऐसा शोषण उसके पहले के किसी भी शासक ने नहीं किया था । शासक चाहे जो भी रहा हो सभी ने सारा धन लेकर भारत को हमेशा के लिए कंगाल बना दिया और सारा धन इग्लैंड भेजना शुरू कर दिया । अंग्रेजों ने कृषि, भूमि तथा राजस्व के सम्बन्ध में ऐसी नीति अपनायी कि बड़ी संख्या में किसानों की जमीन उनके हाथों से निकलकर व्यापारियों और महाजनों के पास चली गयी । और भारत का तात अब बुरी तरह से कर्ज में फँस गये । इसके अलावा व्यापार में सरकार ने जिस नीति को अपनाया था, वह भी अंग्रेजी व्यापार तथा उद्योग का हित देखकर तय की गयी थी । इसको भारतीय व्यापार को भारी धक्का पहुँचा । भारत अब व्यापार क्षेत्र में पीछे रह गया ।

अंग्रेजों ने भारत की जनता को इतना हैरान और परेशान कर दिया कि जनता से समय–समय पर भारत में हुए या भारत के भिन्न भागों में हुए सैनिक विद्रोहों तथा परिद्रोहों के रूप में प्रकट होता था । जनता के अंदर यह शोले आग की चिन्नगारी बन गये । धीरे–धीरे सुलगती हई अग्नि १८५७ में धधक उठी और उसने अंग्रेजी राज्य की जड़ों तक को भी हिला दिया ।

इस विद्रोह के बारे में अनेकों ने अपने विचार दिये हैं जिनमें कुछ इस प्रकार हैं –

"जो संघर्ष अभी हमने देखा है वह एक स्थानीय परिद्रोह नहीं, अपितु राष्ट्रीय युद्ध था ।"[५]

– लोर्ड केनिंग गवर्नर – जनरल

"इस समय अनेक अंग्रेजों ने इन घटनाओं को मुख्य रूप से सैनिक विद्रोह ही माना–स्वाभाविक है कि इससे बड़े अर्थ में राज की प्रकृति पर ही संदेह हो जाता है।"[६]

– जुडिथ ब्राउन

"यह सैनिक विद्रोह से बहुत बड़ा था ... परंतु फिर भी प्रथम स्वतंत्रता संग्राम से बहुत कम था।"[७]

– स्टेन्लि वोलार्ट

१८५७ की क्रांति को अधिकांश अंग्रेज विद्वानों ने मात्र सिपाही विद्रोह कहा था। दुःख की बात यह है कि कुछ भारतीय इतिहासकारों ने भी १८५७ के स्वतंत्रता संग्राम को केवल सिपाही विद्रोह कहकर इसकी उपेक्षा की थी। मेरा तो यहां तक कहना है कि १८५७ का संघर्ष न तो केवल सैनिक विद्रोह था, न कुछ राजाओं द्वारा प्रतिहिंसा का स्वरूप था। सच पूछा जाय तो भारत वर्ष की आजादी के बाद बहुत से भारतीय इतिहासकारों ने इसे प्रथम स्वतंत्रता संग्राम ही कहा है।

१८५७ का यह विप्लव भारतवासी के दिल में आजादी प्राप्त करना था, इसमें मुझे कोई संदेह नहीं, निःसंदेह १८५७ की क्रांति का स्वरूप राष्ट्रीय था अतः हम इसे प्रथम स्वतंत्रता संग्राम कहें तो इसमें अतिशयोक्ति नहीं है।

१८५७ की घोषणा का उद्‌देश्य बलवे के अंत में लोगों में शान्ति कायम रखने के लिए की गई थी। जब शांति हो गयी और लोग भोले दिल के बन गये, तब उसका अर्थ ही बदल गया। उस विप्लव का महान योगदान यह था कि वह भारतीय जन–जन की चर्चा का विषय बन गया। अमानुषिक अत्याचारों के जख्मों को जनता भुला न पाई। पुनः बिखरे हुए सूत्र एकता का रूप ग्रहण करने लगे। एकता में बल की धारणा जोर पकड़ने लगी, प्रान्तीयता ने अपना चोला त्याग कर अखिल भारतीयता के स्वरूप धारण कर लिया। उच्च शिक्षा के विस्तार ने इसमें चार चांद लगा दिए।

अंत में कहना है कि इसमें विद्रोह के विफल होने का एक महत्त्वपूर्ण कारण यह भी था कि भारतीय आचरण गिरा हुआ था, विद्रोह के नेताओं में भी एक मत नहीं था । वे आपस में ईर्ष्या करते थे और लगातार एक दूसरे के विरुद्ध षड़यंत्र रच रहे थे । उन्हें इस बात का कोई क्यास नहीं था कि उनके इन आपसी मतभेदों के कारण संयुक्त उद्देश्य पर प्रभाव पड़ेगा । वास्तव में आपसी द्वेष तथा षड़यंत्रों के कारण ही हारे । इसमें लोगों में व्याप्त असंतोष की भावना ने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की ।

इस विद्रोह के पश्चात ब्रिटिश सरकार ने देश की आन्तरिक स्थिति को सुधारने की दिशा में ध्यान लगाना प्रारंभ किया । यदि देखा जाय तो वास्तव में भारत में यही से वैधानिक विकास का सूत्रपात हुआ और धीरे धीरे भारतीयों को अपने देश के शासन में लेने का अवसर प्रदान किया जाने लगा इस प्रकार भारत में प्रजातंत्रिक शासन की नींव रखी गयी । इस विद्रोह ने भारतीय जन मानस में राष्ट्रीयता की सची ज्योति जलायी जो आगे भी प्रज्जवलित होती रही ।

इस प्रकार १८५७ का विद्रोह एक ऐसी क्रांति थी जिससे भारतीय आगे के विद्रोह के लिए तेयार हो चुके थे यह हक ऐसा संघर्ष था, जो भारतवासी के दिलोदिमाग पर आज भी प्रासंगिक है ।

✰ ज्वालामुखी विस्फोट :

विप्लव के बाद जनता में सरकार के खिलाफ मन ही मन धृणा का भाव उत्पन्न हुआ था । सन् १८७८–७६ के आसपास संपूर्ण भारत में आर्थिक समस्याएँ राजनीतिक समस्याओं के साथ घुल–मिल गई थीं । कृषक और बुद्धिजीवी वर्ग का असंतोष बहुत शीघ्र ही एक लोकप्रिय आंदोलन का रूप धारण कर खतरे के बिन्दु पर पहुँचनेवाला था, जिसका कारण था असह्य गरीबी, अकाल तथा ब्रिटिश नौकरशाही के ऐसे जघन्य अत्याचार थे, जिसको

सुनते ही हमारे रोगटें खड़े हो जायें, ऐसे अनेक अत्याचार अंग्रेज सरकार ने भारत की निर्दोष जनता पर गुजारे थे । ऐसी अनेक छोटी–मोटी घटनाएँ थीं जो बड़ा स्वरूप ले रही थीं । कृषकों ने भी अब शस्त्र उठा लिए थे । अनेक जन–जातियाँ अब विप्लव पर उतर आयी थीं । परोक्ष रूप से विप्लव रूपी ज्वालामुखी अंदर ही अंदर हलचल मचा रहा था, ओर फूटने की प्रतीक्षा में था । प्रजा में अब कुछ भी संभव था । क्योंकि भारत में ब्रिटिश पूंजीवाद सड़ते हुए दांत के समान निरंतर दर्द कर रहा था । उस दर्द से छूटने का एक मात्र सरल उपचार था उसे उखाड़कर फेंक देना । किन्तु वह शीघ्र हमारा पीछा छोड़नेवाला न था ।

इसलिए भारतीयों के दिलों में ऐसा बारुद के रूप में संगृहीत हो चुका था, जिसका भयंकर रूप कब प्रकट हो यह कहना मुश्किल था प्रजा अब लोहे की तरह कठिन हो गयी थी । प्रजा के मन में पैदा हुए हर एक विचार अब आग जैसा बन गया था, उसी को हम विस्फोट कहते हैं ।

ज्वालामुखी विस्फोट नाम सुनते ही हमें ऐसा लगता है कि अभी कोई विस्फोट या दुर्घटना का वर्णन होगा मगर यह ऐसा विस्फोट था जो जनता के भीतर छिपा था, यह ऐसे विस्फोट की तो बात है, जनता अब जागृत हो गयी थी, उसका अब ऐसी गुलामी की जंजीरों से जकड़ा हुआ जीवन पसंद नहीं था इसके साथ अंग्रेज सरकार के विभिन्न अत्याचारों, तथा दुर्व्यवहार का एवं छोटे–मोटे आंदोलनों का रूप जनता के भीतर तैयार हो रहा था वह था ज्वालामुखी विस्फोट ।

✰ कोंग्रेस के विभिन्न अधिवेशन :

राष्ट्रीय कोंग्रेस एलेन ओक्टेवियन ह्यूम की एक आदर्शवादी चुनौती तथा संघटनात्मक कार्य कुशलता के कारण १८८५ में अस्तित्व में आयी थी । उसे

दूरदर्शी भारतीयों ने लगभग दस वर्ष ही पूर्व ही तैयार किया और पुर्वानुमानित किया था ।

भारतीय राष्ट्रीय कोंग्रेस जैसा कि हम इसके नाम से विदित है । इसलिए गठित की गई थी कि वह संपूर्ण भारत के कल्याण के लिए कार्य करे । यह राष्ट्रीय संस्था थी, न कि एक वर्ग की मत अथवा संप्रदाय की । इसका उद्देश्य यह था कि इसमें सभी जातियों, धर्मों तथा सभी सम्प्रदायों का प्रतिनिधित्व हो । इसकी सदस्यता उन सभी स्त्रियों तथा पुरुषों के लिए था जो देश के लिए कार्य करने के लिए तत्पर थे और यह भी एक सत्य है कि सभी संप्रदायों के लोगों ने हिन्दू, मुसलमान पारसी, इसाई, सिक्ख, एंगलो इण्डियन तथा युरोपियन लोगों ने इस संस्था के उत्थान तथा विकास में काम किया । अपने नाम के अनुकूल ही कोंग्रेस ने आरंभ से ही अपना अखिल भारतीय स्वरूप बनाए रखा है । इसके वार्षिक अधिवेशन भारत के सभी प्रांतों के प्रमुख नगरों में होते रहे हैं । कोई प्रान्त यह नहीं कहता की हमारी अनदेखी की गई है ।

इसी प्रकार कॉंग्रेस ने समस्त देश के प्रश्नों को संपूर्ण देश के दृष्टिकोण से उठाया है ।

✰ भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेस के उद्गम से सम्बद्ध सिद्धांतः

यह कहना ठीक नहीं होगा कि भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेस का उद्गम किसी एक व्यक्ति द्वारा अथवा अचानक हुआ । साधारण शब्दों में वर्णन करते हुए सुरेन्द्रनाथ बेनर्जी ने कहा था कि कोंग्रेस –

“उन शिक्षित करने वाले प्रभावों के फलस्वरूप अस्तित्व में आई, जो मैकाले तथा उसके साथियों ने भारत में बोए ।”[८]

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक भारत में राष्ट्रीय चेतना पूर्ण रूप से व्याप्त हो चुकी थी । इसकी अभिव्यक्ति विभिन्न धार्मिक, सामाजिक तथा

राजनीतिक संगठनों के रूप में होने लगी थी । ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति विरोध तथा अंसंतोष की भावना ने किया । यद्यपि देश के विभिन्न प्रान्तों एव नगरों में अनेक राजनीतिक संगठनों की स्थापना हो चुकी थी, लेकिन फिर भी एक अखिल भारतीय स्तर के राजनीतिक संगठन की स्थापना की आवश्यकता महसूस की जा रही थी ।

१८७७ के दिल्ली दरबार के बाद से ऐसी संस्था केगठन के विचार तेजी से लोगों के मस्तिष्क में घूमने लगा था । उस समय प्रमुख नेता सुरेन्द्रनाथ बेनर्जी, जमशेदजीभाई, विश्वनाथ मांडलिक मंगलदास नाथूभाई, नौरोजी फरहनजी जैसे लोग जब कभी आपस में मिलते तब एक दूसरे से कहते –

''अगर निरंकुश वाइसराय की शान शौकत बढ़ाने के लिए राजे महाराजों को एक तमाशा खड़ा करने के लिए बाध्य किया जा सकता है तो क्या जनता को संगठित कर वैज्ञानिक उपायों द्वारा निरंकुश शासन की भावना को रोका नहीं जा सकता ?''[९]

परंतु जनता को संगठित करने में एक न एक बाधा आती रही । १८५७ के बाद लोर्ड लिटन के अविवेक पूर्ण ओर उसके बाद लोर्ड रिपन के शासन काल के आंदोलन ने भारतीय राजनीति की गति को तेज कर दिया । अंत में १८८३ में एक अखिल भारतीय संस्था बनाने के विचार कार्यरूप में परिपात किया गया और कलकते में एक भारतीय राष्ट्रीय कोंग्रेस का जन्म हुआ । इसमें विभिन्न प्रांतों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया । इसके अध्यक्ष आनंद मोहन वसु ने कहा – ''राष्ट्रीय संसद के रास्ते की प्रथम मंजिल हमने इस संमेलन द्वारा पार कर ली है ।''[१०] इस संमेलन की मुख्य बात बेनर्जी द्वारा की गयी । उनके भाषण के सम्बन्ध में विलफ्रीड ब्लण्ड ने कहा 'मैंने अपने जीवन में जो अच्छे अच्छे भाषण सुने उनमें से एक यह था ।''[११] इस संमेलन में तड़क भड़क वाले काई प्रस्ताव पारित नहीं किये गये थे ।

लगभग इसी समय एलन ओक्टेवियन ह्यूम में एक ऐसी संस्था बनाने का विचार उभरा जो संपूर्ण राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करे । ह्यूम के मस्तिष्क में ऐसे कठिन कार्य का विचार क्यों आया कि वैद्यानिक राजनीति की एक अखिल भारतीय संस्था का निर्माण किया जाये । इसके लिए हमें उनके जीवन पर नजर डालनी होगी । ह्यूम के पिता देशभक्त और सुधारक थे । उन्होंने बारह वर्ष तक ईष्ट इण्डिया कंपनी की सेवा की और बाद में संसद के सदस्य बन गये थे । तीस वर्षो तक वे संसद के उग्रदल के नेता गिने जाते रहे । ह्यूम १८५७ की क्रान्ति से नौ वर्ष पहले बंगाल 'नागरिक सेवा' में नियुक्त होकर आए । वे चुनिंदा अंग्रेजों में से थे जो यह विचार रखते थे कि भारत में अंग्रेजी राज तो बना रहे परंतु यह राज भारतीयों की भलाई में दत्तचित्त हो । २६ वर्ष की अवस्था में वे इटावा जिल्ले के मेजिस्ट्रेट नियुक्त हुए जिस समय विद्रोह हुआ उस समय इटावा भी दूसरे जिल्लों की तरह भारतीयों के अधिकार में आ गया था । ह्यूम में इटावा खाली करने और बाद में फिर उस पर अधिकार करने में बड़ा साहस दिखाया था ।

ह्यूम स्वतंत्रता की भावना के प्रबल पोषक थे । उनका हृदय भारत की निर्धनता एवं दुर्दशा पर व्यथित था । अपने सिद्धांतों तथा विचारों के लिए ह्यूम को दण्ड भोगना पड़ा । उनकी पदावनति कर दी गयी । लेकिन ब्रिटिश सम्राट की निष्ठा प्रजा की हैरियत से ह्यूम को भारत में अंग्रेजी राज के लिए भारी खतरा नजर आया और वे भारत और ब्रिटेन दोनों देशों की अपने ढंग से सेवा करते रहे । सरकारी सेवा से अवकाश प्राप्त करने के बाद उन्होंने एक राष्ट्रीय संगठन जो कॉंग्रेस के नाम से प्रसिद्ध हुयी, सरकारी सेवा में होने के कारण ह्यूम को पुलिस की कई कई गुप्त रिपोर्ट्स को पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ जिनसे पता चलता था कि देशभर में अंदर ही अंदर अशान्ति बढ़ रही है ।

तत्कालीन भारतीय राजनीति में दो विचारधाराए कार्य कर रही थीं । एक विचारधारा के लोग हिंसा द्वारा अंग्रेजी शासन को समाप्त कर देने के पक्ष में थे । दूसरी विचारधारा के लोग अंग्रेजी शासन का अन्त नहीं करना चाहते थे । ये लोग भारतीय शासन में प्रतिनिधित्व तथा बाद में स्वशासन चाहते थे । ह्यूम को प्रमाण मिले थे और किसान विद्रोहों से यह स्पष्ट हो गया था कि हिंसात्मक शक्तियों ने कई बार मजबूत संगठन बनाकर ब्रिटिश शासन पर चोटें की थीं ।

इस प्रकार भारतीय कॉंग्रेस के उद्भव के विषय में सब के अलग–अलग अभिप्राय मिलते हैं । पटाभिसितारमैया जो एक समय के कोंग्रेस के अध्यक्ष भी थे और एक इतिहासकार ने भी लिखा है कि, यह एक रहस्य ही है कि किसके मन में पहले पहल अखिल भारतीय कॉंग्रेस का विचार आया ।

भारतीय कॉंग्रेस के उद्भव के विषय में जितने भी मत मिलते हैं उन सभी मत–सिद्धांतों में कुछ न कुछ अंश सत्य का अवश्य मिलता है । इस दिशा में महोदय ह्यूम को भी सफलता मिली और मैं उन्हीं को ही कोंग्रेस के उद्भव का जनक मानता हूँ । हमारे भारतीय नेताओंने भी उसमें अपने विचार प्रदर्शित किये यह सब भी कोंग्रेस के उद्भव में अपना सहयोग देते हैं ।

✰ रोलेट–एक्ट : (सत्याग्रह)

पश्चिमी भारत की विप्लववादी राजनीतिक गतिविधियों से ब्रिटिश शासन तंत्र परेशान हो उठा था । भारत की जनता जाग उठी थी । कोंग्रेस के विविध अधिवेशनों में ब्रिटिश शासन तंत्रने भारतीय एकता को देख लिया था । हमारे क्रांतिकारी आंदोलन, विशेषकर 'गदर' की पुनरावृत्ति को रोकने के लिए ब्रिटिश न्यायविद श्री रोलेट के सभापतित्व में रोलेट–कमेटी की नियुक्ति की गई थी । भारत सरकार ने राष्ट्रीय संग्राम के दमन हेतु विशेष कानूनों द्वारा

अधिकार पाने के लिए 'धारासभा' में दो बिल पास किए । महात्मा गांधीजी के नेतृत्व में भारत की प्रजा ने उन बिलों का जोरदार विरोध किया ।

उसने १९१८ में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की – कि रोलेट कमेटी इस निष्कर्ष पर पहुंची कि क्रांतिकारी अपराधो से निपटने के लिये साधारण फौजदारी वाला कानून अपर्याप्त था उसने दो प्रकार के कुछ विशेष अलग विधान बनाने की सिफारिश की । जिसमें एक विधान था दण्डात्मक और दूसरा विधान था प्रतिबन्धक । सरकार ने रोलेट कमेटी की सिफारिश का ध्यान में रखकर दो विधेयक बनायें । उसके विरोध के रूप में राष्ट्र व्यापी प्रतिक्रिया भी हुई, लेकिन सरकार अपने विचारों पर अडिग थी । उसने उन विधेयकों का एक्ट बनाने के सम्बन्ध में अपना विचार नहीं बदला । इस विधेयों में उसने यह व्यवस्था की थी कि जिस व्यक्ति के कार्य से शांति भंग होने की संभावना हो उसको तुरंत केद कर लिया जाए, जिस व्यक्ति पर राजद्रोही होने का संदेह हो उस पर नियंत्रण रखा जाए । जिसमें जनता अधिक उद्रेलित एवं उसमें रोष की भावना फैले यह सब अपराध माना जाए । तब हमारा भारतीय जनता ने इस विधेयक को एक नया नाम दिया 'काला कानून' इस नियम को हमेशा सार्वजनिक और भारत के राजनीतिक जीवन, दोनों के ही दमन के लिए बनाया गया था ।

गांधीजी ने रोलेट एक्ट का डटकर विरोध किया । उसके बारे में स्वयं गांधीजी कहते हैं कि –

"मुझे स्वप्नावस्था में यह विचार हुआ कि इस कानून के जवाब में हम सारे देश को हड़ताल करने की सूचना दें ।"[१२]

भारतीय जनता ऐसे समय में अपने आपको एक असहाय पा रही थी । विद्वान एवं तजज्ञ नेताओं को भी इस बाबत में सोचना मुश्किल सा बन गया । उन्हें कोई भी मार्ग नहीं सुझ रहा था रोलेट विधेयक एक बार पारित होने से पूर्व गांधीजी ने वायसराय को इस पर एक बार पुनः विचार करने को

कहा । लेकिन उसकी बात को कोई परिणाम नहीं निकला । भारतीय जनता का विश्वास एवं आत्मबल टूट रहा था । लेकिन सभी का विचार यह था कि इस आंदोलन को कैसे रोका जाये ।

एक अच्छे सत्याग्रही के रूप में गांधीजी ने फरवरी १९१९ में सरकार को एक निवेदन भेजा कि वह अनुचित रोलेट विधेयक पारित न करें – प्रस्तावित अधिनियमों द्वारा देश की राजनीतिक चेष्टा कम हो जायेगी और उतरदायी सरकार एक उपहास बन जायेगी । तब हमारें केन्द्रीय विधान सभा के सदस्य श्री निवास शास्त्री ने कहा कि –

“यदि विधेयक पारित हो गये तो मैं नहीं समझता कि यहाँ बैठा हुआ एक व्यक्ति भी इसका विरोध करने के लिए आन्दोलन में सम्मिलित होना अपना धर्म नहीं सझेगा ।”[१३]

सरकार ने इसकी भी अवहेलना की और ५१ मार्च १९१९ को रोलेट अधिनियम को पारित कर दिया ।

तब महात्मा गांधीजी ने एक नए एवं व्यावहारिक अखिल भारतीय सामूहिक प्रतिसाद की योजना बनाई । जिसमें यातना का भाव तो था मगर वह भी पूर्णतया शांतिमय एवं अहिंसात्मक था । गांधीजीने रोलेट कानून का सख्त विरोध किया था । लोगों के एक स्वर में विरोध करने पर भी भारत सरकार ने रोलेट कानून बना दिया था, सभी इसके विरोधी थे । गांधीजी ने कोरी लफ्फाजी से नहीं बल्कि ठोस तरीके से उसका विरोध करना तय किया था । प्रजाने उनको पूर्ण सहयोग दिया और सारे देश में हड़ताल करने की सुचना दे दी गई, इस हड़ताल के प्रति लोगों की प्रतिक्रिया आश्चर्यजनक थी देश की प्रजा, सभी भागों में सभी सम्प्रदाय के लोगों में इस हड़ताल को सफल कैसे बनाया जाये ऐसी होड़ लगाये खड़े थे, और सभी ने एक मत से ३० मार्च को हड़ताल हुई तब जन समूह ने रेल्वे के अल्प आहार गृह को बंध कराने का प्रयत्न किया तब पुलिस और जनता में झगड़ा हो गया तब पुलिस की

गोली से आठ लोग मर गये तथा बहुत से लागों की स्थिति गंभीर हो गई थी । सरकार को और अधिक गड़बड़ी का भय सा हुआ तब उसने गांधीजी को बंदी बना लिया ।

एक ओर प्रजा में सरकार के विरुद्ध आक्रोश एवं क्रोध था, तब गांधीजी का बंदी बनना वह कैसे स्वीकार करती उसने उसकें विरोध के लिए अधिक आंतक मचाना शुरू कर दिया, बम्बई अहमदाबाद तथा पंजाब के कई नगरों में प्रदर्शन हुए कुछ स्थानों पर तो हिंसात्मक घटनाएं भी हुईं । प्रजा के ऐसे व्यवहार एवं सरकार की जीद से गांधीजी की मानसिक स्थिति बिगड़ी उसको वेदना एवं दुःख हुआ और उसको रोलेट एक्ट को एक महान भूल की संज्ञा दी ।

लोगों में भी इसका असर हुआ वह रोलेट एक्ट के बारे में अंत में वही कहते हैं कि –

"रोलेट एक्ट के आधीन कोई वकील नहीं, और अपील नहीं और कोई तर्क नहीं ।"[१४]

✰ जलियावाला बाग का हत्याकांड :

आशा जीवन की संजीवनी है । जिस तरह आशा निष्ठा और विश्वास से भारतीय जनता ने युद्ध में ब्रिटिश सरकार की सहायता की वह भी फलवती न हुई । इन सबके बदले जो उपहार भारतवासियों को प्रदान किया गया वह उन्हें न भाया । मित्रों राष्ट्रों द्वारा 'युद्ध–उद्देश्य–पत्र' से पराधीन राष्ट्रों का स्वनिर्णय के जिस अधिकार की घोषणा की गई उसे भारत में लागू नहीं किया गया । तब सरकार ने रोलेट एक्ट की स्थापना की थी । प्रजाने उसका तीव्र विरोध किया ।

जलियावाला बाग में क्या हुआ ? यह हम सब अच्छी तरह जानते हैं, क्योंकि वह एक ऐसी दुर्घटना थी, जिसका प्रजा के मानस पर अब भी असर

छाया हुआ है । क्योंकि यह स्वाधीनता संघर्ष की एक रोमांचक कहानी है । १३ एप्रिल १६१६ को वैशाखी का पवित्र त्यौहार था । माइकल ओ, डायर का दमन पूरे जोरों पर था । उस दिन शाम को चार बजे जलियावाला बाग में एक सभा करने की घोषणा की गई । लगभग ५० हजार स्त्री–पुरुष तथा बच्चे इस सभा में उपस्थित थे, सभा चल रही थी और हँसराज सभा को सम्बोधित कर रहे थे तभी वहाँ अंग्रेज ब्रिगेडियर जनरल आई.इ.एच.डायर सैनिकों के साथ वहाँ आ धमका और उसने चारों ओर से सभा को घेर लिया । मुख्य प्रवेशद्वार पर उसने एक बख्तरबंद गाड़ी को लगाकर रास्ता पूरी तरह रोक लिया । और वहाँ आते ही उसने सैनिको को गोलियाँ चलाने का आदेश दिया । हमारी भारतीय जनता पर तब तक गोलियाँ दागी जाती रहीं जब तक सैनिकों के सारे कारतूस खत्म नहीं हो गये । बाद में उस निर्दय हंटर कमेटी के सामने बयान देते हुए जनरल डायर ने कहा कि –

‘‘मैं और गोली चलवाता, अगर मेरे पास और कारतूस होते । मैंने १६०० राउन्ड ही चलवाये क्योंकि मेरे कारतूस खत्म हो गये थे ।’’[१५]

ऐसे ही एक ही निर्दयी हृदय के व्यक्ति से ऐसा भयानक हत्याकांड पहले कभी आयोजित नहीं किया । इस भयानक हत्याकांड में हमारे ३७६ भारतीय शहीद हुए और लगभग ५००० जख्मी हुए । जनरल डायर की इस कायरता का पंजाब के गवर्नर सर माईकेल आ. डायर ने इतना सच्चा एवं उचित ठहराया था । उसने डायर को तार भेजते हुए कहा था कि –

‘‘आपका कार्य ठीक था । लेफ्टिनंट गवर्नर सराहना करते हैं ।’’[१६]

ऐसे जघन्य कार्य की सराहना करना कहा तक उचित था ? मगर सभी ने उसको प्रोत्साहित किया । डायर ने जलियावाला बाग पर जो हत्याकांड किया वह आज भी सभी भारतीयों के दिलों दिमाग पर इतना ही ताजा है । जैसा कल ही क्यों हुआ न हो ? उस कायर व्यक्ति ने हमारे निर्दोष, बालक, स्त्रियों तथा वृद्धों की जान ली थी ।

इस हत्याकांड की खबरों को सरकार ने इतना गुप्त रखा कि महीनों बाद तक देश की जनता को इसकी वास्तविकता को पता ही नहीं लग पाया । अंग्रेजों का यह दमन केवल अमृतसर तक ही सीमित नहीं रहा बल्कि लाहौर गुजरानवाला और कसूर आदि में अंग्रेजों ने ऐसी ही बर्बरता का महा ताण्डव रच दिया था ।

जलियावाला बाग की इस नर–संहार घटना से हिन्दुस्तान के स्वाधीनता आन्दोलन के एक नयी दिशा प्रदान की । जलियावाला बाग का यह भयानक हत्याकांड भारतवासियों के रग–रग में समा गया और उसका अंग्रेजों के प्रति अत्यंत विरोधी बना दिया था । हमरे क्रांतिकारियों की गतिविधियों में अप्रत्याशित तेजी आ गयी । जलियावाला बाग आज भी हमारे मन पर इस तरह असर छोड़ गया कि आज के इस युग में हम देखते हैं कि आज भी हमारे देश में जलियावाला बाग की घटना फिर से हमें याद आ जाती है । यह हमारे देश का दुर्भाग्य है कि आज भी ऐसी घटनाएँ हमारा पीछा नहीं छोड़तीं । जगह–जगह पर जलियावाला बाग की हत्या ही नजर आती है । फिर भी हमारे भारतवासी अपने देश के लिए हँसते–हँसते शहीद हो जाते हैं ।

✩ नरमदल–गरमदल :

गोखले ‘नरम’ दल के थे और तिलक ‘गरम’ दल के थे । इसलिए सब गोखले के नरम और तिलक को गरम कहते थे ।

“गोखले का अखाड़ा था कौंसिल भवन तो तिलक की अदालत थी गाँव की चौंपाल ।”[१७]

नरमदल के सभी कर्मचारी, व्यक्ति सरकार से टक्कर लेने और कानून के भंग आदि बातों से हमेशा सावधान रहते थे, क्योंकि वह हमेशा युद्ध या झगड़े से डरते थे । उनके बारे में हमारे भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू कहते थे कि –

"उन्हें नरम बनते बनते इतना पीछे हटना पड़ा हि उनकी और सरकार की विचारधारा में फर्क जानना मुश्किल हो गया ।"[१८]

दोनों दलों की विचारधाराएं भी अलग अलग थीं, उग्रवादी या गरमदल के नेता क्रांति में मानते थे । उनके प्रमुख चार नेताओं का महत्त्वपूर्ण यागदान रहा है । उन चारों के नाम हैं – लोकमान्य तिलक, विपिनचंद्र पाल, अरविन्द घोष तथा लाला लाजपतराय । इन चारों व्यक्तियों ने मिलकर गरमदल की परिभाषा बनाई है, इनकी आकांक्षाओं की और उनके कर्मों का मार्गदर्शन किया । तिलकने यह कहा कि –

"स्वराज मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है और मैं लेकर ही रहूँगा ।"[१९]

इस तरह दोनों की विचार धारा में फर्क था । दोनों दलों के लोग मध्यमवर्ग यानी सामान्य परिवार में से आये थे दोनों ही अंग्रेजी शासन के विरोधी थे । नरमदल के लोग झगड़े के डर के कारण भारत में अंग्रेजी शासन में भाग मांगते थे और सामाजिक समानता चाहते थे, क्योंकि नरमदल के लोग अंग्रेजी प्रथा से कोई भी प्रकार की बहस नहीं करना चाहते थे ।

उग्रवादी गरमदल के लोग सामाजिक समानता तो चाहते थे, पर वे अंग्रेजों से डरते नहीं थे वे उन से लोहा लेना पसंद करते थे । और वे हक्क से अंग्रेजों से स्वराज्य मांगते थे क्योंकि स्वराज्य मांगना वे अपना 'जन्म सिद्ध अधिकार मानते हैं, नरम दल के लोग भारत में अंग्रेजी राज्य का होना या उससे भारत में राज्य करना वह एक दैवी इच्छा या दैवी देन मानते थे, जब कि उग्रवादी दल के लोग इसे भ्रम या अंधश्रद्धा ही मानते थे । वे अंग्रेजों से नम्रता या हाथ जोड़कर उनसे भारत की भीख मांगना उसे पसंद नहीं था । वह उसे 'भिक्षावृत्ति' कहते थे ओर संवैधानिक आन्दोलन की खिल्लियाँ–मश्करी उड़ाते थे । इसके अलावा उग्रदल के लोग पर कहते थे कि हमेशा स्वदेशी, बहिष्कार तथा सत्याग्रह द्वारा स्वावलंबन तथा स्वशिक्षा पर बल देते थे ।

नरमदल और गरमदल में आपसी मेल नहीं था दोनों दलों की विचारधारा में जमीन–आसान का फर्क था । यह दोनों दल में मुख्य तत्त्व यह है कि यह दोनों एक दूसरे का साथ रख भी नहीं सकते थे और छोड़ भी नहीं सकते थे ।

✩ बंग–भंग :

भू–तल के विद्यमान बीज स्व–अस्तित्व को विगलित कर के ही दूसरे नवीन अस्तित्व को रूपायित करता है । बंग–भंग ने तो मानो राष्ट्रवाद के यज्ञ में डालीजाने वाली समिधा का कार्य किया । लोर्ड कर्जन ने भारत की पावन धरती पर पग धरते ही प्रेस पर प्रतिबंध, कलकता कोर्पोरेशन एक्ट, भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम तथा प्रतियोगिता परीक्षा में सम्मिलित होने के अधिकार का हरणकर लिया । जनता की आर्थिक परिस्थिति के प्रति आँखें मूंदकर 'दिल्ली दरबार' का आयोजन किया और इसमें सबसे बड़ा कहर जो उसने भारतीयों को दिया वह था बंगाल का विभाजन । बंग की एकता को भंग करने के लिए लार्ड कर्जन ने अपने भाषणों में हमारे भारत देश को असत्यवादियों का राष्ट्र कहकर उनका इतना बड़ा अपमान किया था । इस देश का अपमान बंगाल को सहय नहीं था । बंग–भंग के कारण एक प्रबल तूफान देश में उठा विशेषकर इसका असर बंगाल पर पड़ा । तब बंगाल की प्रजा ने यह किया कि उसने लार्ड कर्जन का बनावटी पुतला जलाया उसका श्राद्ध किया । वहाँ से एक सशक्त जन–आंदोलन का प्रारंभ ज्वार की भाँति उमड़ने लगा । गांधीजी का कहना है कि –

"जिसे आप सही जागृति मानते हो वह तो बंग–भंग से हुई है ।"[२०]

इस तरह लार्ड कर्जन ने बंगाल का विभाजन करके अच्छा नहीं किया क्योंकि बंग–भंग के बाद सारे देश की प्रजा और विशेषकर बंगाल की प्रजा जागृति हुई उसके दिल में स्वराज्य प्राप्त करने के लिए कोई भी कार्य या

आंदोलन करने की शक्ति प्राप्त की, उसमें क्रांति की लहर उमड़ पड़ी । प्रजा में आक्रोश बढ़ा, वह अब अंग्रेजी शासन के विरुद्ध अपना प्रबल मोरचा भी बना पायी इस तरह बंग–भंग का बंगाल की प्रजा पर अधिक असर पड़ा था ।

✰ स्वदेशी आंदोलन :

संपूर्ण बंगाल में 'स्वदेशी आंदोलन और 'वंदेमातरम' की धूम मच गई । प्रजा में आक्रोश की ध्वनि फैल गई । प्रजा अब जागृत हो गई थी । लाल, बाल और पाल के नेतृत्व में सर्वत्र जनता में आशा की लहर फैल गई । बालक वृद्ध, नर–नारी, सभी के कंठों से नारों की बौछार होने लगी, जनता में एकता बढ़ गई । बंगाल के जन आंदोलन का उद्‌देश्य था अंग्रेजी दासता से खुद को और देश को मुक्त करना । उसको पराधीनता की पलो में अपना जीवन व्यतीत करने के अलावा देश के लिए शहीद हो जाना अधिक पसंद था । बंग–भंग से प्रजा में अंग्रेजी सरकार के खिलाफ ऐसा आक्रोश भरा था कि उसका रूप स्वदेशी आंदोलन ने लिया ।

बंग–भंग को बंगाल की जनता ने महाकाली का अपमान माना स्वदेशी आंदोलन के महायोगी अरविंद कट्टर समर्थक थे । ब्रिटिश शासन अब भारत में नहीं चाहिये । साथ–साथ उसकी कोई भी चीज भी हमारे देश की बाजारों में नहीं दिखाई देनी चाहिए । ब्रिटिश शासन का पूर्ण बहिष्कार किया गया । इस तरह बंगाल में स्वदेशी आंदोलन का प्रारंभ हो गया । 'लाल बाल और पाल' जैसे नेताओं के नेतृत्व से प्रजा में और अधिक बल एवं अंग्रेजी वस्तु का बहिष्कार करने की शक्ति आ गई ।

स्वदेशी आंदोलन पर टीका करते हुए 'हितवाद' ने लिखा था कि –

"मारवाडी और मुसलमान व्यापारियों की दुकानों में विदेशी वस्त्रों की नकारात्मक बिक्री को देखकर अंग्रेज अपने अश्रुनिपात को रोक न सके ।"[२१]

जनता ने विदेशी चीज–वस्तुएँ एवं वस्त्रों को इक्ठठा करके बाजार में उसकी होली जलाई थी, जिसको देखकर अंग्रेजी सरकार के छक्के छूट गये थे । जनता ने विदेशी माल के पूर्ण बहिष्कार से स्वदेशी माल को अधिक महत्त्व मिला, जनता जग गई उसको अपने देश की वस्तु का मौल क्या होता है उसका पता चल गया सभी ने स्वदेशी वस्तु और वस्त्रों को खरीद कर उसका गर्व बढ़ाया ।

जब भी ऐसे जन आंदोलन हुए प्रजा ने पूर्ण एकता एवं वीरता से उसमें अपने आपको सामिल किया था । जब कोई जन आंदोलन धर्म से अपनी मैत्री कर लेता है तब वह अपना नया रूप याँ क्लेवर धारण करने लगता है स्वदेशी आंदोलन से देश में देशी कल–कारखानों की स्थापना होने लगी सभी बाजारों में स्वदेशी वस्तुएं दिखाई देने लगीं । इस तरह प्रजा ने पूर्ण सहयोग एवं एकता के बल पर अंग्रेजों से मोरचा मोड़ लिया । यह तो शुरूआत थी प्रजाने अब गुलाम नहीं आजादी के सूर्य की नयी किरणों की तलाश थी उसे अपने ही देश में अपने धनदौलत पर अंग्रेजी सत्ता को वैभव से राज्य करते देखकर हमारी भारतीय प्रजा का खून खौल गया उसे अब कोई भी भोग या आंदोलनों के जरिये इस अंग्रेजी दासता की जंजीरों को कांटना था । प्रत्येक वर्ष उपवास रखकर प्रजाने 'बंग–भंग' विरोध दिवस मनाया जाने लगा ।

स्वदेशी आंदोलन की उष्णता से आंग्लजाति के प्रति धृणा के भावों का प्रसार किया । परतंत्रता में जीने की अपेक्षा जनता को मृत्यु की इच्छा तीव्रतर होने लगी । बंग–भंग से उत्पन्न नव–उमंग को बनाये रखने के लिये भारत से बाहर विदेशों में भी भारतीय नेता काम करने लगे । श्यामजी कृष्ण वर्मा के प्रयासों से सन् १९०५ में लंदन में 'इंडिया होमरूल सोसायटी की स्थापना का उद्देश्य भी यहीं था । बीसवी शताब्दी के प्रथम दशक में स्वातंत्र्य संघर्ष के इतिहास में कई नयें रूप उभरते दिखाई देते हैं ।

इस तरह स्वदेशी आंदोलन से सारे देश में देशी वस्तु का मौल बढ़ गया और विदेशी वस्तु का बहिष्कार करके अंग्रेजों की हिंमत को तोड़ दिया था और सारे देश में उत्साह का वातावरण फैल गया था । महात्मा गांधी ने स्वदेशी वस्त्रों के उपयोग के प्रति जनता में एक नई प्रेम की भावना उत्पन्न की स्वदेशी वस्त्रों की लिये वह आवश्यक था कि पहले विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार किया जाय । क्योंकि परमुखापक्षी राष्ट्र कभी भी दासता की बेड़ियों को तोड़ने में समर्थ नहीं होता है । स्वराज्य की प्राप्ति के लिए देश की जनता का स्वावलंबी होना अत्यन्त आवश्यक था । इसके लिए गांधीजी ने विदेशी वस्त्र–बहिष्कार की विधि को सर्वोत्तम माना । जनता ने इस आंदोलन में सभी विदेशी वस्तुओं और उनकी दुकानों का बहिष्कार आरंभ किया । कलकत्ता में सर्व प्रथम विदेशी वस्त्रों की होली जलाई गई । विदेशी–वस्तु–बहिष्कार एक राजनीतिक अस्त्र के रूप में प्रयोग किया गया ।

गांधीजी की प्रेरणा से आये दिन विदेशी वस्त्र अग्नि को समर्पित होते रहते थे । जनता ने विदेशी वस्त्रों की होली जलाई इसका भी एक चित्र इस प्रकार है कि बीच चौराहे पर कपड़ों का ढेर लगाया गया, व्याख्यानों के बाद इस विदेशी कपड़ों के ढेर में आग लगा दी गई, उस लपट के निकलते ही लोगों ने 'महात्मा गांधी की जय' और भारत माता की जय' के नारे लगायें ।

✰ सूरत–काँग्रेस (सूरत–विभाजन)

'भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के' कई नेताओं के मन में स्वदेशी आंदोलन की सनसनाहट थी । 'बहिष्कार' के प्रश्न को लेकर सन् १६०५ में ही बनारस काँग्रेस में विभाजन के बादल घिर आये थे । क्योंकि जब कोई पराधीन जाति जगने लगती है तब उस जागरण को कोई भी कठोर नीति व्यर्थ नहीं कर सकती । और जनता के इसी जागरण के फल स्वरूप सन् १६०७ में सूरत में कोंग्रेस दो भागों गरम और नरम दलों में विभाजित हो गई ।

१९०७ तक भारतीय राजनीति में उग्रवादी विचारधारा अपने चरम बिन्दुं तक पहुँच गयी थी । १९०७ में कॉंग्रेस का अधिवेशन सूरत में करने का निश्चय किया क्योंकि सूरत में उग्रवादियों का प्रभाव कुछ कम था ।

२७ दिसम्बर १९०७ को सूरत अधिवेशन में रासबिहारी घोष को अध्यक्ष बनाया गया लेकिन उग्रवादियों को यह मंजूर नहीं था । उसने उसका विरोध किया । सभा में हंगामा होने के कारण उसको स्थगित करना पड़ा । और दूसरे दिन जब सभा प्रारंभ हुई तब तिलकने आश्वासन दिया कि –

"मैं और मेरे दल के लोग डॉ. घोष के चुनाव का विरोध छोड़ देने और पुरानी बातों को भूलने को तैयार है पर शर्त यह कि स्वराज, स्वदेशी बायकाट और राष्ट्रीय शिक्षा सम्बन्धी प्रस्तावों पर टिका जाये ।"[२२]

नरमदल वाले तिलक के इस प्रस्ताव को मानने के लिए तैयार नहीं थे । फिर भी तिलक मंच से नहीं हटे । तभी नरमदल वालोंने तिलक के साथ जबरदस्ती की जब जनता में से उसी वक्त एक जूता मंच की ओर फेंक गया जो सुरेन्द्रनाथ बेनर्जी और फिरोज शाह मेहता को लगा । दोनों दलों के लोगों में झगड़ा इतना बढ़ गया कि अन्त में उदारवादियों ने उग्रवादियों को कोंग्रेस से निष्काषित कर दिया ।

इस तरह दोनों दलों में सुरत कॉंग्रेस अधिवेशन में जो मतभेद हुआ, इसका सुरत विभाजन प्रत्यक्ष चित्र है । यह भावना बहुत बलवती हो उठी कि भारत का शासन लन्दन से न होकर दिल्ली से भारतीयों द्वारा होना चाहिए । लोकमान्य तिलक की सिंह गर्जना ने राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन को एक नये पथ की और मोड़ दिया । तिलक का कहना था कि प्रत्येक व्यक्ति को समय के अनुसार अपने को ढालना चाहिए । यह राजनीतिक भिक्षा–वृत्ति में उनकी आस्था नहीं थी । इस तरह सुरत कॉंग्रेस विभाजन ने दोनों के बीच झगड़ा होने के बाद दोनों दलों में कट्टर दुश्मनी बन गयी ।

✰ प्रथम विश्वयुद्ध :

"युद्ध ने संसार के विलास की गति तेज कर दी है और किसी अन्य देश की गति इतनी तीव्र नहीं जितनी हमारी मातृभूमि भारत में ।"[२३]

प्रथम विश्वयुद्ध ने भारतीय राष्ट्रीय राजनीति को अत्यधिक प्रभावित किया । इसने काँग्रेस की स्वराज्य तथा स्वशासन की मांग को एक नया अर्थ तथा गति दी ।

सन् १९०६ से १९१५ तक की अवधि को भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के अंधकार का काल कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी । इस काल में कोंग्रेस की बागड़ोर उदारवादियों के हाथ में रही । उग्रवादी दल के नेता लोकमान्य तिलक सन् १९०८ से १९१४ तक जेल में पड़े रहे । क्रांतिकारी तथा आतंकवादी आंदोलन को सरकार ने दबा दिया था । लोकमान्य तिलक की गिरफतारी के उपरान्त सन् १९१४ तक भारतीय स्वातंत्र्य संघर्ष के रण में सन्नाटा छाया रहा और काँग्रेस उसी राह पर लोट चली । प्रथम महासमर के काले मेध भयंकर गर्जना करने लगे । दुनिया विनाश के कगार पर खड़ी थी । महात्मा गांधीजी दक्षिणी अफ्रिका से ख्याति प्राप्त कर भारत लोटे और अमदाबाद में 'साबरमती आश्रम' में रहकर भारत की भावी राजनीतिक रणनीति की रूपरेखा पर चिंतन और मनन करने लगे । संकट की घडी में ब्रिटिश सरकार का साथ देने की इच्छा से वशीभूत होकर उन्होंने तत्कालीन वाइसराय को एक पत्र यह कहकर लिखा कि –

"जिस साम्राज्य में आगे चलकर हम संपूर्ण रूप से साझेदार बनने की इच्छा रखते हैं, संकट के समय उसकी मदद करना हमारा धर्म है ।"[२४]

लखनऊ काँग्रेस १९१६ में ब्रिटिश जनता की विजय की कामना का प्रस्ताव पारित किया गया था ।

लोर्ड मिन्टो ने मुसलमानों को भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन से पृथक कर लेने में सफलता प्राप्त कर ली थी । सन् १९०९ का शासन सुधार अधिनियम

भी लागू हो गया था । परंतु कॉंग्रेस की फूट तथा मुस्लिम लीग की स्थापना ने राष्ट्रीय आंदोलन को सशक्त होने से रोक लिया । कोंग्रेस की स्वराज्य की मांग पर सन् १९०९ के शासन सुधार अधिनियम ने पानी फेर दिया था । अतः राष्ट्रीय नेताओं में ब्रिटिश शासन की नीतियों विरुद्ध असंतोष बढ़ता जा रहा था । इस तथ्य से ब्रिटिश शासक अनभिज्ञ नहीं थे । लार्ड हार्डिंग्ज ने भारतीय असंतोष को दूर करने के लिए तुरंत कदम उठाया ।

✰ होमरूल आंदोलन :

जब कोई राष्ट्र दासता की जंजीरों से जकड़ां जाता है तो सबसे बड़ी बात जो पैदा होती है उसके मनोबल का ह्रास । परंतु उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप उसे ऐसा नेतृत्व मिलता है जो यह हौसला रखता है कि अपने राष्ट्र को पुनः स्वाधीन देशो की श्रेणी में लाकर खड़ा कर दे । ऐसे ही हमारे देश के नवयुवको एवं जनता ने जो भी आंदोलन किये वह उस पराधीनता का अंत करने की आशा से किये थे । होमरूल आंदोलन भी उसी में से एक है ।

कारावास की काल कोठरी से मुक्त होकर लोकमान्य तिलक ने श्रीमती एनी बेसन्ट से सहयोग से होमरूल आंदोलन का श्री गणेश किया । कलकता कॉंग्रेस के सभापतीय भाषण में श्रीमती एनी बेसन्ट ने भारत के लिए 'स्वशासन' की मांग करतें हुए कहा था कि –

"स्वाधीनता प्रत्येक राष्ट्र का आजन्म अधिकार है ।"[२५]

जनता ने उसके स्वर में पूर्ण सहयोग दिया, भारत के कोने कोने में होमरूल का प्रचार जनता ने किया । इसकी शाखा लन्दन में स्थापित की गई । इस आंदोलन ने राजनीतिक नेताओं को एकता के लिए प्रेरित किया, क्योंकि एकता के अभाव में 'स्वशासन' की माँग करना बहरें के आगे ढोल पीटना मात्र था । इस लिए ऐसी एकता जनता में होनी परम आवश्यक बन गई थी ।

होमरूल आंदोलन भारत के लिए स्वशासन की याचना नहीं वरन अधिकार पूर्ण मांग की अभिव्यक्ति था तब श्रीमती एनी बेसन्ट का कथन था–

"होमरूल भारत का अधिकार है राजभक्ति के पुरस्कार रूप में उसे प्राप्त करने की बात कहना मुर्खता पूर्ण है भारत राष्ट्र के रूप में अपना न्याय अधिकार ब्रिटिश साम्राज्य से माँगता है। भारत इसको युद्ध से पूर्व मांगता था, भारत इसे युद्ध के बीच मांग रहा है और युद्ध के बाद मांगेगा। परंतु वह यह न्याय को एक पुरस्कार के रूप में नहीं वरन अधिकार के रूप में मांगता है, इस बारे में किसी की कोई गलत धारणा नहीं होनी चाहिए।"[२६]

मार्च १९१६ में तिलक ने 'महाराष्ट्र होमरूल लीग की स्थापना की जिसका केन्द्र था पुना। तिलक और बेसेन्ट ने मिलकर इस आंदोलन को लोकप्रिय बनाने के उद्देश्य से संपूर्ण भारत का दौरा किया और अपने भाषाणों ओर समाचार पत्रों के माध्यम से होमरूल की माँग पर जोर दिया। प्रजा पर भी इसका संपूर्ण प्रभाव पड़ा था।

एनी बेसेन्ट ने अपने दैनिक पत्र 'न्यू इन्डिया' और साप्तहिक पत्र 'कामन व्हील' तथा तिलक ने अपने पत्र केसरी और 'मराठा' के माध्यम से प्रचार कार्य का प्रारंभ कर दिया। हमारे देश के प्रथम प्रधान मंत्री जवाहरलाल नेहरू ने लिखा है ....

"देश के वातावरण में बिजली सी दौड़ गयी और हम नव युवक एक अजीब उत्साह तथा स्फूर्ति का अनुभव कर रहे थे। हम यह आशा करते थे, कि इसका परिणाम भविष्य में कुछ होगा।"[२७]

१९१७ में यह आन्दोलन अपने चरम शिखर पर पहुंच गया। यद्यपि यह शांतिपूर्ण तथा वैधानिक आंदोलन था फिर भी ब्रिटिश सरकार ने इसे दबाने का भरपुर प्रयास किया तथा कड़ाई से काम लिया। श्रीमती एनी बेसन्ट तथा उनके सहयोगियों को भी गिरफतार कर लिया गया। तिलक को तो पंजाब और दिल्ली में प्रवेश करने की मनाई की गई। छात्रों को आंदोलन में भाग

लेने से रोका गया दमन के इन कार्यो से सारे देश में विरोध और शेष का 'ज्वार' उमड़ पड़ा और देश के विभिन्न स्थानो में विरोधी सभाए की गयीं । राष्ट्रवादी नेताओं होमरूल आंदोलन से अलग थे जो बाद में उसमें सम्मिलित हो गये और सभी नेताओं का दायित्व बढ़ गया । और सभी नेताओंने दायित्वपूर्ण पदों पर काम करने लगे ।

होमरूल आंदोलन जो अधिक समय तक नहीं चल पाया था लेकिन इसने भारतीय जनता का इतना प्रभावित एवं उसमें जागृति का संचार करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया, भविष्य में भी होमरूल आंदोलन के प्रभाव में राष्ट्रीय आंदोलन को पर्याप्त बल मिला था होमरूल आंदोलन का एक मात्र उद्देश्य था बिटिश साम्राज्य के अधिन भारत को स्वराज्य दिलाना । यह एक संवैधानिक संघर्ष था जिसमें जनता ने पूर्ण उत्साह से भाग लिया था ।

✰ असहयोग आंदोलन :

"रोलेट एक्ट असहयोग आंदोलन की जननी थी ।"[२८]

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास में सन् १९२० का वर्ष एक नये ही चरण को शिलान्यास करता है १९०५ में हुए कॉंग्रेस के अंदर दो दलों का विभाजन हो गया था उदारदल तथा उग्रदल बन गये थे । उदारवादी दल ब्रिटिश सरकार से सहयोग रखते हुए उसके ही अन्तर्गत स्वायत शासन के अधिकाधिक अधिकार प्राप्त करने की चेष्टा करता था ।

परंतु उग्रवादियों का रुख तो असहयोग की नींव पर तुला था । साथ ही राष्ट्रीय आंदोलन का एक वर्ग क्रांतिकारी तथा आतंकवादी कार्यक्रम द्वारा देश को ब्रिटिश शासन के मुक्त कराना चाहता था । प्रथम महायुद्ध में भी महात्मा गांधीजी उदारवादी दल के नेताओं की तरह अंग्रेजों से असहयोग की भावना से ही काम लेना चाहते थे । परंतु सन् १९१९ में जो घटनाएं घटीं उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि अंग्रेज लोगों में न इमानदारी है, न सहृदयता । अतः

महात्मा गांधी ने तुरन्त अपना रुख बदल लिया और उसी के ही नेतृत्व में कोंग्रेस में ब्रिटिश सरकार के साथ असहयोग करने के हेतु अहिंसात्मक सत्याग्रह तथा प्रत्यक्ष कार्यवाही का कार्यक्रम अपनाया । और गांधीजी ने तब तक कहा था कि –

"मैं उस सरकार के प्रति आदर तथा स्नेह नहीं रख सकता जो अपने अमरत्व को बनाए रखने के लिए एक के उपरान्त एक गलती करती रही है ।"[२६]

– एम. के. गांधी

आगे भी बापू कहते हैं कि –

"हमें जेलों के द्वार चौड़े कर देने चाहिए और हमें उनमें उसी उत्सुकता से जाना चाहिए जैसे दुल्हा दुल्हन के कक्ष में जाता है ।"[३१]

गांधीजी ने कोंग्रेस की डोर अपने हाथ में ले ली और और असहयोग आंदोलन का नेतृत्व वह करने लगे थे । तब भारतीय जनता में हिन्दुओं के साथ मुसलमान भी कदम से कदम मिलाकर 'खिलाकत आंदोलन की पताका थामें चल पड़ें । गांधीजी ने उस आंदोलन को 'धार्मिक युद्ध' कहा था गांधीजी के व्यक्तित्व से सारे देश की जनता प्रभावित हो चुकी थी उन्होंने भारत के जन–जन के मन में ऐसा मंत्र फूँका था कि सारे भारत में 'हिंदु–मुस्लिम जिन्दाबाद' और 'इन्कलाब जिन्दाबाद' आदि गगन भेदी नारों से वाइसराय भवन के प्राचीरें कम्पायमान हो उठी कंस के समान दुष्ट अंग्रेजों के प्रजा में बदले अपनी भारत माता को विमुक्त करने के लिए मानो कृष्ण के रूप में मोहनदास गांधी का अवतार हुआ है । तब हमें हमारे प्राचीन ग्रंथ भगवत गीता के कृष्ण के बाल याद आते हैं ।

"यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानामधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यम ।।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम ।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवानि युगे–युगे ।।''[३१]

श्रीमद भगवत गीता

ऐसे ही भगवान के रूप में हमारे सामने कोई वीर का आगमन दुःखों के अंत के लिये हो जाता है । हमें ही हमारे भारत माता के वीर सुपुत्र के रूप में गांधीजी के नेतृत्व में भारतीय जनता ने अंग्रेजों के खिलाफ असहयोग आंदोलन कर दिया था । ब्रिटिश शासन का राजनीतिक, धार्मिक तथा जातीय बहिष्कार को असहयोग आंदोलन के नाम से पुकारा गया । आंदोलन विद्यालय तथा कालिज, सरकारी उपाधियों का पूर्ण बहिष्कार किया गया । विदेशी के स्थान पर स्वदेशी का प्रचार होने लगा । हड़ताल, जूलुस सामाजिक बहिष्कार, स्वभाषा के प्रति स्नेह, अन्याय रूपों में असहयोग आंदोलन अपने यौवन पर चढ़ चला ब्रिटिश शासन के प्रति जो स्वाभिमान धृणा जनता के हृदय में विद्यमान थी, उसके कारण अहिंसात्मक आंदोलन हिंसा के क्षेत्र में पदार्पण कर गया ।

ऐसी ही अनेक हिंसात्मक घटना की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप अहिंसात्मक असहयोग आंदोलनकार ने तुरंत ही सत्याग्रह को स्थगित कर दिया । एक तो असहयोग आंदोलन को लेकर ही कोंग्रेसी नेताओं में पहले से ही मतभेद था, वह बढ़ गया कौंसिल प्रवेश के प्रश्न को लेकर अपरिवर्तनवादी दो दलों में पुनः कॉंग्रेस का विभाजन हो गया । और भारतीय जनता में जो एकता की रज्जु थी वह एक–एक सूत्र में खुलने और टूटनेलगी । जो एकता पहले हिन्दू मुसलमानो में थी वह भाई–भाई के रक्त से अपनी प्यास बुझाने लगे । 'फुट डालो और राज्य करो'' के मायावी चक्र से भारतवासी अपने आप को बचा न पाए ।

इस तरह असहयोग आंदोलन में आपस में भारतवासी ही लड़ पड़े । महात्मा गांधी के नेतृत्वं में जिन नेताओंने गांधीजी के निर्णय का विरोध किया

उनका प्रतिनिधित्व देशबन्धु चितरंजनदास और मोतीलाल नहेरू करते थे । उन्होंने बारड़ोली आंदोलन को एक नया मोड़ देने का प्रयास किया । उनके विचार में गांधीजी के अहिंसात्मक असहयोग की नीति अनुपयोगी और अव्यावारिक था । इस लिए उन्होंने कोंग्रेस के अन्दर रहते हुए चुनाव लड़ने के लिए और धारासभाओं में वैधानिक मोर्चे पर संघर्ष चलाने के लिए एक नये दल का नाम 'स्वराज्यपार्टी' रखा गया ।

महात्मा गांधी अपने राजनीतिक सत्य के प्रयोगों में लगे रहे । हिंसा के आगे नहीं झुके । मानव ह्रदय में विद्यमान देवत्व को वह प्रेम स्नेह के जलकणों से खींचकर फुलते और फलते देखना चाहते थे । परंतु फिर भी असहयोग आंदोलन विफल हो गया, और ३१ मार्च को गांधीजी की गिरफतारी के बाद देश में एक अजीब निराशा सी भर गई ।

✩ साईमन कमिशन :

१९२८ के वर्ष की एक दूसरी महत्त्वपूर्ण घटना थी भारत में साईमन कमीशन का आगमन और उसका देश व्यापी बहिष्कार । १९१९ के भारतीय शासन अधिनियम में कहा गया था कि अधिनियम के पारित होने के दश वर्ष बाद संवैधानिक आयोग की नियुक्ति की समय से दो वर्ष पूर्ण ही कर दी और नवम्बर १९२७ में इसकी नियुक्ति की घोषणा कर दी । ब्रिटिश सरकार ने ऐसा क्यों किया इनके अनेक कारणों का अनुमान लगाया जाता है एक कारण यह है कि इस सुधार कानून का भारतवासियों ने प्रारंभ से ही तीव्र विरोध किया था और निरन्तर इसकी समाप्ति तथा इसके स्थान पर गये कानून निर्माण की माँग जोरों से की जाती रही थी ।

इस कमीशन में सात सदस्य थे । इस कमीशन में एक भी भारतीय की नियुक्ति नहीं की नई थी । यह हमारा और हमारे देश का अपमान ही था । भारत में सभी दलों ने साईमन कमीशन का विरोध किया । भारतीय जनता का

रोष जायज था, क्योंकि अंग्रेज सरकार अपने वादे से मुखर गयी थी इस कमीशन द्वारा उसने केवल भारतीयों का विरोध ही बढ़ाया था जहाँ जहाँ तक आयोग गया 'सायमन वापस जाओ' के नारों काले कपड़ों तथा हड़तालों से उसका स्वागत किया गया । पुलिस ने भी स्थान–स्थान पर लाठियों से विरोध प्रदर्शनों को दबाने का प्रयत्न किया ।

इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी थी लाला लजपतराय, गोविन्द वल्लभ पन्त और जवाहरलाल नेहरू के नाम विशेष उल्लेखनीय है सभी नेताओंने सहयोग से जनता का साथ दिया था । इस नेताओं पर भी लाठियाँ पड़ी थीं । लालालजपतराय पर जो लाठियाँ पड़ीं उन्हीं के कारण कुछ सप्ताह पश्चात उनकी मृत्यु हो गयी । मृत्यु से पूर्ण उन्होंने कहा था कि –

"मेरे उपर जो लाठियों के प्रहार किये गए हैं, वही एक दिन ब्रिटिश साम्राज्य की शब पेटी में मिले साबित होगी ।"[३२]

ब्रिटिश सरकार ने राष्ट्रीय जन–जागरण को कुचलने की अपने को असमर्थ पाकर उठते हुए राजनीतिक तूफान को शान्त करने के लिए 'साईमन कमिशन' की नियुक्ति की थी, जिसमें जनता की आत्मनिर्णय की माँग का कोई उल्लेख नहीं था । स्वराज्य दल ने विधान सभाओं में जो प्रतिरोध का रवैया अपनाया था उसके अनुसार भी भारत की सांविधानिक सुधार की माँग को लम्बे समय तक रोके रख ब्रिटिश सरकार के हित में न होता । अतः इस कमीशन की नियुक्ति करने में शीघ्रता की गयी । दूसरी बात थी कि भारत में साम्प्रदायिक तनाव बढ़ गया था । अतः ब्रिटिश सरकार को यह सिफारिश देने का अवसर मिल जाता कि भारत में साम्प्रदायिक मतभेद इतने कटु हैं कि पूर्ण रूप से कमीशन उतरदायी शासन संचालित करने की भारतवासियों में क्षमता नहीं हो सकती । इनके अलावा इनके उपर रुसी आंदोलन तथा समाजवादी विचारधाराओं का प्रभाव था । जब ब्रिटिश सरकार अपनी विचक्षणमति से

शीघ्र ही भारत के लिए वैधानिक सुधारों को लाने की चिन्ता में थी, ताकि भारतीय युवकों की शक्ति को दूसरी और मोड़ा जा सके ।

इस प्रकार इस अनेक परिस्थितियों तथा कारणों ने कमीशन के शीघ्र नियुक्ति किये जाने के ब्रिटिश सरकार के निर्णय में महत्त्व का योगदान दिया ।

✰ बारड़ोली सत्याग्रह :

जिस समय सायमन कमीशन के बायकोट का आंदोलन पुरजोश से सारे देश में चल रहा था तब ही गुजरात में बारड़ोली के किसानों ने अपना मोर्चा लगाया । उनका आंदोलन का कारण लगान में वृध्दि के विरुध्द था । बंबई प्रदेश की सरकारने ३० जून १९२७ के बारड़ोली तालुका का लगान २०–२५ प्रतिशत बढ़ा दिया । बंबई की लेजिस्लेटिव कौंसिल ने प्रस्ताव पास किया कि इस बढ़े लगान की वसूली रोक रखी जाए फिर भी सरकार सहमत न हुई ।

इस बढ़े लगान के विरुध्द आंदोलन की पहल खुद यहाँ के किसानों ने की उन्होंने अपनी विराट सभा का प्रारंभ कर जनता एवं किसानों को जागृत किया उसके मंडल ने लगान में वृध्दि को अनुचित बताया तथा उसे कम करने का अनुरोध किया । पर ब्रिटिश सरकार ने ध्यान ही नहीं दिया । इसके फल स्वरूप ६ दिसम्बर १९२७ को किसानों की दूसरी सभा हुई । इसमें बहुत से कोंग्रेसी नेता भी सामिल हुए । इस सभाने बढ़ा लगान न देने का फैसला किया और इस किसान आंदोलन का नेतृत्व कर रहे थे हमारे लॉट पुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल । गांधीजी ने भी अपना सहयोग दिया, गांधीजी की इजाजत से पटेल ने इस आंदोलन का नेतृत्व पूरी जिम्मेदारी के साथ किया था । गांधीजी के अस्त्र का इस्तेमाल उनके विश्वासी नेता के नेतृत्व में बारड़ोली में किया गया ।

१२ फरवरी, १९२८ को कोंग्रेस ने किसानों का सम्मेलन बुलाया । उसने फैसला किया जब नालीगुजारी को संशोधित करने के लिए पंचायत नहीं बैठाई

जाती तब तक किसान सरकार का लगान न देंगे । बारड़ोली के सारे गाँवो को गृपों में बाटा गया । और कोई पुराना कोंग्रेसी हर गृप का नेता बना । उन्होंने एक–एक किसान को समजाया कि उनके आंदोलन का उद्देश्य क्या है और हिदायत दी की लगान बंदी के साथ वे असहयोग के अस्त्र का भी इस्तेमाल करें ।

किसानों ने लगान बंदी का रास्ता अपनाया और सरकारने कठोरता से उसे वसुल करने का प्रयास किया । पर किसान अपने हठाग्रह पर अड गये अंत में सरकार को झुकना पड़ा । उसने पुराना लगान लागू कर दिया था साथ हमारे गिरफतार हुए नेताओं को छोड़ा जाय । यह वादा पाकर कॉंग्रेस ने जुलाई १९२८ में आंदोलन बंद कर दिया और सारे गुजरात में बारड़ोली की विजय का उत्सव मनाया गया ।

तब किसानों ने वल्लभभाई को 'सरदार' का बिरुद दिया और उसका स्वागत किया । किन्तु इस विषय के लिए बारड़ोली के किसानों के बड़ी भारी किमत चुकानी पड़ी । उक्त वादों के बावजूद सरकारने बहुत से किसानों को बंध कर रखा और बहुतों की जब्त की गई जमीन वापस करने से इन्कार कर दिया ।

बारड़ोली सत्याग्रह की कॉंग्रेस गांधीजी और अनुयायियों की जनप्रियता सारे देश में बहुत बढ़ गई । इसने गांधीजी के लिए राजनीति में पुनः प्रवेश करने और कॉंग्रेस की बागड़ोर फिर से अपने हाथ में लेने का रास्ता साफ कर लिया ।

✩ नमक सत्याग्रह :

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन तथा स्वतंत्रता संग्राम का पूर्ण नेतृत्व अपने हाथ में लेने के बाद गांधीजी ने ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध जो पहला अभियान चलाया था वह सन् १९२० का असफल असहयोग आंदोलन था । गांधीजी के

नेतृत्व में नमक सत्याग्रह जो चला उसका कारण था नमक जैसी महत्त्वपूर्ण सर्व सुलभ वस्तु को भी करके बोझ से दुर्लभ कर दिया था । आर्थिक मंदीने भारतीय कृषक की रीढ़ तोड़ दी थी । नमक पर कर का कानून सभी को अप्रिय था । अंग्रेज सरकार के दमन एवं अन्याय से एक अजीब बेचैनी छाई हुई थी । और अन्याय के आगे घुटने टेकना बापू ने सीखा न था । उसको ऐसे अन्याय का सामना ही करना प्रिय था । एक दशाब्दी बाद पुनः नमक कर आदी के विरोध में सविनय अवज्ञा आंदोलन आरंभ कर दिया ।

'असहयोग' और 'सविनय अवज्ञा' सत्याग्रह रूपी वृक्ष की ही दो भिन्न भिन्न शाखाए हैं । 'सत्याग्रह' बापू का कल्पपुत्र था । इश्वर ही सत्य है और सत्य की खोज ही सत्याग्रह है । इस जीवन दर्शन ने ही बापू को आश्रम के पश्चिमी तट की और डांड़ी–पदयात्रा के लिए प्रेरित किया डांडी गाम पहुंचकर उन्होंने नमक बनाकर सत्याग्रह आरंभ किया सारे भारत में नमक तोड़ो आंदोलन फैल गया । गांधीजी ने आंदोलन में आर्थिक प्रश्न को भी जोड़ दिया । ताकि व्यापारी वर्ग ट्रेड़ युनियन संस्थाओं, मजदुर एवं कृषकों का सहयोग बहुतायत से सुलभ होने लगा ।

तब देश की जनता ने भी पूर्ण रूप से अपना सहकार देकर इस आंदोलन को सफल बनाने का प्रयास किया था । सच्चे सत्याग्रही की आचार संहिता के अनुसार गांधीजी ने २ मार्च १९३० को वाइसराय के नाम एक लम्बा पत्र लिखा जिसमें अंग्रेजी शासन के दुष्परिणामों की सूची दी गयी थी । तब अंग्रेजी सरकार के सामने बापूने लार्ड इरविन को बताया कि यदि यह शिकायतों को दूर करने के लिए शीघ्र ही कोई जवाब नहीं देंगे तो नमक कानून तोड़ेंगे । तब वाइसरोय ने इस पत्र को अनदेखा कर दिया और गांधीजी का मिलने से इन्कार कर दिया आदि अनेक कारणों के बल पर यह सत्याग्रह चलता ही रहा जैसे द्रौपदी के दुकुल की तरह बढ़ता ही चला गया ।

✰ लगान बंदी आन्दोलन :

राष्ट्रीय आंदोलन के उग्र रूप से भयभीत होकर ब्रिटिश गोलमेज –सम्मेलन का आयोजन लन्दन में किया गया । लन्दन जाने से पूर्व वाइसराय से समझौते का द्वार खुल गया था । परंतु लन्दन से बापू अपमानित होकर वापस भारत लौट आये । स्थगित आंदोलन भारत में खेत और खलिहान से 'लगानबंदी आंदोलन के रूप में आरंभ हो गया किसानोंने भी इसमें अपना सहकार दिया और कँाग्रेस के पीछे चल पड़े जमींदार और महाजन अपने खाली स्वजनों को देखकर तिलीमला उठे । किसान दमनचक्र की चक्की में पीसा जाने लगा ।

फिर भी भारतवासियों की हिंमत नहीं टूटी सभी ने लगान बंदी आंदोलन में अपना सहकार देकर बापू का कार्य सफल किया था । सभी अन्याय के आगे अडग रहे । खासकर के अन्नादाता किसानों ने अन्याय के आगे शीश झुकाया लगानबंदी आंदोलन ने उन्हें निश्चय करा दिया कि स्वराज्य युद्ध का अर्थ ही उसका कल्याण है ।

✰ द्वितीय महासमर :

"द्वितीय विश्वयुद्ध वास्तव में दो विरोधी साम्राज्वादी के बीच युद्ध था... यह तो सरासर मूर्खता तथा असम्भव था कि हम उसी साम्राज्यवाद की रक्षा हेतु लड़े जिसका हम इतने दिनों से विरोध करते आ रहे थे ।"[३३]

कोंग्रेस को प्रान्तीय स्वशासन की बागड़ोर को संभाले दो वर्ष भी पूर्ण नहीं हो पाये थे कि द्वितीय विश्वयुद्ध के विनाशकारी काले काले मेघों की गर्जना विश्वकाश में सुनाई पड़ने लगी । सर्वहारा वर्ग के महान नेता लेनिन ने तत्कालीन पूंजीवादी विश्वशासन व्यवस्था का विश्लेषण करते हुए कहा था कि –

"विश्व में पूंजीवाद का विकास उस चरमसीमा पर पहुंच गया है कि नये बाजारों के पुनर्वितरण को लेकर निश्चय ही उपनिवेशवादी प्रवृत्ति कभी भी पूंजीवादी शासकों को मध्य युद्ध का कारण बन सकती थी ।"[३४]

लेनिन का विश्लेषण व्यर्थ नहीं गया हिटलर के नेतृत्व में फासिस्ट वादी अजगर अपने विशाल जबड़ों में यूरोपीय देशों को एक एक कर निगलने लगा देखते ही देखते संपूर्ण जगत विश्वयुद्ध की चपेट में आ गया । ब्रिटीश सरकार ने भारतीय जनता के अनुमोदन के बिना भारत को विश्वयुद्ध में सम्मिलित घोषित किया । इसके विरोध में काँग्रेस ने मंत्रिमंडल से त्यागपत्र दे दिया । युद्ध में सम्मिलित किए गए प्रश्न को लेकर युद्ध विरोधी आदोलन जोर पकड़ने लगा 'युद्ध सहयोग' के प्रश्न पर 'काँग्रेस', 'मुस्लिम लीग' 'हिन्दूमहासभा' आदि के नेता भारत को वाइसराय के द्वारा परें परंतु जिड़कियों के अलावा उन्हें कुछ न मिला । किन्तु कुछ दल युद्ध में ब्रिटिश का साथ दे भी रहे थे ।

✰ क्रिप्स–प्रस्ताव :

भारत के पूर्ण सहयोग के बीना रणक्षेत्र में विजय को प्राप्त करना ब्रिटिश साम्राज्यवाद के लिए भगीरथ प्रयत्न लग रहा था । भारतीय जनता का ध्यान जो उनकी एक मात्र स्वातंत्र्य पाने की इच्छा मात्र थी उससे हटाने के लिए क्रिप्स योजना का नाटक रचा गया । क्रिप्स किसी अंग्रेज महोदय का नाम था जो खिलौने की तरह भारतीय राजनीतिज्ञों को भी बनावटी खिलौनों से फुसला रहे थे । वे एक धोखेबाज, छलकपटी, विश्वासघाती व्यक्ति थे, वे अपने आप को 'बड़ा चतूर' समझते थे । वे भारतीयों को उल्लू बनाना चाहते थे । फिर भी उनकी योजना को सभी भारतीय दलों ने रदी की टोकरी में फेंक दिया था क्रिप्स तो अमेरी महोदय के एक प्रवक्ता मात्र थे । वह जैसे भारत आये वैसे ही अपने साथ योजनाओं का पुलिन्दा वापस ले गए । द्वितीय

विश्वयुद्ध का प्रारंभ होते ही औपनिवेशिक स्वाधीनता का आश्वासन भारत को दिया गया था मगर उसने उसकी एक भी मांग पूर्ण नहीं की थी ।

✰ अगस्त क्रांति :

राष्ट्रीय आन्दोलन के कर्णधार हाथ पर हाथ धरे बैठे न रहे । उसने ब्रिटिश साम्राज्यवाद की घोर उपेक्षा का प्रत्युतर 'अगस्त प्रस्ताव' के रूप में दिया गया । जिसका सार यह था कि अब हमारे देश में कोई भी संजोग से ब्रिटिश साम्राज्य का अंत होना ही चाहिए । और इसमें ही भारत का हित समाया है । महात्मा गांधीने अपनी एक अपील में कहा कि –

'इस देश में अंग्रेजी राज्य को खत्म करने का सवाल एक महत्त्वपूर्ण और जरूर सवाल है जिस पर युद्ध का भविष्य आजादी तथा लोकतंत्र की सफलता पर निर्भर करती है ।"[३५]

गांधीजी की आत्मा ब्रिटेन के अत्याचारों से कराह उठी । युद्ध विजय के लिए बंगाल के कृत्रिम 'महाकाल' ने हजारों देशवासियों को काल के गाल में धकेल दिया था अगस्त प्रस्ताव के अनुमोदनार्थ और उसके कार्यान्वयन की घोषणा के लिए बम्बई में 'अखिल भारतीय कॉंग्रेस का अधिवेशन हुआ । गांधीजीने देशवासियों को संबोधित करते हुए कहा था कि...

"वह अपने को आजाद समझे क्योंकि मैंने कॉंग्रेस को बाजी पर लगा दिया है, वह करेंगी या मरेंगी ।"[३६]

जनता अब जागृत हो गयी थी उसने भारत छोड़ो के मूल मंत्र ने देश में क्रान्ति उत्पन्न कर दी क्योंकि सभी बड़े बड़े नेताओं को जेलों में ठूस दिया गया तब नेतृत्व विहिन जनता स्वयं ही का पथप्रदर्शक बन गई । जनता अब उग्रवादी बन गयी थी, नारों के स्वर सात समुद्र पार लन्दन तक पहुंचने लगा । ब्रिटिश शासन अब देश में नहीं होना चाहिए । ऐसा जनता में अडिग निर्णय ले लिया था अब उसने हिंसा और अहिंसा का भय त्यागकर रेली की

पटरियों को उखाड़ना, जंजीरों को खींचना, पुलों को तोड़ना, डाक तार तथा दूरभाष के तारों को काटना बिना टिकट रेलयात्रा करना, सैनिक को भड़काना आदि अपनी सरकार की स्थापना करना आदि उनके कार्य किये । ताकि ब्रिटिश शासनतंत्र संज्ञाहीन होकर अपनी मौत तो मर सके ।

अगस्त क्रान्तिकारियों के मनोबल को रेडियो संदेश द्वारा नेताजी सुभाषचंद्र बोझ विदेशों से बढ़ा रहे थे । ब्रिटिश प्रतिक्रियावादी प्रवृत्ति के कारण देश में गतिरोध को वातावरण उत्पन्न हो गया । क्योंकि गांधीजी और मोहम्मद अली जिन्ना में समझौते की बातचीत का शुभारंभ देश के भविष्य को लेकर बम्बई में हुआ । एक नयी लहर देश में आ गई । जिन्ना और गांधी की बातचीत के प्रति सब की आँखें चातक की तरह लगी थीं ।

✰ सन् १९४२ ई. का विद्रोह और भारत छोड़ो आंदोलनः

१९४२ की घटना को हमें एक आकस्मिक घटना के रूप में नहीं देखना चाहिए अपितु यह उन सभी संघर्षो का चरम बिन्दु था जो प्रथम विश्वयुद्ध से आजतक हो चुके थे लोगों में यह भावना आ गई थी कि अब इस विदेशी तानाशाही सरकार के अधीन रहना सम्भव नहीं । इस विद्रोह का कारण यह था कि बिना देर किए, अब हमें इस देश में विदेशी सरकार से मुक्ति एन केन रूप में पाना ही है ।

द्वितीय विश्वयुद्ध ने राष्ट्रीय भावनाओं की उपलब्धि के लिए नवीन आशाएँ उत्पन्न कर दी थीं । परंतु शीघ्र ही यह स्पष्ट हो गया कि मित्र शक्तियाँ केवल अपने साम्राज्यों तथा पूर्वस्थिति के पुनः स्थापन की ही बात सोचती थी । केवल कुछ आदर्शवादी लोग ही युद्ध की नैतिकता की ओर भी ध्यान देते थे और सोचते थे कि अब संसार में एक ऐसी नवीन प्रणाली या व्यवस्था स्थापित की जाएगी जिससे पुनः ऐसे युद्ध न हो ।

अखिल भारतीय काँग्रेस समिति ने 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पारित किया और लोगों को यह अनुमति दी कि यदि सरकार भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का विरोध करती है, तो दुबारा सविनय आंदोलन आरंभ करना चाहिए । गांधीजी को इसका नेतृत्व सोंपा गया । गांधीजी सौच रहे थे कि वाईसराय को पत्र के जरिए भारतीयों की मांग पर विचार करें और शांतिमय समझौते की आवश्यकता सुझाई जाए । पर हमारा दुर्भाग्य था की सरकार समझौते के लिए तेयार नहीं थी । भारत छोड़ो का अर्थ खुला विद्रोह है । उसने इस विषय को लेकर तुरंत कठोरता से कार्यवाही की । सरकार ने नेताओं को बंदी बना लिया । जिससे प्रजा में आतंक अधिक बढ़ गया था ।

जब जनता के बीच नेता नहीं रहे तो जनता का क्रोध कोई भी रूप धारण कर सकता था । जनता का विद्रोह चरमसीमा तक पहुँच गया था । पश्चिमी भारत में भी अशान्ति फैली, बम्बई में छात्रों ने स्कूलों और कालिजों का बहिष्कार किया । तार, टपाल टेलिफोन व्यवस्था भंग कर दी गई ।

सरकार ने इस विद्रोह का दमन करने के लिए लगभग ५० बटालियनों का उपयोग किया परंतु जनता के इस आंदोलन का रूप ही कुछ और था ।

"सरकारी आंकड़ों के अनुसार सरकार द्वारा ५३८ अफसरों पर गोली चलाई गई जिसमें लगभग १०२८ लोग मारे गये और ३२०० लोग हताहत हुए ।"[३७]

पंडित नहेरू ने भी अपने विचार व्यक्त करते हुए इस प्रकार कहा है कि –

"लगभग १०,००० लोग पटना के पास तो हवा से मशीनगनें भी चलाई गईं । सरकार द्वारा ९० लाख रूपया सामूहिक जुर्माना के रूप में लगाया गया और ७,८५,००० रुपया वसुल किया गया । १९४३ के अन्त तक बन्दी बनाए गए लोगों की संख्या ९१८३६ थी ।"[३८]

१९४२ का आंदोलन अहिंसात्मक तथा हिंसात्मक दोनों था । गांधीवादियों एवं नेताओं ने भी मिलकर देश को स्वतंत्र कराने का प्रयत्न किया । यह प्रयत्न इसलिए असफल रहा कि असमानताएँ अत्यधिक थी ।

जनता का रुख अब बदल गया था अब इसको ब्रिटिश शासन भारत में नहीं चाहिए था । इसलिए जनता ने सभी आंदोलन करना शुरू कर दिया था । गांधीजी के नेतृत्व में जनता ने दुबारा सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू कर दिया जिसका कोई विशेष प्रभाव नहीं हुआ इसके अलावा सभी आंदोलन एवं क्रिप्स मण्डल की असफलता से सरकार अब प्रेम याँ सहानुभूति की भाषा नहीं समजती, इसके साथ अब खुला ही विद्रोह आवश्यक बन गया था लोगों दया, ममता, प्रेम माया आदि का तो पूर्णतया अभाव ही था, वह केवल हिंसा की भाषा को समझते थे ।

दूसरी और जापान युद्ध में सम्मिलित हो चुका था और भारत की ओर बढ़ता आ रहा था अत एव हमारे पास भारत छोड़ो आंदोलन के अलावा कुछ अन्य मार्ग ही नहीं था । भारत छोड़ो आंदोलन के बारे में नेताओं की क्या राय है यह इस प्रकार –

“हम करेंगे अथवा मरेंगे या तो भारत को स्वतंत्र करा लेंगे अथवा इस प्रयत्न में प्राण दे देंगे ।”[३९]

चर्चील आगे कहते हैं कि –

‘‘मैं सम्राट का प्रधानमंत्री इसलिए नहीं बना कि मेरी अध्यक्षता में साम्राज्य समाप्त हो जाय ।”[४०]

जवाहरलाल नेहरू इस पर कहते हैं –

“हमें स्वतंत्रता चाहिए यहा और अभी”[४१]

सब जानते थे कि अब हम स्वतंत्रता से अपना जीवन बिताये ब्रिटिश शासक ने पूर्ण रूप से भारत का लोही चूसा था, उनका उतर जनता खुल्ला

विद्रोह करके देना चाहती थी इसी लिए उसे एक नया आंदोलन किया था भारत छोड़ो आंदोलन ।

✰ गदर आंदोलन :

ब्रिटिश शासक का दमनचक्र आतंकवादियों का पीछा नहीं छोड़ रहा था । इसी लिए कुछ हमारे क्रान्तिकारी दिवेशों में जाकर प्रचार कार्य करने लगे । उसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी थी । श्यामजीकृष्णा वर्मा तथा अनेक अन्य साथी उस कार्य में लग गये । लन्दन में 'इडियन होमरूल सोसायटी' की स्थापना का उद्देश्य यही था । हमारे यहां से गये हुए भारतीयों की वहाँ क्या स्थिति हुई उसकी कल्पना ही हम नहीं कर सकते थे । रोजी रोटी की तलाश में गए भारतीयों को वहाँ खास कर कनाडा और अमरीका में मूर्ख हिन्दी तथा काले–कुली आदि विविध नामों से पुकार कर उसका पग–पग पर अपमान किया जाता था । यह भारतीयों का भयंकर अपमान ही था । इस अपमान से मुक्ति पान का एक मात्र उपाय था स्वाधीन भारत ।

तब भारतीयों की संगठित करके उसमे एकता को बनाये रखने का कार्य किया था । लाला लाजपतराय ने 'भारतीयों का संगठन करके चलो चलिए देशनू युद्ध करण' का मंत्र देकर लगभग दस हजार गदरियों को भारत भेजा सरदार करतार सिंह के नेतृत्व में गदरी आंदोलन का सैनिक विद्रोह का रूप देने का प्रयत्न किया गया था । पंजाब की स्थिति गंभीर हो गई थी । परंतु यह अनेक कारणों से सफलता के द्वार पर पहुँची गदर पार्टी योजना विफल हो गयी ।

इस प्रकार गदर आंदोलन का उद्देश्य था हमारे देश में स्वाधीनता लाना ।

✰ आजाद हिन्द फोज का चित्रण :

भारतीय स्वातंत्र्य संघर्ष में आजाद हिन्द सेना की भूमिका का ऐतिहासिक महत्त्व रहा है । आजाद हिंद फौज ने एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी थी । नेताजी सुभाषचंद्र बोझ ने भारत की स्वाधीनता के लिए 'तुम मुझे खुन दो में तुम्हें स्वाधीनता दूंगा' इनकी इस पुकार ने नकेवल भारतीय जन मानस में नवीन चेतना का प्रसार किया अपितु ब्रिटिश साम्राज्यवाद के गढ़ो पर उसने पहली बार राष्ट्रीय तिरंगा भारत की भूमि पर लहरा कर एक आदर्श साहसी क्रान्तिकारी की भूमिका भी निभायी थी । अपनी प्रचंड बुध्दि प्रतिभा से उसने गुप्तचरों की आंखों में धूल जौंक्कर झेल से भाग निक्ले थे और रुस होते हुए जर्मनी पहुंचे थे ।

द्वितीय विश्वयुध्द में जापान ने हथियार डाल दिये थे और आजाद हिन्द फौज सैनिको पर दिल्ली के लाल किले में मुकदमा चलाया गया था आजाद हिन्द सेना बर्मा, थाईलेन्ड मलाया को जीतते हुए भारत की तरह बढ़ रही थी । नेताजी का नारा था 'दिल्ली चलो' विसर्जन का कमांडर अपने उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए पुनः कहता है ।

"तुम्हारा नारा है दिल्ली चलो और तुम्हारा ध्येय है भारत को आजाद करो ।"[४२]

सभी आजाद हिंद फोज के सैनिक उनके साथ बुलंद आवाज में कहते हैं आन्दामान निकोबार को आजाद हिंद सेनाने जितकर अपने अधिकार में कर लिया था । नेताजी ने खून मांगा और बदले में देश को आजादी दिलाने की प्रतिज्ञा की । फौजी भी उनके विचारों से सहमत थे । उसने केवल खून ही नहीं बल्कि शरीर के साथ प्राण भी आत्मा का सब कुछ देश के लिए समर्पित करने की सौगंध खून की बूंदों से प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर करके की ।

जब आदाज हिंद फौज के सैनिकों को बंदी बनाया गया तब देश की जनता में फिर से हिंसा ने जन्म ले लिया । सभी दलो के नेता फोज को

छुड़ाने के प्रयत्न में लग गये थे । आजादहिंद के तीन प्रमुख अफसरों से मुकदमे का नाटक सरकार ने शुरू कर दिया । इधर मुकदमा चल रहा था, उधर जनता का आंदोलन चरम सीमा तक पहुंच गया था । भारतीय इतिहास में नौयुवाओंने जो अपना योगदान दिया वह है आजाद हिंद फोज के फौजी जिसने अपने जान की बाजी लगाकर भारत का स्वाधीनता के शिखर तक पहुंचाने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है ।

✰ नाविक विद्रोह :

सभी आंदोलन में असफलता प्राप्त होने के बाद निराश भारतवासियों के दिल में फिर से उमंग लाने का कार्य आजाद हिन्द फौज ने किया था और उस उमंग का प्रभाव भारतीय नौ सेना पर पड़ा जिसके फल स्वरूप कोर्ट बैरीक, कैसलबैरक, अकबर चीता के सभी सैनिकों मछलीमार तथा हमला नामक जहाज के सैनिकों ने हड़ताल कर दी । भारतीय स्वाधीनता की प्राप्ति में जिस तरह अन्य आंदोलनों का अपना महत्त्व रहा है । उसी प्रकार नाविक विद्रोह का भी अपना निजी महत्त्व रहा है ।

नाविक विद्रोह का नेतृत्व किसी नेता ने नहीं किया था, मगर गीता देशवासियों से हड़ताल करने का आह्वान करते हुए कहती है । ये हिन्दुस्तानी जहाजी सिपाही आपके ही भाई और बेटे हैं । भूख और अपमान से उबकर उन्होंने न्याय की माँग की है । उनका अपमान समग्र देश का अपमान है । उनकी भूख अपनी भूख है । आज ये गुलामी की जंजीर तोड़कर आजादी की लड़ाई लड़ने के लिए आपकी ओर मिलाप और सहायता का हाथ बढ़ा रहे हैं ।

जनता द्वारा नाविक–विद्रोह का पूर्ण समर्थन हड़ताल के अतिरिक्त जहाजी सिपाहीयां ने अपने जहाज में नीले कलर सफेद वर्दियाँ फोजी ढ़ंग का मार्च और जहाजों में तिरंगा लहरा दिया था । इस तरह भारतीय स्वतंत्रता प्राप्त

कराने में हमारे नाविकों ने भी अपना महत्त्व प्रदान करके इतिहास में अपने को अमर बना दिया ।

✰ मुस्लिम लीग की स्थापना :

ब्रिटिश सरकार भारत की जनता को अब किसी भी तरह हरा नहीं सकती थी, क्योंकि हमारे भारतीयों में ऐसी एकता थी । मगर जब वह भारतीयों का दूसरी तरह लड़ना चाहते थे तो उसने हिन्दू और मुस्लिम में साम्प्रदायिक दंगे कराना शुरू कर दिया । हिन्दुओं की प्रबल कट्टरता तथा मुसलमानों के उससे भी अधिक कठोर हो जाने से भारत को बड़ी हानी उठानी पड़ी । एक और मुस्लिम लीग की स्थापना हो रही थी और दूसरी और हिन्दू महासभा का आयोजन हो रहा था ।

"मुस्लिम लीग की स्थापना ३० दिसम्बर १९०६ के समय मुस्लिम नेताओं ने एक केन्द्रीय मुस्लिम सभा बनाने की योजना बनाई जिसका उद्देश्य केवल मुसलमानो के हित की रक्षा ही करना था । मुसलमान अब अंग्रेजी सरकार को पूर्ण सहयोग दे रहे थे । क्योंकि उसको भय इस बात का रहता था, कि अगर अंग्रेज चले गए और बाद में भारत का राज्य हिन्दू लोग सँभालेंगे तो हमारा क्या महत्त्व रहेगा हम तो तब भी गुलाम रहेगे । इसीलए मुसलमान लोगों ने अंग्रेजों को सहकार देकर अपने मुस्लिम लीग की स्थापना की । स्थापना का यही उद्देश्य था ।[४३]

✰ स्वाधीनता का आलोक :

हम सभी जानते हैं कि कितनी कुर्बानी के बाद हमें आजादी का सूर्य देखने को मिला है आज हम जिस स्वतंत्रता में साँस ले रहे हैं, वह उसी की ही बदौलत है । हम जानते है पन्द्रह अगस्त १९४७ को दासता की कुहासा को चीरता हुआ प्रस्फुटित हो उठा स्वाधीनता के बाल रवि की उषा कालीन

रक्तिम किरणों ने उसका अभिषेक किया । लाल किला पर तिरंगा लहरा लहरा कर ब्रिटिश साम्राज्यवाद को विदाई दे रहा था । भारतीय जनमानस अपार हर्ष से फुला नहीं समा रहा था । सर्वत्र नवीन भारत का स्वागत हो रहा था ।

१५ अगस्त को कोंग्रेस की अवज्ञा से सारे देश में अपूर्व उत्सव मनाया गया । युग युग की गुलामी की जंजीर जिस दिन झनझना कर टूट गई उस दिन उत्सव होना स्वाभाविक था । रात को ऐसी रोशनी हुई कि दिवाली भी उसके सामने मात हो गई ।

लोगों ने बरसों से जिस दिन का इन्तजार किया था, वह दिन आज आ गया लोगों के खुशी का ठिकाना नहीं था गम केवल उसी बात का था कि गांधीजी आज हमारे बीच नहीं थे उसकी हत्या के गमने थोड़ा गमगीन बना दिया था जिस दिन हम आजाद हुए भारत का संपूर्ण राज्य हमारे हाथ में आ गया, लोकशाही शासन व्यवस्था बन गयी थी । जवाहरलाल नेहरू प्रथम प्रधानमंत्री बन गये थे, सभी लोग खुश बन गये थे । १५ अगस्त १९४७ को हमारा राष्ट्रध्वज लहराया गया, स्वाधीनता के आलोक में सारा मुल्क जगमगा उठा था ।

✰ उपसंहार :

हमारी आजादी की कथा या उसका इतिहास बड़ा ही वीरता से भरा पड़ा है जिस तरह अंग्रेजी शासन ने हमारे देश में आकर हमारे ही पैसों से हमें लूटा, बरबाद किया, तब समय समय पर जनता ने उनको विरोध किया था और कितने क्रान्तिवीरों ने अपनी जान देकर भारत की शरण में कुछ समर्पित सा कर दिया । जन आंदोलन में भारत में से ब्रिटिश शासन को उखाड़ फैंकने के लिए बहुत आंदोलन भी किये थे । गुलामी क्या होती है उसका अहेसास प्रत्यके भारतवासी का था सब वह जींदगी से उब से गये

थे । किसी राक्षश के कृत्य से भी अधिक भयानक था अंग्रेजी शासन का अत्याचार ।

निष्कर्ष के रूप में इससे मुझे क्या अनुभव हुआ याँ मैंने क्या विचार किया उसे में अपने ही शब्दों में रख रहा हूँ । हरेक देश में छोटे–बड़े संघर्ष तो होते है लेकिन भारत में ऐसे अनेक जन–आंदोलन हुए है जिसका इतिहास बड़ा ही आश्चर्यकारक है । अंग्रेज सरकार ने ऐसा क्रूर व्यवहार किया कि जिसका वर्णन करना भी शायद शक्य न हो ? इतने अत्याचार उसने भारतीयों की छाती पर ताने है कि वह तो भारत माता के वीर सपूतों ही सहन कर सकते है, किसी ऐरे–गैरे की मजाल की बात नहीं है । भारत माता के लाड़लो ने अपनी जान की बाजी लगाकर इस महान देश को आजादी रूपी जैसा रत्न प्रदान किया है जिसका कोई मूल्य ही नहीं होता लेकिन उसने देश के लिए ऐसा महान कार्य किया है जिसकी गवाही हमारा इतिहास देता है ।

आज का भारत मुझे वही दिखाई देता है जैसा अंग्रेजों के जमाने में था फर्क केवल इतना ही है तब अंग्रेज सरकार भारत पर राज्य कर के प्रजा पर घोर अत्याचार करती थी मगर आज ऐसा कोफ चल रहा है कि भारतीयों ने अंग्रेज सरकार को भी अच्छा ठहराया है । आज भी भारत में ऐसे दंगे फसाद होते है ऐसे झगड़े होते है इसके पीछे केवल राज्यलालीसा, एवं स्वार्थ ही है । क्या भाई–भाई ऐसा घिनौना कार्य करे यह कल्पना बाहर की बात है, फिर भी सबकुछ जानते हुए भी अनजान बन बैठी है । जैसे कि हम कुछ नहीं जानते आज भी भारत माता उतनी ही दुःखी है जितनी पहले थी शायद उससे भी अधिक हो लेकिन इसका कोई भी ऐसा कारण नहीं है जो भारतवासी को मानवता के उच्च्य सिंहासन से उतार कर उसे पिशाच ही बना सके ।

किस तरह हमारे क्रान्तिकारी नौजवानों ने लोही की नदी बहाकर हमें आजादी रूपी ऐसे सूर्य की झाँकी कराई, जिसका हमारे लिए कोई मूल्य नहीं है । जो चीज हमें बिना पुरुषार्थ किये अपने आप मिल जाती है उसका मूल्य

कभी हमारी नजरों में नहीं बनता, आज भी इन्सान लोही तो बहाता है लेकिन अपनों का खून बहाकर हमें कुछ नहीं मिलता केवल पछतावे के अलावा बस इससे अधिक कहना शायद में उचित नहीं समजता, आज का मानस ऐसा है कि उसे किसी के दिल की बात के लिए वक्त नहीं मिलता मगर ऐसी बातों में अपना समय गँवा देता है, जिसको करना भी पाप है ।

संदर्भ सूची

क्रम	संदर्भ पुस्तक	लेखक	पृष्ठ नंबर
१	हिन्दी उपन्यास स्वातंत्र्य संघर्ष के विविध आयाम	डॉ. देवदत तिवारी	०१
२	हिन्दी उपन्यास स्वातंत्र्य संघर्ष के विविध आयाम	डॉ. देवदत तिवारी	३५
३	१८५७ की क्रांति और उसके प्रमुख क्रांतिकारी	डॉ. भरत मिश्र	०१
४	यथोपरि		०६
५	भारत का स्वतंत्रता आंदोलन एवं राष्ट्रीय एकता	कृष्णदत	०२
६	यथोपरि		०१
७	यथोपरि		०१
८	भारत का स्वतंत्रता आंदोलन एवं राष्ट्रीय एकता	कृष्णदत	३५
९	भारतीय स्वतंत्रता संग्राम तथा संवैधानिक विकास	बी.एल. जोबर	१३१
१०	यथोपरि		१७६
११	यथोपरि		१७६
१२	सत्य के प्रयोग आत्मकथा	गांधीजी	२७६
१३	भारतीय स्वतंत्रता संग्राम तथा संवैधानिक विकास	बी.एल. गावर	२३६
१४	यथोपरि		२३७

१५	भारत का स्वतंत्रता आंदोलन एवं राष्ट्रीय एकता	कृष्णदत	११६
१६	यथोपरि		११८
१७	आप सिंह खण्ड एक	पराभि सीताराम	८४
१८	मेरी कहानी	जवाहरलाल नेहरू	५१४
१९	भारतीय स्वतंत्रता संग्राम तथा संवैधानिक विकास	बी.एल. गोवर	२०२
२०	महात्मा गांधी आप सिंह	पटाभिसीतारामैया	१०
२१	हिन्दी उपन्यास स्वातंत्र्य संघर्ष के विविध आयाम	डॉ. देवदत तिवारी	४०
२२	भारत का स्वतंत्रता आंदोलन एक राष्ट्रीय एकता	डॉ. देवदत तिवारी	१०४
२३	भारतीय स्वतंत्रता संग्राम तथा संवैधानिक विकास	बी.एल. गोवर	२१९
२४	सत्य के प्रयोग आत्मकथा	महात्मा गांधी	२१
२५	हिन्दी उपन्यास स्वातंत्र्य संघर्ष के विविध आयम	डॉ. देवदत तिवारी	४१
२६	हाउ इन्डिया फाइट फोर फ्रीडम	एनी बेंसट	०१०२
२७	भारत का स्वतंत्रता आंदोलन एवं राष्ट्रीय एकता	डॉ. देवदत तिवारी	१०८
२८	भारतीय स्वतंत्रता संग्राम तथा संवैधानिक विकास	बी.एल.गोवर	१३१
२९	यथोपरि		१८०
३०	यथोपरि		१८३

३१	श्रीमद भगवत गीता		
३२	भारत का स्वतंत्रता आंदोलन एवं राष्ट्रीय एकता	कृष्णदत	१३३
३३	यथोपरि		२८८
३४	हिन्दी उपन्यास स्वातंत्र्य संघर्ष के विविध आयाम	डॉ. देवदत तिवारी	४६
३५	अंग्रेजों से मेरी अपिल	गांधीजी	८१
३६	पूर्वलिखित ग्रंथ	पटाभिसीतारामैया	४०६
३७	भारतीय स्वातंत्रता संग्राम तथा संवैधानिक विकास	बी.एल.गोवर	२६१
३८	यथोपरि		२६१
३६	भारतीय स्वतंत्रता संग्राम तथा संवैधानिक विकास	बी.एल. गोवर	२८१
४०	यथोपरि		
४१	यथोपरि		२८१
४२	विसर्जन	प्रतापनारायण श्रीवास्तव	२८१
४३	यथोपरि		२८२

☆☆☆

तृतीय अध्याय
स्वतंत्रता संग्राम से प्रभावित हिन्दी उपन्यासों का परिचय

- प्रस्तावना
- महात्मा गांधी एवं गांधीवाद से प्रभावित उपन्यास
- समाजवादी उपन्यास
- क्रांतिकारी एवं आतंकवादी उपन्यास
- संघर्ष की अन्य घटनाओं से प्रभावित उपन्यास

अध्याय - ३
स्वतंत्रता संग्राम से प्रभावित हिन्दी उपन्यासों का परिचय

✰ प्रस्तावना

'सांस्कृतिक पुनरुत्थान' के फलस्वरूप भारत में सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक सुधार आंदोलनों का प्रादुर्भाव हुआ जिसके कारण 'निजभाषा उन्नति है सब उन्नति का मूल' की भावना ने साहित्यिक जागरण को जन्म दिया था । ब्रिटिश साम्राज्यवाद के आर्थिक शोषण के कारण जनता में उसके प्रति असंतोष की सृष्टि हो रही थी । पाश्चात्य साहित्य के संपर्क ने भारतीय मनीषियों को दासता की बेड़ियों से उन्मुक्त होने के लिए स्वभाषा प्रचार की ओर उन्मुख किया । नव जागरण के विभिन्न आंदोलनों के कारण भाषा ने रीतिकाल के दरबारी साहित्यिक वातावरण से तिलांजलि ली थी और अब जनता के चौपाल में नव आयामों के शोध में संलग्न हो उठी । जागरण के उस युग में हिन्दी साहित्य का स्वर किंचित परिवर्तित हुआ । पाश्चात्य संपर्क से जनता के जीवन में नवीन बोधोदय हुआ । दैहिक पराधीनता के अतिरिक्त मानसिक पराधीनता से मुक्ति की भावना बलवती हुई । किसी भी जीवन्त राष्ट्र का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग उसकी अपनी भाषा तथा साहित्य होता है जिसमें उस राष्ट्र की सभ्यता, संस्कृति तथा राष्ट्रीय जीवन पद्धति का आकलन सन्निहित रहता है । सभी सुधार आंदलनों के मूल में व्यक्ति–स्वातंत्र्य तथा सामाजिक का भाव विद्यमान होता है जो राष्ट्रीय चेतना को गति प्रदान करते हैं ।

इस प्रकार आधुनिक हिन्दी उपन्यासकारों ने भी अपने उपन्यास साहित्य में संप्रतियुग से पलायन की भावना अतीत के प्रति मोह के साथ–साथ उसकी पुनः संस्थापना की कामना तथा सशक्त वर्तमान के नव–निर्माणार्थ अतीत से उपजीव्य अनुसंधान की आकांक्षा के कारण इतिहास की ओर प्रवृत्त होता है ।

वह अतीत के विलुप्त पदचिह्नों को अपने कथ्य का विषय बनाता है । किन्तु पूर्ण स्वच्छता उपन्यास की कहानी कहते समय भी नहीं रहती, वहाँ भी कहानीकार जीवन के अतिरिक्त प्रीति के खूंटे से भी बंधा ही रहता है उसका नाता वर्तमान तथा अतीत दोनों से होता है ।

"किसी भी देश की प्रगति का यदि ज्ञान करना हो तो उस देश का उपन्यास पढ़ना चाहिए क्योंकि जीवन की यथार्थताओं को लेकर ही उपन्यास आगे बढ़ता है ।"[१]

मुंशी प्रेमचंद ने उपन्यास को "मानव चरित्र का चित्र मात्र कहा है ।"[२]

आचार्य नंददुलारे बाजपेयी ने उपन्यास और जीवन का पारस्परिक विश्लेषण करते हुए कहा है कि भविष्य में उपन्यास जीवन से इतना तद्रूप हो गया है कि वास्तविक जीवन में तथा उपन्यास की साहित्यिक कृति में अंतर ढूँढ निकालना कठिन हो गया उपन्यास की कतिपय व्याख्याए विद्वानों ने की है । किसी ने उपन्यास को यथार्थ मानव अनुभवों एवं सत्य का आकलन कहा है तो किसी ने जीवन और समाज के व्यक्त रूपों और घटनाओं का चित्रण तो किसी ने उसे जीवन की आलोचना ।

जैसा समाज होता है उसके अनुरूप उनका साहित्य अर्थात् की साहित्यकार समाज और राष्ट्र की तस्वीर को अपने साहित्य में बनाता है । वह वाक्य भारत ही नहीं विश्व के प्रत्येक देश के लिए सत्य है, भारतीय जनसमाज भी वर्षों तक आक्रांताओं के आक्रमणों का शिकार हुआ और जनसमाज मुक्ति के लिए जुजते रहे । और साहित्यकारों ने भी अपने साहित्य के माध्यम से प्रजा को स्वतंत्रता की दुनिया की सेर के लिए अपने साहित्य में उन्होंने राष्ट्रीयता की वाणी प्रदान की ।

आधुनिक हिन्दी उपन्यासकारों ने भी शनैः शनैः अपने उपन्यास साहित्य में स्वाधीनता संग्राम के विविध आयामों से प्रभावित होकर घटनाओं का वर्णन किया कहीं पर प्रत्यक्षरूप से वर्णन किया तो कहीं पर परोक्ष रूप से उनके

पात्र आजादी की भाषा बोलते हैं । आधुनिक हिन्दी उपन्यास स्वाधीनता से प्रभावित हुए बिना नहीं रहते यह हम सब जानते हैं । स्वाधीनता संग्राम से प्रभावित उपन्यासों की एक लंबी विरासत है जिनको पढ़ते और घटनाओं को अंकित करते करते एक जमाना भी कम पड़ जाए । इसलिए भारतीय स्वाधीनता संग्राम के प्रारंभ अर्थात् १८५७ से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति तक सन् १९४७ ई. तक के उपन्यास हैं जिनमें आज़ादी का चित्रण हुआ है उन प्रमुख उपन्यासों का परिचय यहाँ दिया जाता है ।

हिन्दी उपन्यासकार भी भारतीय स्वातंत्र्य संघर्ष की अनदेखी न कर सका । अपनी रचनाओं में स्वातंत्र्य संघर्ष के विभिन्न चित्रों की कल्पना की कुंजी से यथार्थ रूप में चित्रित किया है प्रस्तुत संदर्भ में उपन्यास के विकास का प्रसंगानुकूल विवेचन करने का प्रयास किया जाएगा ।

भारत में उपन्यास के उद्भव को कतिपय विद्वानों ने संस्कृत साहित्य की कादंबरी, दशकुमार चरितम्, हितोपदेश और पंचतंत्र से माना है । जिसे आज उपन्यास कहा जाता है –

“वह एक पश्चिमी पौधा है जो भारत वर्ष में लगाया गया है ।”[३]

भारत में उपन्यास का उद्भव पाश्चात्य शिक्षा की देन है । क्योंकि आधुनिक हिन्दी उपन्यास का एक स्वरूप और शिल्प प्राचीन संस्कृत कथा–साहित्य से नितांत भिन्न है ।

“हिन्दी में आधुनिक उपन्यास साहित्य के जन्म का श्रेय उन पाश्चात्य प्रभावों को ही दिया जा सकता है जो उन्नीसवीं शताब्दी में भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना के फलस्वरूप दृष्टिगोचर होने लगे थे ।”[४] आधुनिक उपन्यास निश्चय ही पाश्चात्य सभ्यता की उपज है । रैलकोकस का यह मत है कि –

“उपन्यास विश्व की कल्पनापूर्ण संस्कृति को बुर्जुआ अथवा पूँजीवादी सभ्यता की सबसे महत्त्वपूर्ण देन है ।”[५]

उपन्यासकार ने स्वानुभूति की अभिव्यक्ति के लिए जीवन प्रांगण में बिखरी विविध घटना सामग्री को अपनी लेखनी के माध्यम से नवीन शिल्प प्रदान किया । वस्तु शिल्प शैली और स्वरूप की दृष्टि से साहित्यिक समालोचकों ने उपन्यासकार की कलात्मक सृष्टि को विभिन्न वर्गो में विभाजित किया है । यथा वर्णनात्मक, उपदेशात्मक, जासूसी, धार्मिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, आँचलिक उपन्यास के पृथक् स्वरूप का अभाव पाया जाता है क्योंकि राजनीतिक समस्या को सामाजिक समस्या का पर्याय माना गया है । सामाजिक उपन्यासों में राजनीतिक जनजीवन का जो चित्रण मिलता है उसके अंतराल में यही धारणा काम करती है । आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसकी ओर इंगित करते हुए कहा है कि –

"सामाजिक उपन्यासों में देश में चलनेवाले राष्ट्रीय तथा आर्थिक आंदलनों का भी आभास बहुत कुछ रहता है । ताल्लुकेदारों के अत्याचार, भूखे किसानों की दारुण दशा के बड़े चटकिले चित्र उनमें प्रायः पाये जाते हैं ।"[६]

हिन्दी उपन्यास साहित्य में भी स्वाधीनता प्राप्ति के लिए हुए आंदोनलों को उपन्यासकार ने किस रूप में ग्रहण किया, इसका विवेचन हम निम्नांकित विभागो में विभाजित करके देख सकते हैं ।

(१) गांधीजी एवं गांधीवाद से प्रभावित उपन्यास
(२) समाजवादी उपन्यास
(३) क्रांतिकारी एवं आतंकवादी उपन्यास
(४) संघर्ष की अन्य घटनाओं से प्रभावित उपन्यास

भारतीय स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में उन्नीसवीं शताब्दी का उतरार्द्ध विशेष महत्त्वपूर्ण है । हिन्दी उपन्यास और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस उद्‌भव और विकास की दृष्टि से सहोदर है । दोनों का प्रेरणा–स्त्रोत भी यूरोपिय पुनर्जागरण का परिणाम है । ह्यूम महोदय का आशीर्वाद पाकर एक ओर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का विकास हुआ, तो दूसरी ओर आंग्ल साहित्य और

बंगला साहित्य के अनुकरण पर हिन्दी उपन्यास ने अपनी शैशवावस्था की ओर पन बढ़ाया । उपन्यास रूपी यह नवजात शिशु राजभक्ति की प्रशस्तिपरक लोरियो सुन–सुनकर जब किशोरावस्था के द्वार पर पहुँचा तो उसे तिलस्म, रोमांस, ऐयारी और जासूसी की भुल भुलैया के चक्कर काटकर रह जाना पड़ा । प्रेमचंद के हिन्दी आगमन से पूर्व तक यह परंपरा बनी रही । महात्मा गांधी के राजनीति में प्रवेश से ही राजभक्ति का व्यामोह विलीन हो पाया था । इससे पहले राजनीति से उसका कोई संबंध नहीं था । पुनरुत्थानवादी आंदोलन, समाजसुधार आंदोलन उपन्यास के वर्ण्यविषय बनते रहे । अंग्रेजी सरकार का दमनचक्र भी उपन्यासकार को राजनीति से कन्नी, कटवाता रहा । प्रेमचंद से पूर्व के हिन्दी उपन्यासों में स्वाधीनता संग्राम से प्रभावित घटनाओं के चित्रण का अभाव है । कुछ मुरझाये अंकुर खोजे जा सकते है परंतु वे सब राजभक्ति के सुत्र–पात्र कहीं–कहीं नखलिस्तान की तरह है । यद्यपि भारतेन्दुकाल में हिन्दी काव्य के क्षेत्र में आग्लशोषण के विरुद्ध कवि का स्वर स्फुटित होने लगा था परंतु हिन्दी उपन्यासकार तत्युगीन आदर्शवाद और सुधारवाद के व्यामोह में मोहित था । इस काल के उपन्यासों में प्रायः युग चित्रण का अभाव खटकता है 'चंद्रकांता' जैसे प्रसिद्ध उपन्यास भी युगीन करवट के प्रति मौन है ।

"जब यह उपन्यास लिखा गया उस समय देश की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक अवस्था कैसी थी, इसका कोई भी ज्ञान इस रचना में नहीं होता ।"[७]

इस युग के उपन्यास कल्पना प्रधान है । उस समय अध्ययन और लेखन का एकमात्र उद्देश्य था कौतूहल तृप्ति द्वारा मनोरंजन करना ।

बीसवीं शदी के लगभग अठारह वर्षो तक हिन्दी उपन्यासकार लक्ष्यहीनता स्वरूप की अस्पष्टता के कारण अपनी रुचि और प्रवृत्ति के अनुसार औपन्यासिक कार्य कर रहे थे । राष्ट्रीय समस्या नाम की कोई समस्या उसके सामने थी ही नहीं । बंग–भंग के कारण बंगाल का स्वदेशी आंदोलन

आँचलिकता का दामन थामकर रह गया वह हिन्दी उपन्यासों में स्थान न पा सका । इसका कारण संभवतः यहीं है कि यह युग उपन्यास का आरंभिक काल के साथ–साथ संक्रांतिकाल रहा है । उपन्यास लेखन उस समय एक ढकोसला माना जाता रहा है । उपन्यासकार को 'धनचक्कर' की पदवी मिलती रही । यही मनोवृत्ति उन्नीसवीं शताब्दी में अधिक थी परंतु समय की गति के साथ इसका हास होता गया और इसका अवसान मुंशी प्रेमचंद के आगमन पर दिखाई पड़ा ।

"पुनर्जागरण काल ने हिन्दी उपन्यास को गहरे आदर्शवाद के रंग में डुबो दिया था । पथ भ्रष्ट युवक के सुधार की कहानी 'परीक्षागुरु' से आरंभ हुई तो सारे कथा साहित्य को धीरे–धीरे उसने अपने त्रोड में समेट लिया ।"[८]

विश्वराज्यक्रांतियों के मूल में साहित्य का हाथ रहा है गोपबेल्स की प्रेरणा से नाजीवाद का जन्म हुआ और फ्रांस की क्रांति का पथ प्रशस्तकर्ता रुसो था । रुसी समाजवादी क्रांति के इतिहास में गोर्की का नाम इतिहास प्रसिद्ध है । भारत में हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में वहीं काम मुंशी प्रेमचंद ने किया उपन्यास साहित्य को नई दिशा प्रदान की । महात्मा गांधी जनता जर्नादन को साथ लेकर स्वातंत्र्य सघर्ष के क्षेत्र में आगे आये, वही प्रेमचंद राष्ट्रीय संघर्ष की औपन्यासिक पताका को थामे हिन्दी साहित्य जगत में अवतरित हुए । महात्मा गांधी का राजनीतिक प्रवेश तथा प्रेमचंद का उर्दू से हिन्दी साहित्य जगत में प्रवेश मणीकांचन संयोग है ।

"जीवन की समग्रता को लेकर युगीन समस्याओं के विचित्र पक्षों को स्पष्ट करने का प्रयास सर्वप्रथम प्रेमचंद के उपन्यासों में ही मिलता है । जो अपने युग के एक प्रकार से दिशा निर्देशक है ।"[९]

प्रेमचंद से पूर्व हिन्दी उपन्यासों में भारतीय स्वाधीनता संघर्ष की किसी भी घटना का चित्रण प्रायः नहीं है । परंतु प्रेमचंदयुग में वह जीवन अनुगामी बन गया । ग्रंथ खोलने के साथ अब जीवन की विभिन्न समस्याओं की ग्रंथियाँ

खोलने की शिक्षा–दिक्षा दी जाने लगी । व्यक्ति और राजनीति एक दूसरे के पूरक बन गये ।

“पराधिन सपने हुं सुख नाहीं की भावना उग्र से उग्रतर होती हुई भविष्य का सुख स्वप्न अंग्रेजी राज्य के समूल नष्ट करने में ही निहित हो उठा फलतः उपन्यासकार भी स्वयुगीन राजनीतिक आंदोलनों के चित्रण के माध्यम से जनता को जगाने लगा । गांधीवादी आंदोलन में उपन्यासकार पूर्णता अनुभव करने लगा यहीं कारण है कि साहित्य में इसके पहले के स्वरूपों पर गांधीवाद का प्रभाव परिलक्षित नहीं होता । सन् १९१७ के बाद के हिन्दी साहित्य में गांधीवाद का प्रभाव देखा जा सकता है ।”[१०]

गांधीजी ने सत्य और अहिंसा का नारा दिया था उसे साहित्यिक जगत ने गांधीवाद की संज्ञा दी । इस युग ने जिस साहित्य की सृष्टि की उसमें कर्मण्यता, विचारों की स्वतंत्रता और जीवन की सरलता के साथ–साथ निर्भीकता पाई जाती है ।

कालगति की परिवर्तित मांगों के अनुसार वैयक्तिक आवश्यकताओं के दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आया । आदर्शवाद ने धीरे–धीरे गांधीवाद का रूप ग्रहण किया । और यथार्थ ने मार्क्सवाद का । जहाँ एक ओर गांधीवाद कर्ममूलक है वहीं दूसरी ओर मार्क्सवाद अर्थमूलक । राष्ट्रीय आंदोलन के संघर्ष में दोनों की भूमिका विशेष महत्त्वपूर्ण रही है । उपन्यासकार इन दोनों ही दर्शनों से प्रभावित हुआ है । मंजिल दोनों की एक परंतु राह अलग अलग ।

वस्तुतः आधुनिक हिन्दी उपन्यासों को स्वातंत्र्य संघर्ष के संदर्भ में आगे जो वर्गों में विभाजित किया उसको निम्नांकित रूप में देख सकते हैं ।

✰ महात्मा गांधी एवं गांधीवाद से प्रभावित उपन्यास

“गांधीवाद वह वृक्ष है जिसकी जड़े? ‘रामराज्य’, हृदयपरिवर्तन, सत्याग्रह, अहिंसा और ‘सत्य’ में निहित हैं ।”[११]

आध्यात्मिकता तथा व्यावहारिक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सत्य, अहिंसा और प्रेम का मार्ग अनिवार्य मानता है । गांधीवाद यह मानकर चलता है कि मानवी संबंधों की सार्थकता आर्थिक, राजनीतिक और विधिगत साधनों से नहीं नैतिकता और धर्म से संभव है और अर्थ नहीं सत्य मानव जीवन का आधार है । उपन्यासों में गांधीवाद दो रूपों में दृष्टिगोचर होता है (A) राष्ट्रीय समस्याओं के रूप में और (B) सामाजिक समस्याओं के रूप में ।

प्रेमचंद ने राष्ट्रीय समस्याओं के साथ–साथ सामाजिक समस्याओं को भी अपनी लेखनी का विषय बनाया । वे राष्ट्रीय आंदोलनों से पूर्णतः प्रभावित उपन्यासकार थे । प्रेमचंद के उपन्यासों में युगीन राजनीति के चित्र किसी न किसी रूप में अवश्य मिलती है । गांधीजी के नेतृत्व में उनकी पूर्ण आस्था थी । गांधीजी के दर्शन के बाद उनकी पत्नि के द्वारा यह पूछे जाने पर कि आप बोले ।

“मैंने अपना लिया । अपनाने को कहती है, उसीके बाद तो मैंने प्रेमाश्रम लिखा । सन् २२ में छपा है ।”[१२]

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमाश्रम में प्रेमचंद गांधीवाद के रास्ते जा रहे थे । परंतु इससे पूर्ववर्ती रचना ‘सेवासदन’ में वह सुधारवादी थे । क्योंकि भारतीय राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम का नेतृत्व सुधारवादियों के हाथ में था । जो मात्र आवेदन और निवेदन की भाषा ही जानते थे । उस वक्त सारा कांग्रेस आंदोलन सुधारवादी था । प्रेमचंद उर्दू से हिन्दी में आये । उनकी उर्दू रचनाएँ राजनीति की ज्वाला के अंगारे कहीं न कहीं सुलगते हुए दृष्टिगोचर होते है कथा साहित्य में ‘सोजेवतन’ इसका साक्षी है ।

गांधीवादी आंदोलन से प्रभावित प्रेमचंद के तीन उपन्यास विशेष महत्त्वपूर्ण है । जिन पर इस आंदोलन का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है । ‘प्रेमाश्रम’, रंगभूमि और कर्मभूमि राष्ट्रीय आंदोलन की औपन्यासिक त्रयी है । ‘प्रेमाश्रम’ का प्रेमशंकर, रंगभूमि का सूरदास और कर्मभूमि का अमरकान्त जिन आंदोलनों का

सूत्रपात करते है वे राष्ट्रीय आंदोलनों की प्रतिछाया है । प्रेमशंकर, सूरदास और अमरकान्त में गांधीवाद का प्रतिबिंब स्पष्ट देखा जा सकता है । असत्य पर सत्य की विजय, हृदय परिवर्तन, सत्याग्रह, अछूत आंदोलन, चरखा और कर्धा, लगानबंधी आंदोलन, गांधी इरवीन समझौता, नरमदलीय मनोवृत्ति, नौकरशाही का दमन, स्वराज की व्याख्या, नारीजागरण, किसान और मजदूर आंदोलन जमीदारों का शोषण, रियासतों का अत्याचार आदि अनेक यथार्थवादी राजनीतिक घटनाओं को उपन्यासकार ने चित्रित किया है । निश्चय ही प्रेमचंद का उपन्यास साहित्य अपने युग के भारत का और उसके स्वाधीनता संग्राम का स्पष्ट प्रतिबिंब है ।

'प्रेमाश्रम' की रचना १९१८–१९ के आसपास की थी । यद्यपि प्रकाशन १९२२ में संभव हुआ था । इससे पूर्व गांधीजी चंपारन व खेड़ा में कृषकों को सत्याग्रह के माध्यम से जगा चुके थे । प्रेमचंद ने इन आंदोलनों से प्रभावित होकर यह उपन्यास लिखा । गांधी प्रेरणा से प्रेमाश्रम की रचना विधान की बात उन्होंने स्वयं स्वीकार की है । 'प्रेमाश्रम' में शोषक और शोषित की गाथा कृषक आंदोलनों के माध्यम से व्यंजित है । प्रेमशंकर पूर्णतः गांधीवादी पात्र है । उसका विदेश से आगमन गांधीजी के अफ्रिका से भारत आगमन में साम्य है । वह प्रेमाश्रम की स्थापना करता है तो गांधीजी साबरमती आश्रम की स्थापना करते है । लखनऊ का कृषक आंदोलन भारतीय सामतवादी जमीदारी प्रथा के विरुद्ध है – इस समस्या का समाधान भी गांधीवादी है । प्रेमशंकर रामराज्य की कल्पना करता है उसके लिए अपना बलिदान करता है । हृदय परिवर्तन, रक्तहीनक्रांति, अहिंसा, हिन्दू–मुस्लिम समस्या, साम्राज्यवादि मनोवृत्ति, धारा सभा के चूनावो का संकेत तथा रुसी क्रांति द्वारा वहाँ के कृषको का कायापलट आदि अनेक सामयिक राजनीति घटनाओं का संयोजन इस उपन्यास में प्रेमचंद ने किया है ।

'वरदान' का हिन्दी अनुवाद सन् १६२१ में हुआ । इससे पूर्व सन् १६१२ में 'जल्वए–इसाइ' नाम से उर्दू में यह लिखा गया था । इससे प्रेमचंद ने राष्ट्रीय भाव को जाग्रत किया है । बंगभंग से ही भारतीय नारी के हृदय में राष्ट्रीय प्रेम अंकुरित होने लगा था । स्वदेशी आंदोलन जो बंगभंग का उपजीव्य था उसमें भारतीय नारी ने पूर्ण भाग लिया था । उसी राष्ट्रीय भाव को प्रेमचंद ने इसमें आंशिक रूप से दर्शाया है । सुवामा देवी से देशभक्त वीर पुत्र की याचना करती है । देश की स्वाधीनता के लिए तथा उसके आर्थिक विकासार्थ प्रतापचंद अहिंसक नीति का मनोभाव व्यक्त करता है । वह जाति को प्राण बलिदान के लिए उत्सर्ग होने की बात भी कहता है । जाति यहाँ राष्ट्र ही है । देश सेवी महात्मा जी की कल्पना उन्होंने बालाजी के रूप में की है बालाजी, विवेकानंद है अथवा वे तिलक है ।

'रंगभूमि' (१६२५) प्रेमचंद का पूर्ण गांधीवादी परंपरा का दूसरा उपन्यास है इसमें महात्मा गांधी के असहयोग आंदोलन का समसामयिक चित्र उभरकर आया है । सूरदास गांधीवाद का सजीव प्रतीक है जो गांधीजी के सत्याग्रह आंदोलन की चेतना से अनुप्राणित है । इसके माध्यम से उपन्यासकार ने गांधीवाद के सैद्धांतिक पक्ष की विवेचना न करके व्यवहारिक पक्ष जन–जागरण की विवेचना की है । सूर का संघर्ष पूँजीवाद और उपनिवेशवाद द्वारा कुचली और शोषित भारतीय जनता का संघर्ष है । गांधीजी के नेतृत्व में जनता भी अपनी जान हथेली पर लेकर साम्राज्यवाद का विरोध कर रही थी । अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्षरत थी ।

सूर –

"गांधीवादिता में पगा हुआ ग्रामीण जनता का प्रतीक है उसके जीवन में आशावादिता तथा अजेयता सन्निहित है ।"[१३]

वह न केवल अहिंसावादी ही है सच्चा सत्याग्रही भी है औद्योगीकरण का विरोध करना उसका मूलमुत्र है । गांधीजी भी औद्योगीकरण के पक्ष में न थे । चरखा भारतीय जन के लिए आवश्यक मानते थे ।

जनसेवक मिस्टर क्लर्क और राजा महेन्द्र कुमार आदि अन्य पात्र ब्रिटिश साम्राज्यवाद शोषक एजन्ट है । शोषण को समूल नष्ट करना भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का एकमात्र उद्देश्य था । सूर और उनके साथी सत्याग्रह के द्वारा अन्याय, असत्य और शोषण का विरोध करते है । भैरो और राजामहेन्द्रकुमार, जनसेवक का अंत में हृदय परिवर्तन हो जाता है । जिसमें प्रेमचंद के गांधीवादी मंतव्य की विजय निहित होती है । विनय, सोफिया, प्रभुसेवक जागरूक भारत की नई पीढ़ी के व्यक्ति है । विनय और प्रभु सेवक सेवासमिति कोको नाडा में संस्थापित हिन्दुस्तानी सेवादल (१६२३) की याद दिलाती है । सोफिया का प्रारंभिक चित्र श्रीमती बेसेन्ट से कुछ मिलता है वीरपाल का आतंकवाद के प्रति प्रभाव आतंकवादी आंदोलन का सामयिक प्रभाव ही कहा जायेगा । इसके अतिरिक्त रंगभूमि में नौकरशाही का स्वैच्छाचार, सत्याग्रह आंदोलन का दमन देशी रियासतों में व्याप्त भ्रष्टाचार, नारीजागरण, वैधानिक आंदोलन में अनास्था असहयोग आंदोलन की वापसी से उत्पन्न निराशा आदि अनेक अन्य राजनीतिक घटनाओं को लेकर राष्ट्रीय आंदोलन का यत्र–तत्र सुंदर अंकन किया गया है ।

'कायाकल्प' (१६२६) में प्रेमचंद ने यद्यपि अलौकिक तथा अतिमानवीय तत्त्वों की संयोजना की है परंतु वह असहयोग आंदोलन के उपरांत कांग्रेस खिलाफत आंदोलन के एक्य की धुरी के विघटन से उत्पन्न हिन्दू मुस्लिम समस्या का चित्रांकन भुला न पाये । अहसयोग आंदोलन की वापसी से भारत में मायूसी का वातावरण छा गया था । हिन्दू और मुसलमान मंदिर–मस्जिद गाय और गाजे–बाजे को लेकर एक दूसरे के रक्त से अपने करों को रंगीन करने लगे थे । आये दिन किसी न किसी हिन्दू–मुस्लिम दंगा होना एक साधारण बात हो चली थी । 'कायाकल्प' में इन दंगो के कारणों पर भी

प्रकाश डाला गया है । चक्रधर का गया के स्थान पर स्व–उत्सर्ग गांधीजी द्वारा अभिव्यक्त भावों को ही पुनरभिव्यक्ति है । बेगार के विरुद्ध आंदोलन की कल्पना गांधीवादी सत्याग्रह का और जगदीशपुर की रियासत संपूर्ण भारत का प्रतिक है । चक्रधर के नेतृत्व में चमार बेगार का बहिष्कार करते हैं । वह उनकी प्रसुप्त आत्मा को जगा देता है । जगदीशपुर के राजा और चक्रधर में समझौता नहीं हो पाता । बेगार सत्याग्रह चौरी–चौरा की तरह हिंसा का रूप धारण कर लेता है ।

'गबन' १९३१ की कथा का प्रारंभ सामाजिक समस्या से होता है और अंत राष्ट्रीय भावना से । पूंजीवादी शोषण नौकरशाही का नंगा नाच, पुलिस के अत्याचारों का वर्णन पढ़ा हो तो निश्चय ही 'गबन' एक एतिहासिक दस्तावेज है । वहाँ राजनीतिक नेताओं पर झुडे मुकदमें, झूठीगवाहियाँ, झूठेबनावटी मुखबिरों की तलाश राष्ट्रीय चेतना के दमन हेतु की जाती है । 'गबन' में वर्णित मुकदमा 'मेरठ षड़यंत्र' का स्मरण कराता है । स्वराज्य की परिभाषा, उसका सामान्य जन के संदर्भ में अर्थ, स्वदेशी आंदोलन, देवीदीन का त्याग राष्ट्रीय संघर्ष के सुत्र है । नारी जागरण के रूप में जालपा भारतीय नारी का प्रतीक है ।

''जालपा की भावना नारी की भावना है जो नर के साथ भारतीय स्वातंत्र्य संघर्ष में देशप्रेम की ज्वाला सुलगा देती है ।''[१४]

जोहरा का हृदय परिवर्तन गांधीवाद का प्रत्यक्ष प्रमाण है ।

'कर्मभूमि' (१९३२) प्रेमचंद की 'प्रेमाश्रम' और 'रंगभूमि' के उपरांत सशक्त राजनीतिक औपन्यासिक कृति है । महात्मा गांधी के रचनात्मक कार्यक्रम से अनेक तत्त्वो अछूतोद्धार, कृषक उत्थान, नारी जागरण, हिन्दू–मुस्लिम एकता आदि को उपन्यासकार ने ग्रहण किया है । 'कर्मभूमि' में मंदिर–प्रवेश सत्याग्रह गांधीवादी आंदोलन की ही देन है । बापू ने एक नारा दिया था कि 'गाँव की ओरचलो' अतः प्रस्तुत उपन्यास में अछूत आंदोलन नगर की परिधि के

अतिरिक्त ग्रामीण अंचल में दोनों में एक साथ चलता है अमरकान्त अछूतों के लिए जीता है, अछूतों के लिए प्राण संकट में डालता है, उनको नई चेतना प्रदान कर सत्याग्रह की पंक्ति में बिठाता है । अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए जीने और मरने की सीख उन्हें देता है । खाद्य अखाद्य की गांधीवादी भावना का प्रचार करता है । लगानबंदी आंदोलन का चित्रण भी प्रेमचंद ने उसमें किया है । गांधी इरवीन समझौते की तरह 'कर्मभूमि' का लगानबंदी आंदोलन भी पाँच पंचों की कमेटी बनाकर समाप्त हो जाता है ।

"उपन्यास की प्रधान कथा दूसरे रूप में । १९३०–३२ के सविनय अवज्ञ आंदोलन से संबंध रखती है । अमरकान्त और उसकी पत्नी आंदोलन के राष्ट्रीय नेता है ।"[५]

'कर्मभूमि' में उपर्युक्त राष्ट्रीय समस्याओं के अतिरिक्त नारी जागरण विभिन्न नारी–पात्रों, सुखदा, सकीना, पठानिन, नैना मुन्नी सलोनी और रेणुका देवी द्वारा सत्याग्रहों आंदोलनों में सक्रिय भाग लेकर चित्रित किया है । सुखदा का स्वावलंबन भारतीय, नारी के जागरण का एक सबंल पक्ष है । 'कर्मभूमि' के सभी नारी पात्र तत्कालीन नारी समाज की राष्ट्रीय चेतना के जागरण का द्योतन करते हैं ।

हिन्दू मूस्लिम एकता गांधीजी के जीवन का मूलमंत्र था । अमरकान्त और सलीम की अटूट मित्रता इसका परिचायक है । सकीना, सलीम सुखदा, अमरकान्त और पठानिन का पारस्परिक स्नेह मित्रता हिन्दू–मुस्लिम एकता का आदर्श उदाहरण है । विभिन्न पात्रों का हृदय परिवर्तन गांधीवादी आस्था का प्रतीक है ।

'जागरण' (१९२७) श्रीनाथसिंह का गांधीवादी उपन्यास है । जिसमें गांधीजी के ग्राम्य जागरण का भाव निहित है । कृषक आंदोलन के नेतृत्व कृपाशंकर द्वारा होता है । इस उपन्यास का रचना काल और बारदोली सत्याग्रह की प्रारंभिक आंदोलनात्मक हलचलों में साम्य है ।

'चंदहसीनो के खुतूत' (१९२५) में 'उग्रजी' ने पत्र शैली में युगीन सांप्रदायिकता समस्या का अंकन किया है । असहयोग आंदोलन के स्तगन के कारण भारत में जा विषाक्त वातावरण बन गया था उसके युगीन चित्र 'चंदहसीनो के खुतूत' में बताया गया है संपूर्ण कथानक हिन्दू–मुस्लिम समस्या पर आधारित है ।

'बुधुआ की बेटी' (१९२८) असहयोग आंदोलन की असफलता के बाद गांधीजी ने हरिजनोद्धार का काम अपने रचनात्मक कार्यक्रम के अंतर्गत अपनाया था ताकि हिंसावादी जनता का सामाजिक उत्थान आवश्यक था । पांडेय बेचेन शर्मा 'उग्र' ने मनुष्यनाद में हरिजनोद्धार की समस्या पर बुधुआ की बेटी की रचना की है । इसका परिवर्तित नाम मनुष्यानंद है । मनुष्यानंद अधौरी बाबा हरिजन आंदोलन का प्रति रूप है । अघोरी बाबा और कोई नहीं स्वयं गांधी बाबा है ।

सन् १९२० से लेकर सन् १९३० तक गांधीजी जिस सत्याग्रह आंदोलन का नेतृत्व सक्रिय रूप से कर रहे थे, उससे प्रभावित होकर ऋृषभचरण जैन ने 'भाई, सत्यागभ्रह, गदर तथा हरहाइनेश उपन्यासों की रचना की । इन उपन्यासों में गांधीवादी सत्याग्रह को उपन्यासकार ने अपनी लेखनी का विषय बनाया है ।

'भाई (१९३०) उपन्यास भी गांधीवादी उपन्यास है । सिंभु का हृदय परिवर्तन गांधीवादी का व्यावहारिक पक्ष है ।

'सत्याग्रह' (१९३०) में ऋृषभचरण जैन ने प्रतीक से काम किया है । इस उपन्यास का कथानक तो गांधी सत्याग्रह से लिया गया है परंतु देश और काल गांधीजी के दक्षिणी अफ्रिका के सत्याग्रह से है । जिसमें भारतीय जनता पर ब्रिटिश अत्याचारों की कहानी ब्रिटिश भारत के लिए जाने वाले अत्याचारों की ही कहानी को प्रकारान्त से उठाया है । गांधीवादी सत्याग्रह में सत्याग्रहकार को पूर्ण आस्था है ।

जैनेन्द्रेकुमार जैन को गांधीवाद पूर्ण निष्ठा और आस्था है । गांधीवाद की स्थापना के लिए उन्होंने अपने साहित्य में –

"आकंतवादी क्रांतिकारी आंदोलन को अपनी भर्त्सना का विषय बनाया है ।"[९६]

इसलिए उनके उपन्यास में गांधीवाद का समावेश तो है ही, क्रांतिकारी राजनीतिक वातावरण का घटाटोप भी कम नहीं ।

'सुनीता' (१९३५) इसका हरिप्रसन्न क्रांतिकारी है । तद्‌युगीन आतंकवादी दल की गतिविधियों का परोक्ष त्रिकोण अशंतः कहीं–कहीं मिलता है । पिस्तौल की नली जो क्रांतिकारी का कवच होता है, उसकी झलक उपन्यासकार दिखाभर सका है । पिस्तौल की नली से इतना राजनीतिक आभास अवश्य होता है कि आतंकवादी क्रांतिकारी पिस्तौल हमेशा साथ रखते थे । जो हिंसा का साधन है ।

"इसकी मूल समस्या यही हिंसा और अहिंसा का साहित्यिक तथा व्यावहारिक संघर्ष ही है जिसमें अहिंसा की विजय और हिंसा की पराजय दिखाना जैनेन्द्रकुमार का परम लक्ष्य है ।"[९७]

सुनिता के सौजन्य से हरिप्रसन्न की क्रांतिकारीता का अवसान हिंसा में अहिंसा गांधीवाद की विजय है ।

'त्यागपत्र' (१९३७) जैनेन्द्रकुमार का गांधीवादी उन्यास है । जिसमें गांधीजी के प्रेम, परपीडा के लिए आत्मत्याग का भाव पिरोया गया है । मृणाल में उपन्यासकार ने गांधीवाद के अहिंसा भाव की उद्‌भावना के द्वारा आदर्शवादी नारी पात्र की सर्जना की है । मृणाल का एक–एक वाक्य निर्माणात्मक कर्मयोग से आप्लावित है ।

उषादेवी मित्रा का उपन्यास 'बचन के मोल' (१९३६) जितना सामाजिक है उतना ही राजनीतिक भी । यह समाज और राजनीतिका समन्वित रूप है । इसे गांधीवादी उपन्यास ही कहा जाता है । क्योंकि 'बचन का मोल' में गांधीजी

के रचनात्मक कार्यक्रम के विशेष अंश चर्खा और खादी को मित्रा जी ने वर्ण्य विषय बनाया है । बापू के आदर्शों की स्थापना खादी के प्रति स्वदेशी भावना का सृजन करके की गई है ।

'मेरादेश' (१९३६) डॉ. धनीराम प्रेम का पूर्णतः राजनीतिक उपन्यास है। इस उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इससे डॉ. प्रेम ने गागर में सागर भर दिया है । 'मेरा देश' की कहानी दिल को छू लेती है । असहयोग आंदोलन की पृष्ठ भूमि पर रचित यह उपन्यास देश–प्रेम और राष्ट्र भक्ति से लबालब है । 'मेरा देश' में रचनाकार ने असहयोग आंदोलन में विद्यालयो और कॉलेजों का परित्याग कर भाग लेनेवाले छात्रों की भूमिका का चित्रण प्रधान विषय बनाया है ।

राधिका रमण प्रसाद सिंह ने अपने उपन्यास शिल्प में भारतीय राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन को युगीन परिस्थितियों के अनुसार ढालने का प्रयत्न किया है । उनके राम–रहीम, पुरुष और नारी, गांधी टोपी और पूरब पश्चिम में राष्ट्रीय आंदोलन का चित्रण हुआ है ।

'राम–रहीम' (१९३६) ब्रिटिश साम्राज्यवाद की फूट डालो और राज्य करो की नीति से चिंतित होकर ही गांधीजी ने आजीवन हिन्दू–मुस्लिम एकता का प्रयत्न किया । राम रहीम की उसी एकता के प्रयत्नो की एक कड़ी है । हिन्दू–मुस्लिम एकता में पिरोने का पूर्ण प्रयत्न राजाजी ने किया है । देश की उन्नति के लिए राष्ट्रीय आंदोलन की पृष्ठभूमि में साम्प्रदायिक सौहार्द की सृष्टि करना ही राम–रहीम का एकमात्र उद्देश्य है ।

'गांधी टोपी' (१९३८) की विषयवस्तु संक्षेप में सन् १९३० से १९३८ तक की राजनीतिक घटनाएँ हैं । इसका लावधि में घटित राजनीतिक हलचलों का व्यंग्यात्मक चित्रण है । जिसमें सन् १९३५–३६ का कॉंग्रेस का प्रांतीय चुनाव, अछूतों का मंदिर प्रवेश आंदोलन खदर का प्रचार आदि प्रमुख है ।

'पुरुष और नारी' (१९३९) में सुधा और अजीत के प्रेम की समस्या को स्वातंत्र्य संघर्ष की रंगभूमि में राजनीतिक अंश के रूप में उठाया है । अजीत गांधीआश्रम 'साबरमती' जाता है । एक गाँव में सरिता के कगार पर आश्रम की स्थापना भी करता है । गांधीजी के नमक सत्याग्रह की प्रक्रिया का सुंदर संयोजन राजा जी ने किया है ।

इलाचंद जोशीजी मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार है । जोशीजी ने अपने उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ को बड़ी कुशलता से संयोजित किया है सामाजिक यथार्थवाद के अतिरिक्त उपन्यासों में राजनीतिक यथार्थवाद का चित्रण भी मिलता है । फ्रायड और मार्क्स के चिंतन को उन्होंने एक दूसरे का पूरक माना है । 'संन्यासी' (१९४१) इसमें राजनीति अशंतः ही आई है बलदेव राजीतिक पात्र है । जिसकी उद्भावना के पीछे गांधीवाद का विरोध स्पष्ट है विप्लववादी गांधीजी का विरोध किया ही करते थे । उन्हें अहिंसा में विश्वास न था । गांधीजी क्रांतिकारियों की हिंसा का विरोध करते थे । वही ऐतिहासिक तथ्य जोशी जी ने 'सन्यासी' में व्यक्त किया है । शांति पूर्णतः गांधीवादी पात्र है । बलदेव का हृदय परिवर्तन शांति के संपर्क से होता है । जो गांधीवादी विचारधारा का विजय है ।

यज्ञदत्त शर्मा ने 'दोपहलु' (१९४०) में राष्ट्रीय मुक्ति–आंदोलन की दोनों ही धाराओं आतंकवाद और गांधीवाद को रचना का कथानक बनाया है उपन्यास का एक पहलू 'आतंकवाद' है और दूसरा पहलू 'गांधीवाद' । दोनों ही विचारधाराओं के पात्र अपने–अपने ढंग से देश को पराधीनता से मुक्त करने का प्रयत्न करते हैं । उपन्यासकार ने गांधीवाद को ही प्रश्रय दिया है । स्वयं उपन्यासकार के शब्दों में 'दो पहलू' गांधी युग की एक देन है ।

निमंत्रण (१९४२) में भगवतीप्रसाद बाजपेयी ने बापू की छत्रछाया में होने वाले जन आंदोलन की तस्वीरे अपने साहित्य में पेश की है । मजदूरों और

भिखमंगो को भी अपने साहित्य का हीरो बनाया है । 'निमंत्रण' गांधीजी के समाजवादी भावों से ओतप्रोत उपन्यास है ।

भगवतीचरण वर्मा ने 'टेढे मेढे रास्ते' (१९४६) का निर्माण भारतीय स्वातंत्र्य संघर्ष के युग में विद्यमान पूंजीवाद, सर्वहारावर्ग का 'साम्यवाद' और 'क्रांतिवाद' के विभिन्न मतवादों की पृष्ठभूमि में किया है डॉ. त्रिभुवन के अनुसार –

"लेखक ने भारतीय राजनीति के तीन प्रमुख वादों को तीन रास्तों के रूप में चित्रित किया है ।"[९] रामनाथ तिवारी पूंजीवाद का समर्थक है । दयानाथ कांग्रेस का उमानाथ साम्यवाद का और प्रभानाथ क्रांतिवाद का । इन्हीं पात्रों के माध्य से राजनीतिक सिद्धांतों की विवेचना की गई है । गांधीवाद की ढाल थामकर प्रगतिशील चिंतन समाजवादी और क्रांतिकारी आंदोलन को हेय सिद्ध कर प्रकारान्तर से पूंजीवाद का ही समर्थन किया गया है । 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' में सीधी–सादी तटस्थ दृष्टि का अभाव राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में खटकता है । गांधीवादी सत्याग्रह के सुंदर चित्रों का संयोजन उपन्यासकार ने किया है टेढ़े–मढ़े रास्ते को गांधीवाद, साम्यवाद और क्रांतिवाद के आंदोलन की त्रयी कहा जा सकता है ।

'चलते–चलते' (१९५१) उपन्यास की कथा का निर्माण भगवतीप्रसाद वाजपेयी ने स्वातंत्र्य संग्राम के संदर्भ में पूंजीवादी व्यवस्था पर प्रहार करने के लिए किया है ।

'पतवार' (१९५२) में आकर उनकी वैयारिक धारणा में परिवर्तन परिलक्षित होता है । क्योंकि 'पतवार' में भगवतीप्रसाद वाजपेयी ने स्पष्ट कहा है कि –

"मेरी यह धारणा अब धीरे–धीरे दृढ़ हो गई है कि एक स्थायी विश्वशांति और मानवमात्र का कल्याण सत्य और अहिंसा द्वारा संभव है । डॉ.

भगीरथ मिश्र इस उपन्यास की समीक्षा करते हुए कहते हैं कि यह उपन्यास गांधीवादी दृष्टिकोण से प्रस्तुत मनोविश्लेषण प्रधान सामाजिक उपन्यास है ।"[९]

जैनेन्द्रकुमार के उपन्यास 'सुखदा' १९५३ की कथावस्तु में विप्लववादियों के कार्य–कलापों और उनके चिंतन का संगुफन है । 'सुखदा' में गांधीवादी का वैचारिक रूप अभिव्यक्त हुआ है । जैनेन्द्र जी की मान्यता है कि अहं के विसर्जन से ही सत्य का दर्शन संभव है । उसके लिए आत्मपीड़न आवश्यक है । सन् १९३४ के बाद आतंकवादी क्रांतिकारी दल का विघटन आरंभ हो गया था । क्योंकि समाजवादी चेतना राष्ट्र में व्याप्त हो गयी थी । 'सुखदा' का पात्र हरिश के दलभंग में तत्युगीन चेतना की स्पष्ट छाप है । 'सुखदा' गांधीवाद से उतना प्रभावित उपन्यास नहीं है कि जितना समाजवादी कॉंग्रेसी चेतना से अनुप्राणित है ।

'विवर्त' (१९५३) की कथा यद्यपि क्रांतिकारी घटनाओं के ताने–बाने में बुनी हुई है । परंतु उपन्यास का अंत गांधीवादी है । जिसमें जितेन, जो क्रांतिकारी दल का प्रमुख सदस्य है, जितेन का मोहिनि के संपर्क में आकर हृदय परिवर्तन हो जाता है । पुलिस के आगे उसका आत्मसर्पण करवाकर उपन्यासकार ने अहिंसा का मंडन और हिंसावृत्ति का खंडन किया है । उपन्यास में आतंकवादी की कार्य प्रणाली पर प्रकाश डाला गया है । अंत में यह कहना उचित होगा कि क्रांतिकारियों की घटना संयोजना में कल्पना का पुट अधिक है । जिससे उपन्यासकार जैनेन्द्रकुमार ऐतिहासिक तथ्यों की रक्षा नहीं कर पाए ।

जैनेन्द्र के 'जयवर्धन' (१९५७) के कथानक में स्पष्ट राष्ट्रीय संग्राम की घटना का अभाव है । उपन्यास में रचनाकार हिंसा और अहिंसा के चक्रवात में फँसकर रह जाता है । उपन्यास का प्रमुख पात्र जयवर्धन हिंसा का परित्याग कर अहिंसक बन जाता है । आचार्य गांधीवादी पात्र है ।

जैनेन्द्रकुमार के उपन्यासों के अध्ययन के बाद पाठक इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि कला की कसोटी पर जहाँ एक ओर व्यक्तिवादी है वहीं दूसरी और राजनीतिक चिंतन की दृष्टि से गांधीवादी उपन्यासकार भी है । व्यक्तिवाद के कारण ही उपन्यासों में क्रांतिकारिता को स्थान मिला है । उपन्यास के कथानक का जहाँ तक प्रश्न है । उसमें अभिव्यंजित कथ्य का स्वरूप कुछ एसा लगता है जैसे मानो किसी खदरधारी गांधीवादी व्यक्ति ने लाल टाई गले में बाँध ली है ।

आचार्य चतुरसेन ने 'आत्मदाह' के उपरांत राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम की पृष्ठभूमि में धर्मपुत्र की रचना की है । 'धर्मपुत्र' गांधीवादी राजनीति का वाहक है । उपन्यासकार ने गांधीजी के हिन्दू–मुस्लिम एकता के स्वप्न को इसमें साकार किया है । धर्मपुत्र का कथानक १९३५ से लेकर सू १९४७ तक की घटनाओं को अपने में लिए हुए है । सांप्रदायिक एकता के अतिरिक्त चतुरसेन ने अगस्तक्रांति, आजाद हिन्द सेना की गतिविधियों का भी अंकन उपन्यास में किया है ।

'निशिकान्त' (१९५५) की कथा में विष्णुप्रभाकर ने सत्याग्रह आंदोलनों को उपन्यास का रूप दिया है । उपन्यास की कथावस्तु 'असहयोग आंदोलन' से प्रारंभ होकर 'व्यक्तिगतसत्याग्रह' में समाप्त होती है विष्णुप्रभाकर स्वयं भी इसे राजनीतिक उपन्यास मानते हैं जिसमें एक ओर व्यक्ति है दूसरी ओर समाज । दोनों के संघर्ष में व्यक्तिवाद की विजय होती है ।

"इसमें एक ऐसे युवक की कहानी है जो चाहता तो है देश की सेवा करना परंतु उसे करनी पड़ती है विदेश सरकार की सेवा ।"[२०]

निशिकान्त के माध्यम से उपन्यासकार ने हिन्दू–मुस्लिम समस्या, गांधीजी के अछूतोद्धार आंदोलन आदि समस्याओं पर भी प्रकाश डाला है ।

'बलि का बकरा' (१९५३) में भारत छोड़ो आंदोलन, काँग्रेस के सत्याग्रह को कथानक का मुख्य विषय बनाया गया है । उपन्यास का नायक हजारीलाल

गांधीजी की वाणी को वेदवाक्य मानकर चलता है । काँग्रेसी सत्याग्रह में हमेशा भाग लेकर जेल की तीर्थ यात्रा करता है सब कुछ खोकर अगस्त–क्रांति में भाग लेकर नौकरशाही को उखाडने के लिए क्रांतिकारी दल में चला जाता है । ज्यों–ज्यों अगस्तक्रांति की ज्वाला शांत होने लगती है बापू की सलाह पर वह आत्मसमर्पण कर देता है । इस उपन्यास में मंथननाथगुप्त गांधी आंदोलन की अनदेखी नहीं कर पाए है । यद्यपि स्वयं क्रांतिकारी रहे हैं ।

✰ समाजवादी उपन्यास

'गोदान' के प्रकाशन से पूर्ण तथा सविनय अवज्ञा आंदोलन की वापसी के बाद १९३५ में ब्रिटिश सरकार ने 'गवर्नमेन्ट ओफ इंडिया एक्ट' के अंतर्गत प्रांतीय विधान सभाओं के लिए चुनावों की व्यवस्था की थी । सविनय अवज्ञा आंदोलन गांधी–इर्विन समझौते की भूल–भुलैया में चक्कर खाकर रह गया था । असहयोग आंदोलन की वापसी की भाँति देश में गंभीर प्रतिक्रिया हुई । गांधीजी ने राजनीति से सन्यास की घोषणा कर दी थी । उतर भारत में सशक्त कृषक आंदोलन चला था । परंतु फिर भी भारतीय किसान की दशा में विशेष वांछित परिवर्तन नहीं आया । चंपारन–सत्याग्रह, खेडा–सत्याग्रह, बारड़ोली सत्याग्रह तथा लगानबंदी सत्याग्रह के बाद भी किसान शोषण की चक्की में निरंतर पिस रहा था । प्रेमचंद जिन्होंने किसान जिन्होंने किसान के हाल की मूठ देखी थी, बैल की चाल परखी थी, उसको एक निराशा और विषाद की दशा में डाल दिया था । 'गोदान' (१९३६) के माध्यम से प्रेमचंद ने भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था, कृषकों की शोचनीय दशा, सामंतवादी शोषण आदि का चित्रण कर भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को नया रूप देने का प्रयत्न किया है क्योंकि प्रगतिवाद के प्रति उनकी आस्था दृढ़ हो रही थी ।

'गोदान' में राजनीतिक और राजभक्तिपरक लोगों की मनःस्थिति का भी अंकन है । रायसाहब, खन्ना साहब, मिस मालती युगीन पूंजीवादी मनोवृत्ति के

पात्र है । प्रान्तीय विधान सभाओं के चुनावों की हलचल उपन्यास में है । शक्कर मिल के मजदूरों का आंदोलन तत्कालीन समाजवादी विचारों के प्रभाव की ओर संकेत करता है ।

सन् १९३४ में भारतीय समाजवादी दल की स्थापना हो गई थी । प्रेमचंद पर भी समाजवाद का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक तथा क्योंकि वे प्रगतिशील लेखक थे । प्रगतिशील लेखक संघ के मान्य सदस्य ही नहीं सभापति भी थे । इसलिए कुछ विद्वान गोदान की समाजवादी चिंतन से प्रभावित कृति मानते हैं । संभव है उनकी उक्त मान्यता में कुछ तथ्य हो क्योंकि यदि प्रेमचंद गांधीवादी हो सकते है तो समाजवादी क्यों नहीं हो सकते ? 'प्रेमाश्रम' से लेकर कर्मभूमि तक उन्होंने अपने को किसी न किसी रूप में भारतीय राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन से संबद्ध किया है । सन् १९३४ के बाद का कालखंड राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन से या राष्ट्री मुक्ति संग्राम के परिप्रेक्ष्य में गंभीर निराशा जनक बिन्दु पर जाकर ठहर गया था निराश काँग्रेसी समाजवादी बनते जा रहे थे गांधीजी के काँग्रेस से त्यागपत्र न दिये जाने के लिए दौडधूप चल रही थी । ऐसी परिस्थिति मेंक्या एक जागरूक लेखक समाजवादी नहीं हो सकता ? जो लोग 'गोदान' को समाजवादी रचना नहीं मानते वे लोग 'समाजवाद और साम्यवाद' में अंतर समझ ने का संभवतः प्रयत्न नहीं करते निश्चय ही 'गोदान' की रचना का कारण समाजवादी चेतना का युगीन प्रभाव है ।

'मंगलसुत्र' में यह चिंतन और स्पष्ट हो जाता है संतकुमार पूंजीवाद का विरोध करता है । उसका कहना है कि –

"एक गरीब आदमी किसी खेत से बाले नोंचकर खा लेता है कानून उसे सजा देता है । दूसरा अमीर आदमी दिन–दहाडे दूसरों को लूटता है, उसे सन्मान मिलता है यही है इश्वर का रचा हुआ संसार ।"[२१]

अतः इन उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमचंद युगानुकूल अपने को परिवर्तित करते हुए चले थे । राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन की यथार्थवादी ध्वनि पहचान कर वह साहित्यिक आंदोलन कर जन–जन के मन को जान रहे थे ।

महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन जीने के लिए (१९४०) रचना में समाजवादी तथा साम्यवादी दोनों ही जीवन दर्शनों को पूर्णतः उभारा है । जीन के लिए में रुस जापान युद्ध में जापान के विजय से उत्पन्न भारतीय राष्ट्रीयता का भाव, बंग–भंग, क्रांतिकारी आंदोलन, गरम और नरमदिल का लखनऊ ऐक्ट, गांधीवादी आंदोलन की असफलता, नमक सत्याग्रह पर अनास्था, कृषक मजदूर आंदोलन की आशावादिता को उपन्यास का कथानक बनाया गया है । उपन्यासकार ने सन् १९०५ से लेकर १९४० तक की भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की विभिन्न गतिविधियों का अंकन साम्यवादी दर्शन से किया है ।

राहुल जी के समाजवादी विचारों का पूर्ण विकास 'भागो नहीं बदलो' (१९४४) में हुआ है । इसमें तीन या चार पात्रों के माध्यम से साम्यवाद की सुन्दर व्याख्या की गई है । साथ ही साथ स्वातंत्र्य संघर्ष की अनेक घटनाओं का भी चित्रण हुआ है । दुखराम की जिज्ञासा का समाधान 'भैया' नामक पात्र द्वारा कराया गया है ।

यशपाल साम्यवादी उपन्यासकार है । राहुल के बाद समाजवादी परंपरा को उन्होंने राष्ट्रीय स्वातंत्र्य संघर्ष के साथ आगे बढ़ाया जिससे भारतीय सर्वहारा वर्ग अपने जनतांत्रिक अधिकारों के लिए क्रांति की लाल पताका फहरा सके । यशपाल के १९४८ तक साम्यवादी दृष्टिकोण से लिख गए उपन्यास 'दादा कामरेड', देशद्रोही और पार्टी कामरेड है ।

'दादा कामरेड' (१९४१), का उद्देश्य स्वयं लेखक ने व्यक्त करते हुए लिखा है कि –

"संसार में जो आज अनेक वादों पूंजीवाद, नाजीवाद, समाजवाद, गांधीवाद का संघर्ष चल रहा है, उस सब की नींव में परिस्थितियों, व्यवस्था और धारणाओं में सामंजस्य ढूँढने का प्रयत्न है ।"[२२]

यह यशपाल का प्रथम राजनीतिक उपन्यास है जिसमें आतंकवादी क्रांतिकारियों के जीवन आदर्शों को वाणी प्रदान की गई है । मजदूर आंदोलन को महत्त्व प्रदान किया है । गांधीवाद की आलोचना और साम्यवाद की स्थापना करना लेखक का मूल मंतव्य है । नारी की भूमिका को पूंजीवादी कामुक वृत्ति से न चित्रित कर समाजवादी स्वच्छंद भाव से उसकी चेतना को जगाया है । नारी मात्र भोग्या नहीं वह सहभोग्या भी है । 'दादा' के रूप में यशपाल ने चंद्रशेखर आजाद को और हरिश के रूप में स्वयं को चुना है । श्रीमती यशपाल संभवतः शैल की छाया है । स्वयं यशपाल ने 'सिंहावलोकन' में अपने संस्मरणों में कहा है कि –

"आजाद और उनके मध्य श्रीमती यशपाल को लेकर मतभेद उत्पन्न हो गये थे । यशपाल को भी हरिश की तरह शूट कर देने का आदेश 'आजाद' ने दे दिया था यह सब चित्रण निश्चय ही दादा कामरेड में यशपाल का अपना है । घटनाओं में बहुत ही साम्य है ।"[२३] मजदूर हड़ताल, बम–निर्माण की विधि, डकैती आदि क्रांतिकारी कार्यों का उल्लेख 'दादा कामरेड' में वर्णित है ।

'देशद्रोही' (१९४३) भी साम्यवादी क्रांतिकारी विचारधारा के विकास का पूर्ण राजनीतिक द्वितीय उपन्यास है । सन् १९३४ का कॉंग्रेस विभाजन, समाजवादी दल की स्थापना, आर्थिक कार्यक्रम पर बल दिये जाने के साथ–साथ क्रांतिकारियों का बम बनाना, उसका पकड़ा जाना यथा शिवनाथ का गिरफ्तार होना आदि प्रगतिशील भावों का वर्णन यशपाल ने किया है । साम्यवाद की रीढ़ मजदूर आंदोलन का चित्रण भी देशद्रोही में है । ब्रिटिश सरकार द्वारा साम्यवादी पार्टी पर प्रतिबंध लगायाजाना, अगस्तक्रांति में फासिस्ट विरोधी नीति के साथ–साथ समाजवादी की व्याख्या भी उपन्यास में की गई है । साम्यवादियों

प्रति जो सामयिक घृणा पूंजीवादी वर्ग में विद्यमान थी उसी का उपहार है देश द्रोही ।

"कथा के मूल स्त्रोत काँग्रेस की गांधीवादी नीति तथा कम्युनिस्ट पार्टी की नीति उसके सिद्धांत है ।"[२४]

'पार्टिकामरेड' (१९४६) के माध्यम से यशपाल कम्युनिस्ट पार्टी का दलीय अनुशासन–नियम, सिद्धांत उनके कार्यकलाप, राजनीतिकदर्शन, जीवन पद्धति आदि का सामान्यजन को दिग्दर्शन कराते हैं । भावरिया पूंजीपति मनोवृत्ति का पात्र है परंतु कामरेड गीता के संपर्क में आकर वह नाविक सैनिक विद्रोह में सम्मिलित हो जाता है । इसके अतिरिक्त कम्युनिस्टों पर 'गदारी' का लांछन द्वितीय विश्वयुद्ध में अंग्रेजों की मदद करने के कारण लगाए गए थे उसका उत्तर दिया गया है । उन कारणों पर प्रकाश डाला गया है जिन कारणों से भारतीय कम्युनिस्ट अंग्रेजों का साथ दे रहे थे । यशपाल का प्रस्तुत उपन्यास इस दृष्टि से कांग्रेस के विरुद्ध राजनीतिक मोर्चा है स्वयं उपन्यासकार के शब्दों में –

"पार्टिकामरेड की कहानी आज की ही कहानी है पाठक के चारों ओर मौजूद परिस्थितियों की कहानी ।"[२५]

'अज्ञेय' के 'शेखरः एर जीवनी' (१९४०–४४) का रचनाकाल सन् १९४० से १९४४ तक का है । पहला भाग १९४० ई. में तथा दूसरा भाग ठीक चार वर्ष बाद प्रकाशित हुआ । राष्ट्रीय संग्राम के युग में हिंसा और अहिंसा को लेकर अपने अपने तरीके से राष्ट्र को विदेशी शासन से मुक्त कराने का सतत प्रयत्न हो रहा था । यही कारण है कि 'शेखरः एक जीवनी' के पात्र शेखर के पिता, शेखर, बाबा मदनसिंह और शशि, हिंसा और अहिंसा पर अपना निजी दृष्टिकोण रखते हैं । उपन्यास का कथानक रचनाकाल के आसपास का ही है भारत की स्वाधीनता के लिए एक ओर गांधीवादी और दूसरी ओर विप्लववादी दोनों ही सचेष्ट थे । प्रारंभ में शेखर गांधीवादी है । बचपन में कर्णरंध्रो पर पड़े 'गांधी का बोलबाला' । दुश्मन का मुंहकाला नारों का विशेष

प्रभाव पड़ता है । गांधीजी के असहयोग आंदोलन से अविभूत होकर विदेशी वस्त्रों की होली जलाता है । स्वभाषा स्वदेशी का दृढ़ आस्थावान है । नौकरशाही से उसे चिढ़ है । बापू की तरह हरिजनोद्धार का कार्य करता है । रात्रि–पाठशाला चलाता है । नारी के प्रति विशेष सम्मान का भाव उसमें है । कालान्तर में वह क्रांतिकारी आंदोलन का सदस्य बन जाता है जेल जाता है । महान क्रांतिकारी 'बिस्मिल' की भाँति शेर भी गुनगुनाता है । जहाँ तक अज्ञेय के व्यक्तित्व का प्रश्न है वह क्रांतिकारी आंदोलन के सक्रिय सदस्य रहे है । क्रांतिकारी आंदोलन के सिलसिले में फरार हुए और पकड़े गए चार वर्ष जेल में रहने के साथ–साथ नजरबंद भी रहे । कृषक आंदोलन में सक्रिय भाग लिया ।"[२६]

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' के उपन्यासों में महापंडित राहुल तथा यशपाल के समाजवादी दर्शन का विकास पाया जाता है उपन्यासों में राष्ट्रीय आंदोलन को दृष्टि में रखकर समाजवादी, भाव की व्याख्या करना ही 'अंचल' के उपन्यासों का उद्देश्य है 'चढ़तीधूप', 'नई इमारत' और 'उल्का' की कथावस्तु में प्रत्येक दृष्टिकोण से समाजवाद की स्थापना का प्रयत्न हुआ है ।

स्वाधीनता प्राप्ति के लगभग देढ़ दशाब्दि तक भी साहित्यकार के मानस में द्वितीय विश्वयुद्धोतर भारतीय राजनीतिक घटनाएँ मनन और चिंतन का विषय बनती रही । क्योंकि स्वाधीनता की प्राप्ति में विषाद के विकट रूप ने हर्षोल्लास को घर दबोचा था सांप्रदायिकता ने मानवीयता को पाशविकता की ज्वाला में भस्मीभूत कर दिया था । पिटा हुआ मनुष्य–समुदाय, उखड़ा हुआ परिवार देश–विभाजन की पीड़ा से परेशान था । शरणार्थी केम्पों की बाढ़, कश्मीर पर पाकिस्तान का आक्रमण, पाकिस्तान का पावना, बापू का अनशन, उनकी हत्या और कँग्रेस के चुनाव, गांधीवाद की आलोचना आदि अनेक अन्य राजनीतिक प्रश्नों को यशपाल ने 'झूठा सच' (१९५८–६०) में अपनी कल्पना के माध्यम से औपन्यासिक रूप में गढ़ा है । भारत विभाजन उपन्यास का

केन्द्रबिंदु है । भारत विभाजन के साथ सांप्रदायिक समस्या को भी उतना ही महत्त्व दिया गया है । एक बात यशपाल के उपन्यासों के बारे में महत्त्वपूर्ण है कि –

"सामान्यतः पूरे उपन्यास में राजनीतिक प्रश्नों पर यशपाल का मतामत मौटे तौर पर कम्युनिस्ट पार्टी के विचार का समर्थक है ।"[२७]

यशपाल के बाद स्वातंत्र्य संघर्ष की घटनाओं को उपन्यास की कथावस्तु के रूप में ग्रहण करने वाले उपन्यासकार मन्थननाथ गुप्त है गुप्त जी के सांठोत्तरी उपन्यासों 'सागर संग्राम', सुधार गृह युद्ध आदि का विषय भी राष्ट्रीय संग्राम की घटनाए हैं ।

डॉ. रांगेय राघव ने साम्यवाद की यथार्थवादी तस्वीर प्रस्तुत करने के लिए सीधा सादा रास्ता (१९५१) में नई राह का निर्माण किया है । इस तथ्य को स्वयं उपन्यासकार ने स्वीकारा है । इस उपन्यास के राजनीतिक स्वरूप के बारे में अधिक कुछ न कहकर केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि इसमें टेढ़े–मेढ़े रास्ते उपन्यास का उतर देने का पूर्वा प्रयास रांगेय राघव ने किया है ।

भैरवप्रसाद गुप्त द्वारा रचित 'मशाल' (१९५१) साम्यवादी विचारों से पूर्ण राजनीतिक उपन्यास है । उपन्यास का कथानक द्वितीय विश्वयुद्ध से लेकर 'आजाद हिन्द फौज' तक की घटनाओं में फैला हुआ है । उपन्यास का पात्र नरेश द्वितीय विश्वयुद्ध में भरती होता है । परंतु परिवर्तित राजनीतिक परिस्थितियों के कारण यह 'आजाद हिन्द सेना' का सिपाही बनकर वापस अपने गाँव जाता है । नोकरशाही के दमनचक्र के कारण उसे उजड़ा हुआ गाँव, टूटा हुआ परिवार वहाँ मिलता है । वह पुनः मजदूर आंदोलन का नेतृत्व करता है । पूंजीवाद के विरुद्ध सर्वहारा वर्ग को वह नई चेतना साम्यवादी विचारों के द्वारा प्रदान करता है । उपन्यासकार ने उपन्यास में वर्णित मजदूर आंदोलन को कानपुर के मजदूर आंदोलन से किया है । भूमिका में यह तथ्य उसने स्वयं

स्वीकार किया है । भारतीय मजदूर वर्ग में चेतना जगाना ही उपन्यास का एकमात्र उद्देश्य है ।

भैरवप्रसाद गुप्त ने 'सती मैया का चौरा' (१९५७) में सन् १९४२ की क्रांति के यथार्थवादी चित्रों को उभारा है । साम्यवाद की व्याख्या व प्रचार करना उपन्यासकार का उद्देश्य है । उपन्यास में मुस्लिम लीग, कम्युनिस्ट पार्टि, जनसंध पार्टियों के राजनीतिक दर्शन का खंडन और मंडन किया गया है । सांप्रदायिकता की समस्या, भारत का विभाजन और उसके कारणों पर प्रकाश डाला गया है । उपन्यास में परंपरागत रूढ़िवाद पूंजीवाद और प्रगतीशील तत्त्वों के आपसी संघर्षो की संयोजना का सफल प्रयत्न किया है ।

अमृतराय के 'बीज' (१९५२) में युद्धकालीन १९४२ के बाद की राजनीतिक, सामाजिक गतिविधि का चित्रण है । परंतु उपन्यासों के बारे में इतना ही कहना पर्यात नहीं है । क्योंकि उपन्यासकार ने द्वितीय महासमर के पूर्व गांधीवादी आंदोलन यथा व्यक्तिगत सत्याग्रह को उपन्यास में चित्रित किया है भारत छोडो आंदोलन की सन् १९४२ की एतिहासिक ध्वनि के साथ–साथ आजाद हिन्द सेना, आतंकवादी 'स्वराज' तो मिला पर जनसामान्य को भी कुछ मिला या नहीं ? स्वराज्य के बारे में साधारण जनता का भाव था वह कहाँ तक पूरा हुआ है । इस तथ्य का निरूपण अमृतराय ने 'बीज' के उत्तर भाग में करने का प्रयत्न किया है । गांधीवाद और आतंकवाद का विरोध करके साम्यवाद को प्रश्रय दिया गया है ।

'बलचनमा' (१९५२) उपन्यास की रचना के द्वारा नागार्जुन ने भारतीय सामंतवाद का पर्दाफाश करके ग्रामीण कृषक के यथार्थवादी जीवन पर प्रकाश डाला है । उपन्यास की कथावस्तु सन् १९३७ के पूर्व की है । जमीदारों का शोषण उनके अत्याचारों की करुण कहानी 'गोदान' के बाद 'बलचनमा' में मुखर हुई है । गांधीजी के नमक सत्याग्रह, सविनय अवज्ञा आंदोलन तथा कृषक आंदोलन ही इस उपन्यास का मुख्य विषय है । राष्ट्रीय स्वातंत्र्य संघर्ष की

घटनाएँ जीवंत होकर उपन्यास में उभरी हैं । 'बलचनमा' एक राजनीतिक उपन्यास है । उपन्यासकार ने आंदोलन का नेतृत्व सोश्यलिस्ट पार्टि के हाथों में सौंपा है जो उपन्यासकार के व्यापक परंपरामुक्त दृष्टिकोण का सूचक है ।

नागार्जुन का उपन्यास 'बाबा बटेसरनाथ' साम्यवादी सिद्धांतों से प्रभावित रचना है । 'बलचनमा', 'रतिनाथ की चाची' आदि अन्य रचनाओं में समाजवादी चेतना विद्यमान है । बाबा बटेसरनाथ पुराने स्मरणों के सहारे एक विदेशी जैकसन को आंग्ल-साम्राज्य की शोषक-वृत्ति, सामंतों की निरुकंशता, भारतीय स्वाधीनता संघर्ष में रत अनेक राजनीतिक दलों के साथ-साथ कांग्रेस आंदोलन के इतिहास को कथा के रूप में सुनाता है । कांग्रेस आंदोलन में गांधीजी के असहयोग, सविनय अवज्ञा आंदोलन तथा व्यक्तिगत सत्याग्रह की राजनीतिक घटनाओं का विशेष रूप से किया गया है । इन घटनाओं की पृष्ठभूमि में नागार्जुन ने 'गांधीवाद' की आलोचना और 'साम्यवाद' के प्रति आस्था प्रकट की है ।

'रंगमंच' (१९६०) की कथा का आधार मन्मथनाथ गुप्त ने बापू के नमक, सत्याग्रह आंदोलन को बनाया है । जिसमें 'डांडी यात्रा' से लेकर 'कराची कँग्रेस' १९३१ की घटनाओं का उपन्यास के रूप में लिया गया है । आतंकवादी क्रांतिकारी दल के समाजवादी दर्शन के सांकेतिक चित्र भी उपन्यास में उभारे गए है । प्रेमचंद नामक पात्र आतंकवाद से समाजवाद की ओर अग्रसर होता है । रुस की बोल्सेविक पार्टी का प्रभाव उस पर है । उपन्यास में घरसना नमक गोदाम पर हमले की योजना गांधीजी की गिरफतारी, नमक बनाकर कानून तोड़ना, 'गांधी इर्विन पैक्ट' मुख्य रूप से लिए गए है । चिटगांव की क्रांतिकारी घटना, नौकरशाही राजभक्तो, की दमनकारी मनोवृत्ति की चित्रण को प्रमुखता दी गई है ।

✰ क्रांतिकारी एवं आतंकवादी उपन्यास

ब्रिटिश साम्राज्य क्रांतिकारी विप्लववादियों के गुप्त आंदोलन से बड़ा ही बैचेन था । बंगभंग के पूर्व से ही विप्लववादी नवयुवक अंग्रेजी नौकरशाही का विरोध हिंसा के द्वारा करने लगे थे । गुप्त रूप से विदेशियों से इनका संपर्क होने लगा था हथियार किसी न किसी रूप में भारत में आने लगे थे । भारतीय नवयुवक अंग्रेज शोषकों के दिल में एक दहशत उत्पन्न करना चाहते थे । जिससे अंग्रेज भारत में अपना शोषण बन्द कर सकें । इसके लिए समय–समय पर सशस्त्र क्रांति का उपक्रम होता रहा है । दुर्गाप्रसाद खत्री ने आतंकवाद की नीतियों, उनके गुप्त संगठनों और उनके विविध कार्यकलापों को प्रकारांत से जासूसी कथानक का आवरण देकर अनेक उपन्यासों की रचना की है । जिनमें आतंकवाद के अनेक कार्य स्पष्ट रूप से उभरकर आये है खत्रीजी के 'प्रतिशोध, सुफेदशैतान, रक्तमंडल का वर्ण्य विषय भारतीय सशस्त्र क्रांतिकारियों की कहानी है । 'लालपंजा' में कोई स्पष्ट राष्ट्रीय संघर्ष की घटना नहीं है ।

प्रतिशोध (दुर्गाप्रसाद खत्री १९२५) के कथानक का चयन खत्री जी ने भारतीय आतंकवाद की गतिविधियों से किया है । उनके विभिन्न कार्यों का उनके गुप्त आंदोलन का चित्रण यत्र–तत्र मिलता है । ब्रिटिश साम्राज्य की 'फूटडालो राज्य करो' की नीति का भी वर्णन है । कहीं कहीं तो राजनीतिक दावपेचों को उपन्यासकार ने यथार्थ रूप में लिया है ।

'मृत्युकिरण' रक्त मंडल (१९२६) का कथ्य 'प्रतिशोध' से भिन्न नहीं है । उपन्यासों की जासूसी परंपरा को आतंकवादी भावभूमि पर अग्रसरित किया गया है । नगेन्द्रसिंह राष्ट्रप्रेम के लिए दल के सदस्यों को जागरूक रखना बम विस्फोट करना, अंग्रेज अधिकारियों की हत्या करना आदि अनेक आतंकवादी कार्यो का चित्रण खत्री जी ने किया है । ब्रिटिश शासन के प्रेस–अधिनियम के शिकंजे से बचने के लिए उपन्यास में नेपाल तथा उत्तराखण्ड की भूमि में

आतंकवादी आंदोलन दिखाया गया है । एक अन्य परिवर्तन भी खत्री जी ने किया है । वह यह है कि आतंकवादी रेलों, पुलों सरकारी अफसरों को भूमि पर हाथ से बम फेंककर मारा करते थे परंतु 'मृत्युकिरण या रक्तमंडल' के सदस्य हवाई जहाज से बम गिराते है ।

रक्त मंडल में क्रांतिकारियों की भाँति बम का बनाना खजाना लुटना आदि अनेक कार्य 'रक्त मंडल' के पात्र करते हैं । भारत के लिए सुंग राज्य, शिमला के लिए मानिकपुर आदि परिवर्तित नामो का प्रयोग किया गया है । खजाना लूटने की घटना 'काकोरी ट्रेन षड़यंत्र' से लिया गया लगता है ।

सुफेदशैतान (१६३४) नितांत काल्पनिक है परंतु कल्पना के रंग में रंगा हुआ होने के उपरांत भी यह उपर्युक्त उपन्यासों की परंपरा से जुड़ा हुआ है । जिसमें षड़यंत्रकारी आंदोलनों का सजीव चित्रण है । भारतीय क्रांतिकारी अपने कैदी साथी को जेल से छुडाने का प्रायः प्रयत्न किया करते थे । भगतसिंह आदि को मुक्त करा लेने का व्यर्थ प्रयास भी चन्द्रशेखर आदि ने किया था । उसी प्रकार छायाभासी 'सुफेदशैतान' में अजीतसिंह को फांसी घर से मुक्त कराने के प्रसंग से मिलता है । यहाँ आतंकवादी सफल हो जाते है । देश–प्रेम तथा स्वाधीनता की भावना जो क्रांतिकरियों में थी उसको अनेक स्थलों पर पात्रों के कथोपकथनों द्वारा व्यक्त किया गया है । इस उपन्यास में क्रांतिकारी भारत की ही मुक्ति का प्रयास नहीं करते अपितु वह संपूर्ण एशिया को स्वतंत्र देखना चाहते है ।

'निर्वासित' (१६४६) की कथा का आयाम द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व से आरंभ होकर कांग्रेसी मंत्री मंडलो के निर्माण तक फैला हुआ है । डॉ. प्रतापनारायण टंडन ने इस उपन्यास की रचना के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि –

"श्री इलाचंद जोशी ने एक विशेष दृष्टिकोण से इस प्रश्न पर विचार करते हुए कि क्या गांधीवाद इस देश को स्वतंत्र करा सकता है, इसकी विवेचना की है।"[२८]

सन्यासी में तत्कालीन समाज की राजनीतिक गतिविधियों पर प्रकाश डाला गया है। राजनीतिक असंतोष के कारण हिंसावाद और अहिंसावाद की रस्साकशी का मनोविश्लेषणात्मक चित्रण भी उपन्यास में है। नीलिमा तथा प्रतिभा भारतीय नारी जागरण की प्रतीक है। महीप राष्ट्रवादी है देश–प्रेम और नौकरशाही के दमन के कारण वह अखिल भारतीय सिविल सर्विस की परिक्षा का बहिष्कार करता है। साम्यवाद का विश्लेषण करते हुए गांधीवाद की ओर उपन्यासकार अग्रसर होता है। शारदा गांधीवाद की प्रसंशक है। महिप क्रांतिकारी हो जाता है। प्रतिभा भी महिप के दल की सदस्या बन जाती है। परंतु महिप दल छोड़कर अहिंसावादी बन जाता है। लक्ष्मीनारायण शोषण वर्ग का प्रतिनिधि पात्र है।

मन्मथनाथ गुप्त राजनीतिक उपन्यासकार हैं। वह स्वयं भी भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में क्रांतिकारी दल के सक्रिय सदस्य रहे है। 'काकोरी' के क्रांतिकारियों के साथी थे।

'जययात्रा' (१९३८) की कथावस्तु सविनय अवज्ञा आंदोलन के युग में घटित हिन्दू–मुस्लिम दंगों पर आधारित है। भगतसिंह आदि को फांसी से न छुडा पाने के कारण कानपुर में सांप्रदायिक दंगे हुए थे। स्वर्गीय विद्यार्थी जी को अपने प्राण गँवाने पड़े थे इन दंगो में नारियों पर अमानुषिक अत्याचार किए गए थे। 'जययात्रा' में बलात्कार से उत्पन्न संतान के प्रति नारी–मनःस्थिति का व्यंग्यपूर्ण चित्रण है। दंगो का यथार्थ चित्रण भी उपन्यास में विद्यमान है।

जिच की रचना मन्मथनाथ गुप्त ने संवत् २००३ वि. में की थी। जिसमें उपन्यासकार ने सन् १९४२ की अगस्त क्रांति को 'जिच' का आधार

बनाया है । 'समाजवाद' और 'गांधीवाद' की व्याख्या भी उपन्यास में की गई है । अगस्त क्रांति में षड़यंत्रकारियों की क्या भूमिका थी इस पर भी प्रकाश डाला गया है । गांधीजी ने देशवासियों को 'करो और मरो' तथा अंग्रेजों भारत छोड़ो का नारा दिया था । इन सब राजनीतिक घटनाओं को 'जिच' में उठाया गया है ।

श्री गुरुदत ने 'स्वाधीनता के पथ पर' (१६४२) अग्रसर गांधीजी के असहयोग आंदोलन की विफलता के बाद की राजनीतिक दशा का चित्रण प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से किया है । आतंकवादी क्रांतिकारी दल देश में स्थापित होने लगे थे । अहिंसा वाद से प्रगतिशील व्यक्तियों का विश्वास उठ गया था सविनय अवज्ञा–आंदोलन में क्रांतिकारियों के मध्य हिंसात्मक प्रवृत्ति को लेकर संघर्ष चला था । इसी संघर्ष काल की यह कथा है ।

ब्रजेन्द्र नाथ गौड़ द्वारा रचित 'पैरोलपर' (१६४३) उपन्यास का कथानक अगस्त क्रांति की राजनीति पर आधारित है । मजदूर आंदोलन, उनका बढ़ता हुआ असंतोष और सशस्त्रक्रांति द्वारा स्वाधीन भारत की लालसा का चित्रण इस उपन्यास का मुख्य विषय है । क्रांतिकारी आंदोलन के समर्थन के लिए गांधीवाद की आलोचना तथा क्रांतिवाद का समर्थन किया गया है ।

'पैरोलपर' की रचना का उद्देश्य इन शब्दों में और भी स्पष्ट हो जाता है ।

"आजादी के सपने देखने वाले और आजादी की आशा लेकर चलनेवाले परतंत्र देश के यात्री को जीवन भर विश्राम नहीं है । उसके सामने खत्म न होने वाला रास्ता पड़ा है – सिर्फ खत्म न होने वाला ।"[२६]

वह रास्ता है क्रांति का ।

'अमरबेली' (१६५३) में वृंदावनलाल वर्मा जी ने गांधीवादी सत्याग्रह को आधार बनाकर मरणासन्न सामन्तवादी प्रथा और भूपतियों के विरुद्ध

कृषक–आंदोलन की सृष्टि की है । उपन्यास में गांधीवाद पर व्यंग्य भी है । और क्रांतिकारी आंदोलन की प्रशस्ति भी है ।

उदयशंकर भट्ट विरचित उपन्यास 'शेष–अशेष' (१९६०) का विषय भी क्रांतिकारी आंदोलन की पृष्ठभूमि में निर्वाचित किया गया है जिसमे देश की स्वाधीनता के लिए साधुओं के भेष में क्रांतिकारी आंदोलन की संयोजना है । देशभक्त ब्रिटिश सरकार को उखाड़ ने के लिए साधु भेष में ऋषिकेश की सुरम्य पर्वत उपत्य का में स्वामी हरिहरानंद के नेतृत्व में योजना बनाते है । चिदम्बर अरूपानंद आदि स्त्री और पुरुष साधुओं की एकता के माध्यम से आग्ल प्रशासन की समाप्ति का प्रचार करते है । लघुपुस्तिकाओं और कथा–प्रवचनों को अपना हथियार बनाते है । जिससे जनता जाग्रत हो परंतु अंत में आंदोलन ब्रिटिश–दमनचक्र से समाप्त हो जाता है और चिदम्बर हँसते–हँसते देश की स्वाधीनता के लिए फाँसी के तख्ते पर अपने प्राणों का विसर्जन कर देता है ।

✫ संघर्ष की अन्य घटनाओं से प्रभावित उपन्यास

'कल्याणी' (१९३९) में प्रगतिशीलता है । देशोद्धार एवं राष्ट्र कल्याण की भावना है । इस उपन्यास की कथा सन् १९३६ के आसपास के प्रांतीय कॉंग्रेस मंत्रिमंडल के वातावरण को लेकर चलती है । डॉ. असरानी 'तपोवन' की स्थापना करते है, जिसकी उद्घाटन प्रांतीय प्रिमियर द्वारा होता है ।

वृंदावनलाल वर्मा ऐतिहासिक उपन्यासकार है । उनके उपन्यासों में भारतीय इतिहास का गौरवगान प्रमुखता से हुआ है । 'प्रत्यागत' (१९२७) में सांप्रदायिक समस्या प्रमुख है । असहयोग आंदोलन के युग में दक्षिण भारत में जो 'मोल्ला' सांप्रदायिक घटना घटी थी उसको उपन्यासकार ने लिया है । 'खिलाफत आंदोलन क्यों' का विवेचन इस उपन्यास के द्वारा किया गया है ।

प्रतापनारायण श्रीवास्तव द्वारा लिखित 'विदा' (१९२८) में स्वदेशीभिमान और भारतीयता के भाव को विशेष महत्त्व दिया गया है गांधीजी के स्वदेशी भाव और विदेशी के बहिष्कार की ओर लक्ष्य परोक्ष रूप से अभिव्यंजित करना उपन्यासकार का लक्ष्य है । भारतीय वस्तुओं की चर्चा विदेशियों के मुखारविंद से उपन्यास में जगह–जगह कराई गई है ।

'बयालिस' (१९४८) का कथानक अगस्त क्रांति की विप्लवी ज्वाला से ओतप्रोत है । इसके अतिरिक्त समाजवादी दर्शन और युगीन सांप्रदायिक एकता का प्रतिपादन भी उपन्यासकार का उद्देश्य है । अगस्त आंदोलन के विविध पहलुओं का अंकन अत्यंत मार्मिकता के साथ किया गया है । 'भारत छोडो आंदोलन' हिन्दू–मुस्लिम झगड़े देशी रजवाडो का अत्याचार तथा क्रांतिकारी आंदोलन की गतिविधियों पर प्रकाश डाला गया है । रियासत के विरुद्ध रमईपुर का सत्याग्रह राष्ट्रीय आंदोलन से प्रेरित है । सांप्रदायिक एकता में गांधीवादी विचारों का प्रभाव है । सर भगवानसिंह आग्ल प्रशासन के दमनकारी नौकरशाही के जीते–जागते पुतले हैं । निश्चय ही दिवाकर के नेतृत्व में रमईपुर ग्राम का 'भारत छोडो' आंदोलन संपूर्ण भारत के 'अंग्रेजो', 'भारत छोडो' आंदोलन का ही दूसरा रूप है ।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' आजीवन संघर्षमय साहित्यकार रहे हैं । जिसकी छाप उसकी रचनाओं में विद्यमान है । राजनीति के श्रेत्र में उन्हें गांधीजी का आदर्शवाद किंचित पसंद नहीं है वे उसे भारतीय कृषकों के लिए पूर्ण हितकर नहीं समझते थे । यही कारण है कि उनके उपन्यासों में राष्ट्रीय स्वातंत्र्य संघर्ष के कुछ अंश घटनाओं के रूप में ही मिल पाते है । उसके तीन उपन्यासों, 'अप्सरा', 'अलका' और 'कुल्लीभाट' में राजनीति अंशतः ही विद्यमान है । वह भी व्यंग्य का पुट लिए हुए है ।

'अलका' (१९३३) में कृषक आंदोलन भी प्रसंगवशात ही चित्रित है । इस आंदोलन के माध्यम से जमीदार और किसान के आपसी संघर्षों, कृषकों

का शोषण, जमींदारों का अत्याचार और लगानबंदी के साथ–साथ १९३०–३२ की गिरती हुई कीमतों के प्रसंग भी इस उपन्यास में संयोजित है ।

'कुल्लीघाट' (१९३९) 'निराला' जी का जीवनी उपन्यास है जिसमें व्यंग्य का पुट भी विद्यमान है । कुल्ली गांधीजी के सत्याग्रह आंदोलन से प्रभावित होकर अछूतोद्धार आंदोलन का सूत्रपात करता है । गांधीजी में उसकी विशेष आस्था है परंतु गांधीजी से पत्रोतर न मिलने पर उसकी आस्था डगमगाने लगती है । उपन्यासकार ने राष्ट्रीय आंदोलन की समसामयिक घटनाओं का सुन्दर चित्रण यत्र–तत्र प्रस्तुत किया है ।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने अनेक उपन्यासों की रचना की है । 'आत्मदाह' (१९३५) की कथा का ताना–बाना प्रथम विश्वयुद्ध से लेकर गांधीजी के असहयोग आंदोलन तक फैला है । 'रोलट एक्ट' के विरोध में जलियावाला बाग में जो नरसंहार डायर की गोलियों से हुआ, उसका चित्रण 'आत्मदाह' में विद्यमान है । आतंकवादी क्रांतिकारियों की विभिन्न गतिविधियाँ इस उपन्यास में हैं । राजनीतिक नेताओं को काला पानी की जो सजा दी जाती थी उस सजा से उत्पन्न विशेष मनोभावों की भावात्मक अभिव्यक्ति के पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत किए गए हैं । राजनीति की घटनाओं का संस्पर्श मनोहारी है ।

श्री इलाचंद्र जोशी ने 'घृणामयी' (१९२९) को नवीन रूपाकार प्रदान कर के लज्जा के रूप में पुनः प्रकाशित किया । उपन्यास सामाजिक अधिक है राजनीतिक कम । परंतु उपन्यास में नारी जागरण को विशेष महत्त्व दिया गया है ।

जोशी जी ने 'मुक्तिपथ' १९४८ में अधिकांशतः स्वातंत्र्योतर घटनाओं को चित्रित किया है । परंतु उपन्यास की आधारशीला के लिए प्राक् स्वाधीनता युग को भी लिया गया है । जिसमें साइमन कमीशन का बहिष्कार, सविनय अवज्ञा आंदोलन, क्रांतिकारी आंदोलन आदि समस्याएँ उपन्यास के कथानक को आगे

बढ़ाती है । राजीव क्रांतिकारी दल में उसी प्रकार चला जाता है जिस प्रकार अनेक युवक स्व. लाला लाजपतराय की मृत्यु के बाद क्रांतिकारी दल में चले गए थे । शरणार्थी समस्या, जो भारत विभाजन की मृत्यु के बाद क्रांतिकारी दल में चले गए थे । शरणार्थी–समस्या, जो भारत विभाजन की देन थी, को भी उपन्यासकार ने ग्रहण किया है । 'मुक्ति–निवेश' की स्थापना के पीछे यहाँ है । राजीव पुनः हिंसात्मक आंदोलन से अहिंसात्मक आंदोलन की ओर लौट जाता है । 'मुक्तिपथ' में स्वाधीन भारत के सुनहरे भविष्य के लिए श्रम के महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है ।

गुरुदत्त के 'पथिक' (१९४३) का कथानक भारत विभाजन की समस्या पर आधारित है । देशविभाजन से हिन्दू और मुसलमानों के जन जीवन पर पड़नेवाले भाव की सृष्टि की गई है । 'पथिक' में सन् १९३६ ई. के प्रांतिय काँग्रेस के चुनावों से लेकर उसके उपरांत की राजनीतिक घटनाओं को लिया गया है ।

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' ने 'चढती धूप' (१९४५) में सविनय अवज्ञा आंदोलन के उपरांत की राजनीतिक घटनाओं को कथानक का आधार बनाया है । स्वयं उपन्यासकार ने 'चढ़ती धूप' के उद्देश्य को सपष्ट करते हुए लिखा है कि–

"मेरे उपन्यास का घटनाकाल काँग्रेस के सन् १९३२ वाले आंदोलन के बाद का और विभिन्न प्रांतों में काँग्रेस मंत्रिमंडल स्थापित होने के बीच का समय है – जब देश में जोरों के साथ समाजवादी चेतना का उदय हो रहा था ।"[३०]

इस नवीन चेतना के परिप्रेक्ष्य में नवयुवकों की नवीन पीढ़ी के युग सापेक्ष मनोभावों का अंकन ही 'चढ़ती धूप' है । इसके अतिरिक्त पूँजीवादी बुर्जुआ वर्ग अपने मनोभावों के स्वार्थों पर समाजवाद से रक्षा के लिए समाजवादियों पर चारित्रिक हननका आरोप लगाया करता था, ताकि भारत में

समाजवादी क्रांति को रोका जा सके । उसी आरोप का खंडन समाजवादी दृष्टि से 'अंचल' ने इस उपन्यास में किया हैं ।

'नई इमारत' (१९४६) की रचना के माध्यम से 'अंचल' ने अगस्त क्रांति की ज्वाला के दर्शन कराये है । भारत पाकिस्तान के निर्माण को लेकर जो सांप्रदायिकता का विषैला विष देश की राजनीति में व्याप्त हो गया था । उसका समाधान 'नई इमारत' में खोजने का प्रयास है महमूद और आरती, बलराज और शमीम के पवित्र स्नेहसूत्र हिन्दू मुस्लिम एकता रूपी माला के ही सुत्र है । द्वितीय महासमर में साम्यवादियों द्वारा अंग्रेजों के समर्थन की व्याख्या के अतिरिक्त अगस्त क्रांति में कांग्रेस आंदोलन सत्याग्रहियों की भूमिका और नौकरशाही का हृदय विदारक दमन का अंकन करना ही उपन्यासकार का अभिष्ट है । उपन्यासकार आतंकवादी क्रांतिकारी तरीकों से भारत की स्वाधीनता के समर्थक है । पर्वतपुर पर जनता का आंदोलन में विजय होकर स्वराज्य की स्थापना करवाने में यही मंतव्य परिलक्षित होता है ।

'उल्का' (१९४७) 'अंचल' का सामाजिक उपन्यास है । इसमें किसी आंदोलन विशेष का चित्रण स्पष्ट रूप में नहीं है । भारतीय नारी की आर्थिक पीड़ा की ओर संकेत अवश्य है 'अंचल' ने कालमार्क्स के वैज्ञानिक द्वंद्वात्मक भौतिकवाद की दृष्टि से पराधीनता के पाश में आबद्ध भारतीय नारी की समस्या का समाधान खोजने का प्रयत्न 'उल्का' में किया है । नारी की स्वाधीनता, उसका आर्थिक स्वावलंबन सामाजिक स्तर सभी प्रश्न देश की स्वाधीनता से स्वतः जुड़े हुए हैं । क्योंकि पराधीन देश में नारी का विकास संभव नहीं है ।

रांगेय राघव ने बंगाल के अकाल को आधार बनाकर 'विषाद मठ' (१९४६) की रचना की है । उपन्यास की संपूर्ण कथावस्तु उस कृत्रिम अकाल पर ही आधारित है । ब्रिटिश साम्राज्य की शोषक प्रवृत्ति का प्रतिक है । साम्राज्यवाद और पूंजीवाद किस प्रकार अपने हितों की रक्षा के लिए पद-दलित

राष्ट्र की जनता को अपने काले कारनामों के कारण दाने–दाने के लिए मोहताज कर देते है, भूखी जनता चीत्कार कर उठती है । मान–सन्मान, शील और लज्जा पेट की ज्वाला में भस्म हो जाते है । यदि इनकी रक्षा करनी है, व्यक्ति को व्यक्ति के शोषण से मुक्त करना है तो दासता के पाश को तोड़ना ही होगा । यही उपन्यास का प्रतिपाद्य है ।

गिरती दीवारे (१९४७) उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का सामाजिक उपन्यास है । परंतु उपन्यासकार ने आंशिक रूप में लाहौर कांग्रेस (१९२९) के अधिवेशन का चित्रण किया है । चेतन उस अधिवेशन में भाग लेता है । राष्ट्रीय आंदोलन के प्रति उसके मन में आस्था है । जाति–पाँति पर उसका विश्वास नहीं है । सभी मनुष्य समान है, गांधीजी की समानता में उसका विश्वास है । इसी विश्वास पर वह 'प्रकाशो' नामक बालिका का हाथ थामने के लिए दौड़ लगाता है ।

अमृतलाल नागर ने 'महाकाल' (१९४७) में 'विषादमठ' की ही भाँति बंगाल के सन् १९४२ के भीषण अकाल चित्रण किया है । जिसमें दुर्भिक्ष की पृष्ठभूमि पर व्यक्तिगत स्वार्थ और सामाजिक कल्याण के द्वंद्व की समस्या का समाधान प्रस्तुत किया गया है । उपन्यास में दयाल, मोनाई, पूँजीवादी परंपरा के स्वार्थी पात्र है । अकाल के कारण धरती पर बिछे नरकंकालों, पिचके गालों, अर्धनग्न महिलाओं की दयनीय दशा को देखकर उनका हृदय पसीजता नहीं है । उनमें मानवीय करुणा का अभाव है जो सामंतवाद और पूँजीवाद का एक गुण है । 'नागर' जी ने घृणा को प्रेम से जीतने का आग्रह कर गांधीवादी दर्शन का संकेत किया है । जहाँ एक ओर 'विषादमठ' में समाजवादी चिंतन को अपनाया गया है वही दूसरी और नागर जी ने 'महाकाल' को गांधीवादी चिंतन में ढाला है । यद्यपि 'विषादमठ' और महाकाल का कथ्य एक ही समाज बंगाल का अकाल है । परंतु उपन्यासकारों की दृष्टियाँ भिन्न–भिन्न हैं ।

गुरुदत्त ने 'स्वराज्यदान' (१९४९) से पूर्व । स्वाधीनता के पथ पर और 'पथिक' उपन्यासों की रचना की है । 'स्वराज्यदान' की कथावस्तु का आधार प्रथम विश्वयुद्ध से लेकर स्वराज्य प्राप्ति तक की घटनाएँ हैं जिसमें अंग्रेजी शासन के प्रति विद्रोह की भावना, उनकी दमननीति के चित्र प्रस्तुत किये है । अगस्त–क्रांति के हिंसात्मक कार्यों की विवेचना, दमननीति के चित्र प्रस्तुत किये हैं, अहिंसात्मक आंदोलन, देशविभाजन की समस्या, आजाद हिन्द फौज, नाविकद्रोह आदि विषयों को गुरुदत्त ने 'स्वराज्यदान' का विषय बनाया है । गांधीवाद और साम्यवाद पर भी उपन्यासकार ने विचार किया है ।

'देश की हत्या' (१९५३) शीर्षक से ही उपन्यास का स्वरूप हो जाता है । गुरुदत्त ने देश के विभाजन से उत्पन्न विभिन्न समस्याओं को उपन्यास की पृष्ठभूमि बनाया है । प्रस्तुत विवेच्य उपन्यास में काँग्रेस को भारत के विभाजन का दोषी माना जाता है । इसके अतिरिक्त हिन्दू–मुस्लिम प्रश्न, शरणार्थी–समस्या, हिजरत मंत्री मंडल की भूमिका मुस्लिम लीग का 'काला दिवस' (***Direct action day***) गांधीजी की हत्या आदि अनेक घटनाओं का चित्रण उपन्यास में किया गया है । कुछ ऐतिहासिक घटनाओं को तोड़मरोड़कर भी प्रस्तुत किया है ।

संतोष नारायण नौटियाल ने 'हरिजन' (१९४९) में कथा का प्रारंभ अगस्त क्रांति से किया है उपन्यास के आरंभिक भाग में आतंकवादी कार्यकलापों का सुंदर भावात्मक संयोजन हुआ है । यथा बम बनाना, रेल का पुल उड़ाना, अंग्रेज कमिश्नर की हत्या करना आदि आदि । दिलीप और रूपराम द्वारा रेलगाडी को उड़ाने का कार्य समाजवादी रिवोल्यूशनरी पार्टी के कार्यों की याद तरोताजा कर देता है ।

रमेश गांधीवादी पात्र है । जो अन्त्यजों की बस्ती में जाकर झोंपड़ी बनाकर रहता है । हरिजन पाठशाला के माध्यम से हरिजनोद्धार का काम करता है । परंतु उसकी गांधीवादिता धीरे–धीरे लड़खड़ाने लगती है । कजरी

(चमारीन) से प्रेम तो करता है । उसे लेकर गाँव छोड़ देता है परंतु उसे अपना नहीं पाता । परंपरागत छूत–अछूत का भाव उसे उद्वेलित करता रहता है । उपन्यासकार ने इस घटना के चित्रण द्वारा मानवीय गुणों की स्थापना पर गांधीवादी दृष्टिकोण से बल देने का प्रयत्न किया है । अतः उपन्यासकार को शोषक का अंत ही अभीष्ट है ।

दुर्गाशंकर महेता द्वारा रचित अनबुझी प्यास (१९५०) की भूमिका में द्वारिका प्रसाद जी ने लिखा है कि यह उपन्यास सन् १९२०–२१ से लेकर १९३०–३१ के राष्ट्रीय आंदोलन का ग्रामीण अंचल में संपन्न हुए आंदोलन का सजीव चित्र है महेता जी ने असहयोग आंदोलन की अनेक घटनाओं कृषक, जागरण, स्वराज्य की व्याख्या कॉंग्रेसी पात्रों की चारित्रित विशेषता, उनकी जेल जाने की अनिवार्यता आदि का वर्णन उपन्यास में किया है । गांधीवाद की सुंदर व्याख्या भी इसमें है ।

गोविंद वल्लभ पंत का मुक्तिबंधन (१९५०) पूर्णतः राजनीतिक उपन्यास है । इसके कथानक का विस्तार प्रथम विश्वयुद्ध से लेकर देश की स्वाधीनता तक फैला हुआ है । लगभग तैतीस वर्षों के राजनीतिक घटनाक्रम को पंत जी ने 'मुक्ति बंधन' में समेटा है । उपन्यास का आरंभ आतंकवाद की गुप्त बैठको से होता है । स्वामी जी नवयुवकों को आतंकवादी आंदोलन के द्वारा पराधीनता से देशमुक्ति के लिए प्रेरणा देते हैं । उन्हें तैयार करते है विशालसिंह कुमार और लक्ष्मी कॉंग्रेस के सत्याग्रह आंदोलन का संचालन कुमाउ की पर्वतीय प्रवृत्तियों का चित्रण किया है । उपन्यास गांधीवादी परंपरा की ही एक कड़ी है ।

प्रतापनारायण श्रीवास्तव ने 'बयालीस के बाद' (१९५०) में राष्ट्रीय संग्राम को दृष्टि में रखकर द्वितीय महायुद्ध के आसपास घटी घटनाओं को कथानक की पृष्ठभूमि बनाया है । इसमें सर्वहारा वर्गवाद और पूंजीवाद का संघर्ष चित्रित किया गया है गांधीवाद का विश्लेषण साथ–साथ किया है । ब्रिटिश पूंजीवाद,

उसका शोषण और दमन राष्ट्रीय आंदोलन के संदर्भ में उठाया गया है । आजाद हिन्द सेना का अंदमान द्वीप समूह पर अधिकार का चित्रांकन भी उपन्यास में मिलता है । प्रस्तुत उपन्यास को विसर्जन नाम से भी नवनी रूप में प्रकाशित किया गया है ।

'इंसान' (१९५१) के कथानक का प्रारंभ यज्ञदत्त शर्मा जी ने देश की प्रमुख समस्या भारत विभाजन से किया है । सांप्रदायिकता के कारण जो रक्त की धाराएँ भारत में बह रही थीं उनका यथार्थ चित्रण उपन्यास में मिलता है । परंतु धीरे-धीरे कथावस्तु विभाजन की समस्या से हटकर साम्यवादी की आलोचना पर छाने लगती है । साम्यवाद की स्तरहीन आलोचना में 'इंसान' भी 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' का पथिक बन जाता है ।

'पूरब और पश्चिम' (१९५१) में राधिका रमणसिंह ने मदाम ब्लावस्ट्रस्की के जीवन चरित्र को मीनी के रूप में चित्रित किया है । मीनी अंग्रेजी राज्य के अत्याचारों पर अपना आक्रोश प्रकट करके उसके पतन की कामना करती है । उपन्यास में गांधीजी के प्रशंसात्मक चित्र भी अंकित किए गए हैं ।

गोविंददास जी के 'इन्दुमती' (१९५२) के कथानक ने सन् १९१६ के लखनऊ पैकट की ऐतिहासिक राजनीतिक घटना से लेकर सन् १९५० तक विस्तार पाया है । गोविंद दास जी ने भारतीय स्वातंत्र्य संघर्ष की मुख्य-मुख्य सभी घटनाओं को उपन्यास में स्थान दिया है । लखनऊ का मुस्लिम लीग और कॉंग्रेस का समझौता, महात्मागांधी का असहयोग आंदोलन, व्यक्तिगत सत्याग्रह, पुलिस का सत्याग्रहियों पर नृसंह अत्याचार, अगस्त-क्रांति की गतिविधियों, क्रिप्समिशन का भारत आगमन, उसकी रूपरेखा, भारत की स्वाधीनता आदि अनेक घटनाएँ गोविंददास जी की स्वभुक्तभोगी है इस से स्थल बड़े ही भावपूर्ण है ।

'मैला आँचल' (१९५४) की कथावस्तु का आधार भारतीय स्वातंत्र्य संघर्ष की नींव पर खड़ा किया है । सन् १९४२ के आंदोलन के बाद भारतीय

राजनीतिक दलों का स्वरूप स्पष्ट होने लगा था । उनके उसी स्वरूप को गांधीवाद, समाजवाद आदि रूपों में व्याख्यायित किया गया हैं । उपन्यास में ग्रामीण वातावरण में राजनीतिक चेतना का अंकन करना ही 'रेणु' का अभिप्रेय है ।

दयाशंकर मिश्र ने 'बुझते दीप' (१९५५) में साम्यवादी दीपकों को बुझाने का प्रयास किया है । उपन्यास का कथानक साम्यवादी–मजदूर वर्ग की चेतना के चारों ओर चक्कर लगाता है । साम्यवादियों के चरित्र पर आक्षेप की ध्वनि प्रस्तुत है । यह उपन्यास कहीं–कहीं जैनेन्द्रकुमार के उपन्यास की याद दिलाता है ।

अनंत गोपाल शेवड़े ने 'ज्वाला मुखी' के कथानक के लिए सन् १९४२ की अगस्त क्रांति को आधार रूप में किया गया है । पूरे उपन्यास में अगस्त क्रांति आंदोलन को अनेक रूपों में चित्रित किया गया है । शेवडे जी ने 'करो या मरो' के मंत्र को गांधीवाद के आदर्श पर उतारा है । भारतीय जनता की दासता से मुक्ति की छटपटाहट 'ज्वालामुखी' के विस्फोट में साकार हो उठी है ।

भगवतीचरण वर्मा के 'भूले बिसरे चित्र' (१९५९) की कहानी का आरंभ शिवलाल की पीढ़ी से प्रारंभ होकर नवलशर्मा की चौथी पीढ़ी में अंत होता है । सन् १८८० से १९३० तक की राजनीतिक घटनाओं को कथानक के रूप में लिया गया है । सामंतवाद और पूंजीवाद द्वारा राष्ट्रीय आंदोलन का दमन और पराजय ही कथानक का मुख्य भाव है । यह उपन्यास पूर्ण राजनीतिक उपन्यास है ।

लक्ष्मीनारायण लाल ने 'रूपाजीवा' (१९५७) में स्वातंत्र्य संघर्ष की घटनाओं का वर्णन अखबारी रिपोर्ट के रूप में किया है । कॉंग्रेस आ्रंदोलन, जवाहरलाल नेहरू का सभापपि चुना जाना श्रीमती कमला नहेरू का देहांत,

द्वितीय विश्वयुद्ध का प्रारंभ नवयुवकों का योगदान आदि घटनाओं का चित्रण उपन्यास का मुख्य विषय है ।

'दो दुनिया' (१९५३) की कथावस्तु का चित्रफलक भारत–विभाजन से उत्पन्न मानवीय संवेदनात्मक परिस्थितियों पर आधारित है । देश विभाजन की शिकार नारी की मजबूरी तथा शरणार्थी समस्या का चित्रांकन उपन्यास में किया गया है समाजवादी दर्शन की स्थापना का प्रयास भी मन्मथनाथ गुप्त ने किया है ।

अपने एक अन्य उपन्यास रैन अंधेरी' में मन्मथनाथ गुप्त ने सन् १९२२ अर्थात् असहयोग आंदोलन से सन् १९३० के सविनय अवज्ञा तक की राजनीति को चित्रित करने का सफल प्रयास किया है । असहयोग आंदोलन का आरंभ उसका बापू द्वारा स्थगत चौरा–चौरी, काकोरी रेंल षड़यंत्र, कौसिलो का चुनाव, स्वराज्य पार्टी की गतिविधियाँ, लाहौर षड़यंत्र, साइमन कमिशन का बहिष्कार, गांधी इरविन समझौता आदि विविध घटनाओं का प्रतिपादन किया गया है । राजनीतिक घटनाओं का आधार 'कॉंग्रेस का इतिहास' है ।

मन्मथनाथ गुप्त ने 'अपराजित' (१९६०) के प्रतिपाद्य हेतु महात्मा गांधीजी के सविनय अवज्ञा आंदोलन के आसपास तथा उसके दो–तीन वर्ष बाद की घटनाओं का चयन किया है । सन् १९३१–३२ में क्रांतिकारियों को फाँसी सजा से न बचा पाने के कारण देश में जो दंगे हुए थे उस पृष्ठभूमि के आधार पर कान्पुर के सांप्रदायिक दंगों का वर्णन भी 'अपराजित' में है । इसके अतिरिक्त 'गोलमेज सम्मेलन' और कृषक आंदोलन को भी कथानक में स्थान दिया गया है । किसी 'वाद' विशेष की स्थापना का अभाव उपन्यास की अपनी विशेषता है ।

उपर्युक्त सभी उपन्यासों के परिचय के उपरांत यह धारणा पुष्ट होती है कि उपन्यासकार ने जहाँ तक पाक्गांधीवाद युग में राजनीति की उपेक्षा की वही गांधीयुगीन उपन्यासकार ने राजनीति को अपनी रचना का प्रमुख विषय बनाया

है भिन्न–भिन्न राजनीतिक दर्शनो के प्रतिपादन हेतु युगीन उपन्यासकार 'वाद' विशेष से प्रतिबद्धता का आलिंगन करता हुआ आग बढ़ा । जिसका फल यह निकला कि उपन्यासकार ने स्वयुगीन राजनीतिक आंदोलन से प्रभावित होकर उपन्यास की संरचना की । जिसके पीछे उसकी अपनी दृष्टि थी । 'आंदोलन' तथा 'वाद' प्रियता के प्रचार ने भी सैद्धांतिक पक्षों को सबल बनाने में उपन्यास का आधार जुटाया । यही कारण है कि गांधीभक्त ने गांधीवादी, आतंकवादी मनोवृत्ति के विश्वासी ने आतंकवादी तथा समाजवादी प्रवृत्ति के उपन्यासकार ने समाजवादी भावों के प्रसार और प्रचार के लिए उपन्यासों की रचना की । गांधीयुगीन उपन्यासकार चाहे वह गांधीवाद था या चाहे आतंकवादी या क्रांतिकारी समाजवादी सबका मूल स्वर समान था । वह था किसी भी तरह ब्रिटिश साम्राज्यवाद के जबड़ों से भारत की मुक्ति । अस्त्र और शस्त्र सभी राजनीतिक दलों के अलग–अलग होने पर भी उद्देश्य एक था ।

स्वाधीनता की प्राप्ति के उपरांत भारतीय स्वातंत्र्य संघर्ष पर रचित उपन्यासों की कथावस्तु में परिवर्तन आया है । क्योंकि अब उपन्यासकार विभिन्नवादों गांधीवाद समाजवाद साम्यवाद की आलोचना और प्रत्यालोचना को स्वतंत्र भारत के संदर्भ में स्पष्ट रूप से बेझिझक मुखर करने में समर्थ था । यद्यपि स् १९४० से ही इस प्रकार की प्रवृत्ति के उगते हुए अंकुर राहुल सांस्कृत्यायन, यशपाल, नागार्जुन, राघव, अंचल आदि की रचनाओं में मिलने लगते है । परंतु इन अंकुरों का विकास स्वाधीन भारत में अधिक हुआ है । गांधीयुगीन उपन्यासकार का प्रारंभिक स्वर राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़ा हुआ था परंतु समाजवादी दर्शन के विश्व–व्यापक प्रभाव से भारतीय स्वाधीनता संग्राम भी अपने को न बचा सका । राष्ट्रीय संग्राम की संघर्ष–यात्रा में जो–जो पड़ाव आते गए उनमें उपन्यासकार भी तत्युगीन होकर मुखर हो उठा । 'भारत जाग उठा' में युगीन राजनीति के अतिरिक्त 'बलिदान' में आजाद हिन्द सेना का भारत मुक्ति के लिए किया गया संघर्ष चित्रित है । नेता जी का देश से बच

निकलना, विदेशी मदद से सैन्य संचालन करना, इम्फाल पर तिरंगा लहराना आदि घटनाओं को उपन्यास के कथानक के लिए ग्रहण किया है ।

अब आगे के अध्यायों में उपन्यासों में चित्रित भारतीय स्वाधीनता संग्राम की विभिन्न घटनाओं का विश्लेषण किया जायेगा ।

संदभ सूची :

१	हिन्दी उपन्यास स्वातंत्र्य संग्राम के विविध आयाम	डॉ. देवीदत्त तिवारी	६७
२	प्रेमचंद विविध प्रसंग	सं. अमृतराय भाग–३	३३
३	प्रेमचंद विविध प्रसंग	सं. अमृतराय भाग–३	३६
४	बीसवीं शताब्दी हिन्दी साहित्य नये संदर्भ	डॉ. लक्ष्मीनागर वार्ष्णेय	२४६
५	उपन्यास विश्व की एक पूँजीवादी सभ्यता की देन	रेल्फ फोक्स	५३
६	हिन्दी साहित्य इतिहास	आचार्य रामचंद्र शुक्ल	५३५
७	प्रेमचंदपूर्व हिन्दी उपन्यास	डॉ. कैलाश	२८७
८	हिन्दी उपन्यास सिद्धांत और समीक्षा	डॉ. माखनलाल शर्मा	२६६
९	पूर्वोलिखित ग्रंथ	डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	२६१
१०	हिन्दी उपन्यास साहित्य का उद्भव और विकास	डॉ. लक्ष्मीकांत सिंहा	१६३
११	प्रेमचंद जीवन और कृतित्व	हंसराज रहबार	१६६
१२	प्रेमचंद घर में	शिवरानी देवी	६५
१३	प्रेमचंद के पात्र	कोमल कोठारी	१३८
१४	प्रेमचंद के पात्र	कोमल कोठारी	१५१
१५	प्रेमचंद विविध प्रसंग भाग–३	(सं.) अमृतराय	३६४
१६	जैनेन्द्रकुमार और उनके उपन्यास	रघुनाथ झालानी	११२
१७	प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यास (आलोचना उपन्यास अंक)	शिवनाथ	११
१८	पूर्वोल्लिखित ग्रंथ	डॉ. त्रिभुवन सिंह	१२४

१६	पतवार एक समीक्षण	डॉ. भगीरथ मिश्र	६२
२०	निशिकान्त दो शब्द (भूमिका)	विष्णु प्रभाकर	
२१	प्रेमचंद मंगलसूत्र	सं. अमृतराय प्रेमचंद स्मृति	२६३
२२	दादा कामरेड	यशपाल	६
२३	हिन्दी उपन्यास	शिवनारायण श्रीवास्तव	३२३
२४	यशपाल : व्यक्तित्व और कृतित्व	सरोज गुप्त	८२
२५	पार्टिकामरेड	यशपाल	५
२६	अज्ञेय सं. हिन्दी साहित्य कोश भाग–२	कुवर नारायण	१०
२७	अधूरे साक्षात्कार	नेमिचंद्र जैन	७५
२८	हिन्दी उपन्यास में वर्गभावना	डॉ. प्रतापनारायण टंडन	१३२
२६	चढँती धूत (भूमिका)	अंचल	४

✰✰✰

चतुर्थ अध्याय
आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में स्वाधीनता संग्राम का चित्रण

✪ प्रस्तावना

(क) राजनीतिक 'वाद' निरूपण

(१) गांधीवाद
(२) अहिंसा
(३) हृदय परिवर्तन
(४) गांधीवाद का आलोचनात्मक चित्रण
(५) उपन्यासों में गांधी व्यक्तित्व चित्रण
(६) उपन्यास और आश्रम स्थापना
(७) आतंकवाद : दार्शनिक पक्ष
(८) आतंकवादी कार्यकलापों का अंकन
(९) गदर आंदोलन
(१०) राजनैतिक डकैतियाँ
(११) काकोरी ट्रेइन काँड
(१२) अधिकारी वर्ग की हत्याएँ
(१३) आतंकवाद और बम
(१४) क्रांतिकारियों का व्यक्तित्व-चित्रण
(१५) समाजवाद : दार्शनिक पक्ष

(ख) असहयोग–सत्याग्रह आंदोलन

(१) खिलाफत आंदोलन
(२) चौरी–चौरा हिंसात्मक घटना–काण्ड
(३) मोप्ला उपद्रव
(४) सत्याग्रह का चित्रण

(ग) गांधीजी के रचनात्मक कार्य का चित्रण

(१) कृषक आंदोलन
(२) नारी जागरण
(३) अछूतोद्धार आंदोलन
(४) सांप्रदायिक निर्णय
(५) हिन्दू–मुस्लिम एकता
(६) विदेशी बहिष्कार एवं स्वदेशी भावना का चित्रण

(घ) सविनय अवज्ञा आंदोलन

(१) नमक सत्याग्रह आंदोलन
(२) लगानबंदी आंदोलन
(३) गोलमेल संमेलन तथा गांधी इर्विन समझौता

(ड) स्वातंत्र्य संघर्ष की प्रमुख घटनाओं का चित्रांकन

(१) कांग्रेस के विभिन्न अधिवेशन
(२) साइमन कमिशन
(३) स्वराज्य की व्याख्या
(४) आजाद हिन्द फौज का चित्रण
(५) नाविक विद्रोह
(६) शुद्धि आंदोलन

अध्याय – ४
आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में स्वाधीनता संग्राम का चित्रण

✰ प्रस्तावना

'अथातोब्रह्मजिज्ञासा' के इस पवित्र सूत्र से भारतीय वेदांत का प्रारंभ होता है । परंतु साहित्यकार के अनुसार साहित्य की सर्जना का मूलमंत्र "अथातो सत्य जिज्ञासा" के अतिरिक्त और अन्य कुछ नहीं है । उसके मनस्तल में सत्य का जो गूढ़ कुतूहल निहित होता है वही काव्य, कहानी, नाटक और उपन्यास आदि के रूप में अभिव्यक्त पाता है । साहित्यकार अनेकानेक माध्यमों से स्वयं को उद्घाटित करके आंतरिक एवं बाह्य जगत में विद्यमान स्वपरिवेशावृत्त सत्य की शोध में सर्वदा प्रवृत्त रहता है । भारतीय स्वातंत्र्य संघर्ष के संदर्भ में उपर्युक्त तथ्यावलोकन के बाद सहज ही यह धारणा परिपुष्ट होती है कि हिन्दी उपन्यासकार राष्ट्रीय आंदोलन के विविध पक्षों की कालांतर में उपेक्षा न कर सका । राष्ट्रीय आंदोलन की चेतना के आंतरिक और बाह्य निरूपण को उसने अपने उपन्यास का विषय बनाया । देश और काल के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए जिन स्वातंत्र्य संग्राम के ऐतिहासिक तथ्यों को उपन्यासकार ने ग्रहण किया, उनका वैविध्यपूर्ण चित्रांकन विविध रूपों में कल्पना और सत्य मिश्रण के साथ प्रस्फुटित हुआ है । उन्हीं विविध रूपों का विश्लेषण प्रस्तुत अध्याय में करने का प्रयास किया गया है ।

(क) राजनीतिक 'वाद' निरूपण

स्वातंत्र्य संग्राम का विधिवत् सूत्रपात १९वीं शताब्दी के अंत में आरंभ हो गया था परंतु बीसवीं शताब्दी के लगभग दो दशक तक वह नाबालिग युवक की भाँति परिपक्वता प्राप्त न कर पाया । ऐसा होना स्वाभाविक भी था क्योंकि राष्ट्रीय पुनःजागरण की समझ अपनी अंतिम विकास यात्रा पर थी । राष्ट्रीय चेतना की भूमि में अब उर्वराशक्ति उत्पन्न हो गई थी । ब्रिटिश पूंजीवाद और साम्राज्यवाद उन राष्ट्रीय चेतनाकुरों को सतत प्रयास के बावजूद भी समूल नष्ट करने में अपने को असमर्थ पा रहा था । प्रथम विश्व महासमर की विजय का उपहार 'सेडीशन कमेटी' के रूप में भारतवासियों को दिया गया था । महात्मा गांधी सेवा के प्रतिदान में हिंसा और घृणा को सहन न कर पाये । फलतः रोलट एक्ट की समाप्ति की भूमिका में उन्होंने जिस असहयोग आंदोलन का प्रारंभ किया उसकी स्वाधीनता के आलोक में जाकर विलीन हुई । महात्मा गांधी के ''सत्य के प्रयोग'', ''अवज्ञा सत्याग्रह'', ''सविनय सत्याग्रह'', ''व्यक्तिगत सत्याग्रह'' जो प्रत्येक दस वर्ष बाद किए गये को गांधीवाद के नाम से अभिहित किया गया । जिसके अंतर्गत गांधीजी का संपूर्ण राजनीतिक दर्शन निरूपित है । गांधीवाद को दो पक्षों में विभाजित किया जा सकता है ।

(१) चिंतन पक्ष

(२) व्यावहारिक पक्ष

चिंतन पक्ष में अहिंसा, सत्य और सत्याग्रह आते हैं । सत्याग्रह के उपखंडों में उपवास, असहयोग, सविनय, अवज्ञा तथा धरना आदि हैं । व्यावहारिक पक्ष में गांधीजी का संपूर्ण रचनात्मक कार्य सम्मिलित किया जा सकता है । क्योंकि यह सत्याग्रह संघर्ष का एकमात्र उपादान है । सत्य, अहिंसा, मानवता, निडरता, हृदय की पवित्रता, प्रेम, समता और एकता आदि 'गांधीवाद' के ही विविध अवयव हैं । इसी प्रकार बल प्रयोग के द्वारा ब्रिटिश साम्राज्यवाद का भारत से अंत करने के चिंतन पक्ष को भारतीय परिप्रेक्ष्य में

''आतंकवाद'', ''क्रांतिवाद'', ''समाजवाद'' तथा ''साम्यवाद'' का नाम दिया गया है । हिन्दी उपन्यासकार ने इन्हीं वादों को अपनी रचनाओं का प्रतिपाद्य बनाया ।

(१) गांधीवाद

प्रेमचंदयुगीन हिन्दी उपन्यासों में गांधीवाद की सैद्धांतिक विवेचना का सन् १९३५ तक अभाव सा पाया जाता है । इस काल के उपन्यासकार ने 'गांधीवाद' को गुणावगुण की कसौटी पर न कसकर उसके व्यावहारिक पक्ष को यथावत् रूप से ग्रहण किया है । व्याख्या के रूप में ''गांधीवाद'' का विरोध नगण्य सा रहा है । परंतु जहाँ तक गांधीजी के 'असहयोग' आंदोलन का प्रश्न है उसका विरोध अवश्य हुआ है । वह भी अपवाद के रूप में ही है । प्रेमचंद ने अपने तीनों उपन्यासों – प्रेमाश्रम, रंगभूमि और कर्मभूमि में ''गांधीवाद'' को सत्याग्रह के रूप में ग्रहण किया है । ''वाद'' विवेचन के फेर में न पड़कर उन्होंने गांधीवाद की स्थापना गांधीवादी पात्रों, उनके संवादों, उनके सत्याग्रहों आदि के द्वारा की है । श्रीनाथसिंह ने ''जागरण'' में उसी परंपरा को अग्रसर किया है तथा जैनेन्द्र के ''त्यागपत्र'' आदि में भी इसी परंपरा के दर्शन होते हैं । परंतु प्रेमचंदोत्तर उपन्यासकारों को ''गांधीवाद'' के अहिंसावाद का व्याख्यात्मक विवेचन विशेषतः अभिप्रेत रहा है । ''गांधीवाद'' पर एक ही उपन्यास में कहीं आस्था व्यक्त कराई गई है तो कहीं अनास्था । इसका कारण संभवतः युगीन प्रभाव था । क्योंकि ''सविनय अवज्ञा – आंदोलन'' के पश्चात् देश के राजनीतिक चिंतन में पूर्णतः परिवर्तन आ गया था । इससे पूर्व असहयोग–आंदोलन की असफलता के बाद भी गांधीवादी आंदोलन पर जनता की विश्वास की आँखें टीकी थीं ।

(२) अहिंसा

'गांधीवाद' में आस्थावान उपन्यासकार 'गांधीवाद' के प्रति आस्था जगाने का उपक्रम करने लगा । फलतः 'गांधीवाद' व्याख्या की वस्तु बन गया । गांधीवाद का मूलाधार अहिंसा है – अहिंसा एक निर्जीव सिद्धांत नहीं है, अपितु एक सजीव और प्राणदायिनी शक्ति है । वह शूरवीरों का एक गुण है, तथ्यतः उनका सर्वस्व है ।... यह सबसे उच्चतम धर्म है । अहिंसा के सूर्य के उदय होते ही घृणा, क्रोध और ईर्ष्या–द्वेष आदि अंधकार रूपी शत्रु भाग जाते हैं ।

पुरुष और नारी का पात्र दलीय अहिंसा की व्याख्या करते हुए कहता है –

"अहिंसा कुछ दब्बूपन की दीनता नहीं है । जुल्म के आगे हम सर रोपते हैं कुछ सर नहीं झुकाते । दिलेरों की अहिंसा और है, बुझदिलों की अहिंसा और अहिंसा तो वह तलवार है, जिसकी चोट बचाने को कोई ढाल ही नहीं । यह सरासर सक्रिय है, कुछ पंगु नहीं । यहाँ तो हथेली पर जान रखते हैं और छाती में आन ।"[१]

'अज्ञेय' ने 'अहिंसा' पर विचार प्रकट करते हुए कहा है कि – "जहाँ अहिंसा हो सकती है वहाँ राह चलते गेहूँ की एक बाल तोड़कर फेंक देना हिंसा होगी । क्योंकि वह कर्म उस विश्व समाज का कोई हित नहीं करता उल्टे थोड़े से हित की संभावना को नष्ट कर देता है ।"[२]

'नई इमारत' का भी एक पात्र इसी प्रकार से सोचता है । उसका विचार है कि "अहिंसा ही काँग्रेस की नीति रही है और रहेगी । जब तक गांधीजी देश के नेता हैं और काँग्रेस देश का नेतृत्व कर रही है तब हम हिंसा का मार्ग नहीं अपना सकते शांतिपूर्ण प्रदर्शन, अहिंसात्मक सत्याग्रह और सिविल नाफरमानी सदा हमारे हथियार रहे हैं और रहेंगे ।"[३]

"महात्मा गांधी अहिंसा को मात्र वैयक्तिक गुण नहीं मानते थे । उसे वे एक सामाजिक गुण के रूप में स्वीकार करते थे अन्य गुणों की भाँति उसका भी विकास विश्व के संदर्भ में होना चाहिए ।"[४]

'दो पहलू' का सुरेन्द भी अहिंसा को विश्व के संदर्भ में देखता है । गांधीजी का एक मात्र उद्देश्य केवल भारत की स्वतंत्रता के लिए ही लड़ना नहीं है । बल्कि वह है अहिंसात्मक रूप से लड़ना । "वह चाहते हैं कि संसार सत्य के नाम पर रक्त बहाना छोड़ दे । भूखे भारत को तो सूखी रोटियाँ चाहिए । उन्हीं से उसके उदर की पूर्ति हो सकती है । यह अहिंसा से प्राप्त हो सकती है ।"[५]

'चढ़ती धूप' का रघुवीर जब अहिंसा की भूमि पर डगमगाने लगता है और हिंसा का प्रत्युत्तर हिंसा से देने पर उत्तर आता है तब जयनाथ कठोर शब्दों में उसे संबोधित करते हुए कहता है – "गुलाम देश में हिंसा करना दमन और सरकारी अत्याचार को निमंत्रण देना है । हम सत्याग्रह करेंगे और विजयी होगे ।"[६] "सच्ची अहिंसा वह है कि कमर में तलवार कसे हुए भी हम केवल इसलिए सिर झुका दें क्योंकि हमारे मन में बदले की भावना मर चुकी है ।"[७] क्योंकि गाँधी जी कहते है कि "बुराई हमारे स्वार्थ में है और अपने पड़ोसी के प्रति उदारता के अभाव में है ।"[८]

गुरुदत्त ने अपने उपन्यास 'स्वराज्यदान' में अहिंसा पर बल दिया है । बनारसी लोगों को समझाते हुए पूछता है कि "हिन्दुस्तान में हिंसा मार्ग से सफलता प्राप्त करने की शक्ति भी है क्या ? इसके अतिरिक्त में तो स्वराज्य स्वराज्य ही नहीं समझता जो बल प्रयोग से प्राप्त हो ।"[९]

'पथिक' में भी कई स्थानों पर 'अहिंसा' की व्याख्या उपन्यासकार गुरुदत्त ने की है । गोविंदवल्लभ पंत राजनीतिक दृष्टि से अहिंसा पर विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं कि – "हिंसा पाशविकता है – निश्चय है परंतु कब ? जब उसका ध्येय केवल एक व्यक्ति का स्वार्थ हो । एक पशुबल के विरोध में

एक संगठित राष्ट्र का विद्रोह हिंसा नहीं है । वहीं तो नीतिज्ञता है ।"[९०] "अंचल मेरा कोई" में वृंदावनलाल वर्मा ने भी गाँधीवादी स्वर में पात्र के माध्यम से कहलवाया है कि "हमारी सलाह है कि तुम हथियारों का प्रयोग मत करना । नुकसान उठाओगे । हमारे आंदोलन को उससे ठेस लगेगी ।"[९१]

"टेढ़े–मेढ़े रास्ते' का मार्कण्डेय ददुआ को अहिंसा का अर्थ समझाते हुए कहता है कि "ददुआ, अहिंसा के माने हैं मानवता । बली वह है जो बड़ा से बड़ा कष्ट उठा सके, बिना उफ किए, हँसते हुए, जिसके पास आत्मा का बल है । प्रेम, दया, त्याग दूसरों को उत्पीड़ित तो सभी करते हें, लेकिन वास्तव में आदमी वह है जो दूसरो को सुख दे सके और दूसरों को दुःखी बनाने के बजाय दूसरों के दुःख को बँटा सके ।"[९२]

राजा महाराजाओं की महफिल में भी अहिंसा पर विचार हुआ है । रामनाथ तिवारी नवाब साहब से पूछते हैं – "नवाब साहब यह अहिंसा है क्या चीज ? नवाब साहब ने गंभीरता से कहा कुछ भी न हो । पर यह है कुछ जरूर । हम हथियारों की बात करते थे, लोग साथ नहीं आये । पर यह अहिंसा ! हिंमत देखिये, लोग जानते हैं कि पिटेंगे फिर भी आगे बढ़ते हैं ।"[९३] भगवती चरण वर्मा का भी एक पात्र कहता है कि "मैं इन्साफ और नेकी को नहीं छोड़ सकता क्योंकि इन्साफ और नेकी महात्मा गांधी के साथ है और महात्मा गांधी के पास एक और ताकत है – अहिंसा । में तो अहिंसा का मुरीद हूँ ।"[९४]

अहिंसा के दार्शनिक पक्ष के विवेचन के लिए कुछ मुख्य उपन्यासों को लिया गया था जिससे गांधीजी का यह मंतव्य स्पष्ट हो सके कि अपने को किसी ने द्वेष के कारण दिया तो भी उसका द्वेष न कर उस पर प्रेम करना चाहिए । उस पर रहम कर उसकी सेवा करना यही अहिंसा है ।

(३) हृदय परिवर्तन

गांधीवाद का द्वितीय महत्त्वपूर्ण अवयव मानव में विद्यमान मानव के प्रति प्रेम की भावना है। सत्य के आग्रह के लिए हृदय की पवित्रता अनिवार्य है। जब उसमें सत्य की ज्योति प्रज्जवलित हो जाती है तब वह 'स्व' और 'पर' की भावना से ऊपर उठकर शत्रु को गले लगा लेता है। उसमें वह अपनापन अनुभव करने लगता है शत्रु के प्रति मित्रता की भावना उत्पन्न हो जाना ही हृदय परिवर्तन कहा गया है। महात्मा गांधी ने अपने राजनीतिक चिंतन में शत्रु के हृदय परिवर्तन को राजनीतिक अस्त्र के रूप में प्रयोग किया है। गांधीजी यह मानते थे कि "न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्य" अर्थात् धन और संपत्ति शांति प्रदान नहीं कर सकते। पूजा व्यक्ति की नहीं उसके गुणों की होती है। गुण–हृदय की वस्तु है। शत्रु के प्रति मन में घृणा न रखना, उसे अपने से भिन्न न समझना और किये गये अत्याचारों के बदले क्षमा–याचना करना हृदय परिवर्तन का ही एक रूप है। "हिन्दी उपन्यासों में गांधीवाद के स्वरूप के सर्वप्रथम दर्शन हमें रंगभूमि में होते हैं। प्रेमचंद का 'सुरदास' गांधीवाद की देन है। क्योंकि गांधीजी और टाल्स्टाय का इतना गहरा असर मुंशी जी के मन पर है कि जादू की छड़ी घुमाते ही सारे पढ़े–लिखे लोगो का हृदय परिवर्तन हो जाता है। उसकी प्रसुप्त आत्मा जाग्रत हो उठती है।"[५]

'रंगभूमि' का सूरदास जब अन्याय के आगे नहीं झुकता उसका सामना सच्चाई से करता है। ठोकरें खाता है, गिरता है परंतु पुनः संभलकर उठता है टूट जाता है परंतु सत्य का आँचल नहीं छोड़ता। वह न दोषारोपणों की चिंता करता है और न भयभीत ही होता है। इसीलिए भैरों की मलिनता स्वतः पवित्रता के जल से प्रक्षलित हो जाती है। वह सूर से अपने द्वारा किये अन्यायपूर्ण व्यवहार के लिए क्षमा माँगते हुए कहता है।

"सूरे, अब तक मेंने तुम्हारे साथ जो बुराई भलाई की उसे माफ करो । आज से अगर तुम्हारे साथ कोई बुराई करु, तो भगवान मुझसे समझे ।"[९६]

प्रेमचंद का सूरदास तो गांधीवाद के कंचन से निर्मित जीवंत प्रतिमा है साकार रूप है । सामंतवाद की साक्षात् मूर्ति राणा साहब भी अंत में सूर के आगे नत हो जाते हैं । सूर के सत्य की ज्योति से उनका सामंतवादी मद पिघल जाता है । वह सूर से क्षमा–याचना करने लगते हैं । "सूरदास, में तुमसे अपनी भूलों की क्षमा माँगने आया हूँ । अगर मेरे वश की बात होती, तो में आज अपने जीवन को तुम्हारे जीवन से बदल लेता ।"[९७] महात्मा गांधीजी भी स्थापित स्वार्थो को हटा देने के सर्वदा पक्ष में थे परंतु यह काम बल प्रयोग से न होकर हृदय परिवर्तन से ही होना चाहिए । यही उनकी दृढ़ मान्यता थी । 'रंगभूमि' में सूरदास का सामना पूंजीपति वर्ग के प्रतीक जान सेवक से होता है । जिसमें एक ओर सूर भारतीय गरीब जनता का प्रतिनिधि है और दूसरी ओर मिस्टर जान सेवक ब्रिटिश साम्राज्य के धनी वर्ग का । अंत में गांधीवादी सूर के आगे वह भी अपन भूल स्वीकार कर लेता है । वह सूर से कहता है – "मेरे हाथों तुम्हारा बड़ा अहित हुआ । इसके लिए मुझे क्षमा करना.. में जीतकर भी दुःखी हूँ तुम हारकर भी सुखी हो ।"[९८]

गांधीवाद के हृदय परिवर्तन को प्रेमचंद, कायाकल्प में भी चित्रित करना नहीं भूले "धन्ना की संगीन से पथभ्रष्ट गांधीवादी चक्रधर घायल हो जाता है । चक्रधर को धन्ना पहचान लेता है कि यह तो भगत (चक्रधर) है और अभी जीवित है । तब इसकी उसे इतनी खुशी हुई कि वह बन्दुक लेकर पीछे की ओर चला और उसके चरणों पर सिर रखकर रोने लगा ।"[९९]

'गबन' भी गांधीवाद के इस आदर्श से अछूता नहीं है । जोहरा में आकस्मिक रूप से हृदय परिवर्तन गांधीय आस्था का ही प्रतीक है । "दिनेश के घर उसकी जालपा से भेंट होती है । जालपा का त्याग, सेवा और साधना,

देखकर इस वेश्या का हृदय इतना प्रभावित हो जाता है कि वह अपने जीवन पर लज्जित हो जाती है और दोनों में बहनाता हो जाता है ।"[२०] जालपा का प्रेममय व्यक्तित्व न केवल जोहरा को ही प्रभावित करता है अपितु रमानाथ भी उससे प्रभावित होकर झूठी गवाही देने से मुकर जाता है ।

इसी प्रकार 'कर्मभूमि' में लाला समरकान्त सेठ धनीराम के साथ-साथ सुखदा सत्याग्रह के विरोधी लाला समरकान्त अंत में स्वयं सत्याग्रही बन जाते हैं । सभी प्रकार के कट्टर पंथ का परित्याग कर "वह थाली उठाकर सलीम के कम्बल पर आ बैठे अपने विचार में आज उन्होंने अपने जीवन का सबसे महान त्याग किया सारी संपत्ति दान देकर भी उनका हृदय गौरववान्वित न होता सलीम ने चुटकी ली – "अब तो आप मुसलमान हो गये । सेठजी बोले – "में मुसलमान नहीं हुआ तुम हिन्दू हो गये ।"[२१]

ऋषभचरण जैन के 'भाई' और 'हरहाइनेस' में सिंभु आश्रेर हिजहाइनेस का हृदय परिवर्तन हो जाता है । भाई का सिंभू भी अपने पापों का प्रायश्चित करता है अपने अपराध की स्वीकृति जज साहब से स्पष्ट कहने के लिए मान जाता है । जिसका उसने घर उजाड़ा है उसे वह आबाद करना चाहता है । क्योंकि सत्य का आलोक उसे मिल जाता है । वह दुःखभरे गंभीर स्वर से कहने लगता है – "दुर्गा मेरी बात सुनो... तुम्हारा घर मेंने उजाड़ा है, में ही बसाऊँगा ।"[२२]

हिजहाइनेश भी रियासन के मद में चूर होने के कारण हरहाइनेस को अनेकानेक प्रकार से दुःख देता है । सताता है । वह दर-दर परेशान होकर राज्य से दूर निकल जाती है । हिजहाइनेश के प्रति उसके मन में भी घृणा है । परंतु जब हिजहाइनेश की चेतना जाग्रत होती है तब वह उसकी खोज में निकलता है और दूर से उसे पहचान कर पुकारते हुए कहता है – "में आ गया फेनी, में तुम्हे लेने आया हूँ ।"[२३] परंतु हरहाइनेस कुछ क्षण तक निर्निमेष भाव खड़ी रही और तब एक कदम आगे बढ़कर वह हिजहाइनेश के चरणों

पर गिर पड़ी । युगों का वह क्रोध, वह नफरत, गलतफहमियों का वह बवडंर जैसे एकबारगी उड़ गया ।"[२४]

'त्यागपत्र' में जैनेन्द्रकुमार की 'बुआ' भी गांधीवादी भावों से ओत–प्रोत है । हिंसा में उसकी आस्था नहीं है । बापू की भाँति उसका दृष्टिकोण भी सृजनात्मक है क्योंकि उसका कथन है – "में समाज को तोड़ना, फोड़ना नहीं चहती हूँ, समाज टूटा कि फिर हम किसके भीतर बनेंगे ?... समाज से अलग होकर मंगलाकांक्षा में खुद ही टूटती रहूँ ।"[२५] 'त्यागपत्र' की बुआ में उपन्यासकार ने "सोडहं एकोडस बहुस्याम" अर्थात् व्यष्टिवाद में समष्टिवाद के द्वारा गांधीवाद की समाजोन्मुखी भावना का प्रतिपादन किया है ।

'मुक्ति के बंधन' का खुख्खार पात्र डाकू धनई भी कुमार की सहनशीलता सरलता और उसकी सेवा से इतना प्रभावित हो जाता है कि वह कुमार से सेवा न कराकर उसकी स्वयं सेवा करने लगता है । कहाँ जेल में धनई सत्याग्रही कुमार के रोजाना पैर दबवाता था और अब कहाँ वह स्वयं दूसरे के पैर दबाता है । क्योंकि कुमार गांधी विचारों से युक्त था । "पैर" की सेवा वह परमेश्वर की सेवा मानता था । इस व्यवहार से धनई में धीरे–धीरे परिवर्तन होता है । कुमार को अब पैर दबाने से मना करते हुए वह कहता है – "नहीं कुमार, तुम थके हुए दो दिन भर के काम से सो जाओ । आज में तुम्हारे पैर दाबूँगा ।"[२६] कुमार सोचने लगा, "आज उसकी मनोकामना पूरी हुई क्योंकि एक कठोर मनुष्य के हृदय की खिड़कियाँ वह खोल सका है ।"[२७]

(४) गांधीवाद का आलोचनात्मक चित्रण

जहाँ एक ओर उपन्यासों में गांधीवाद पर आस्था व्यक्त की गई है वहीं दूसरी और गांधीवाद का विरोध भी आलोचना के रूप में पात्रों द्वारा या कहीं स्वयं के विवेचन द्वारा प्रस्तुत किया गया है । कहीं कहीं तो एक ही उपन्यास

में एक पात्र गांधीवादी है तो दूसरा गांधीवाद का विरोधी । पक्ष के लिए विपक्ष का होना तो आवश्यक है इसलिए गांधीवाद के समर्थन के लिए गांधीवाद विरोधी पात्रों की कल्पना उपन्यासकारों ने की है । कहीं व्यंग्य की चुटकी है तो कहीं पर विश्लेषण की अभिव्यक्ति और कहीं खंडन है तो कहीं मंडन । इसका कारण ऐतिहासिक भी है । क्योंकि जैसा पहले कहा जा चुका है गांधीवाद का आतंकवादियों द्वारा विरोध 'अहसयोग आंदोलन' की असफलता के बाद होने लगा था । परंतु वह सुखी सरिता के समान था । भारतीय बहुमत गांधीवाद की आस्था पर रहा था । ''सविनय अवज्ञा आंदोलन तक यही रूप मिलता है । पर सरदार भगतसिंह आदि क्रांतिकारियों को न बचा पाने के कारण भारतीय जनमानस में गांधीजी के प्रति रोष व्याप्त होने लगा था । कॉंग्रेस के करांची अधिवेशन में गांधीवादी को काले पूज्य विरोध के रूप में भेंट किये गये थे ।''[२८] दूसरी ओर 'मार्क्सवाद' के नवीन राजनीतिक दर्शन का प्रचार भारत में बढ़ने लगा था । श्री मानवेन्द्रनाथ राय प्रभृति साम्यवादी लोग गांधीवादी आंदोलन की आलोचना करने लगे थे । बार–बार सफलता की चोटी पर आरूढ़ सत्याग्रह आंदोलन गांधीजी बिना शर्त वापस ले लेते थे जिस जनता में गांधीवाद के प्रति आस्था डगमगमाने लगी । इन ऐतिहासिक परिवर्तनों का प्रभाव साहित्यिक जगत में भी पड़ा । यही कारण है कि प्रेमचंद के उपन्यास साहित्य में गांधीवाद का उग्र विरोध या व्यंग्य बड़ी कठिनाई से ही कहीं मिलेगा । परंतु सविनय अवज्ञा आंदोलन के उपरांत रचित अन्य उपन्यासों में यह स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है ।

(५) उपन्यासों में गांधी व्यक्तित्व चित्रण

गांधीजी 'सत्य', 'पवित्रता' और 'प्रेम' की मूर्ति थे । ये तीन तत्त्व उनके राजनीतिक दर्शन के महत्त्वपूर्ण अंग भी थे । उनके पीछे भारत ही नहीं था अपितु स्वयं दमनकारी ब्रिटिश अधिकारी भी उसका सन्मान करते थे । उसके

अनोखे अस्त्र 'अहिंसा' ने विश्व को एक नई चेतना प्रदान की । उसके व्यक्तित्व से सभी प्रभावित थे, मित्र भी और शत्रु भी । इसी संदर्भ में यहाँ द्रष्टव्य है कि हिन्दी उपन्यासकार ने उसके व्यक्तित्व को किस रूप में ग्रहण किया । कुछ विशेष उपन्यासों के आधार पर इस तथ्य पर विचार करने का प्रयास किया जाएगा ।

उपन्यासकार के मनोभाव जो उसके हृदय में बापू और उनके द्वारा चलाये गये 'अहिंसात्मक आंदोलन' की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न हुए थे, प्रशंसा के रूप में सत्याग्रह में दृष्टिगोचर होता है ।

"यह समाज व्यक्ति गांधी, वह पुरुष सिंह गांधी वह परमात्मा का अत्यंत श्रेष्ठ अंश गांधी जिस दिन जेल गया, सारी कौम मानो हड़बड़ाकर उठ बैठी ।"[२९] 'पुरुष और नारी' का अजीत जब साबरमती आश्रम से लौट कर आता है तब से "उसकी नस–नस में सेवा का रस भीग रहा है । ... देश के लिए लहू को पानी करने पर तैयार है ।"[३०] 'राजा' साहेब पुनः आगे कहते हैं – "गांधी तो एक मानव है । वही किसी मुल्क की ही आजादी नहीं – मानवमात्र की आजादी का संदेश लाया है ।"[३१]

बापू की वेश भूषा उनके दर्शनार्थियों की भीड़ का चित्रण भी उपन्यास में किया गया है । "बापू की संध्याकालीन प्रार्थना में आज हिन्दू मुसलमानों का ठट लगा हुआ है ।.. लकुटी लिए हुए बापू प्रार्थना सभा में पधारे । खदर की लंगोटी पहिने भव्य विभूति के दर्शनों से मनुष्य साक्षात् शांति एवं प्रेम से स्नान करने लगा ।"[३२] हिन्दू मुस्लिम, नर और नारी बालक और बूढ़ा सभी के हृदय में गांधीजी के लिए एक विशेष श्रद्धा है । विदेशी शिष्ट मंडल के गांधीजी के बारे में पूछने पर एक ग्रामीण बालक ने बापू के बारे में बतलाया – "अजी बापूजी ! भला दुनिया में ऐसा कौन है जो गांधी महात्मा और जवाहरलाल नेहरू को नहीं जानता । गांधी महात्मा हमारे गाँव में भी आए थे । उस दिन हमारे मदरसे के सामने ही उन्होंने प्रार्थना की थी, सबसे चर्खा

काटने को कहा था, सबको अपना भाई समझते हैं । तुलसी हरिजन भाई के घर उन्होंने भोजन किया था । महात्मा गांधी की जय हम रोज बोलते है ।"[३३]

'निशिकान्त' में नरमदली मनोवृत्ति के पंडित जी कहते हैं – "गांधी सबकुछ जानता है पर मानता नहीं ।... दो चार-दिन ठीक बोलता है । पर उसके बाद फिर देवत्व का ढोंग रचने लगता है ।"[३४] एक दूसरा पात्र कहता है – "गांधी तपस्वी है पर सरकार जितनी शक्ति उनके पास कहाँ है ?... जीत उसीकी होगी पर उस दिन तक न जाने कितने घर-बार उजड़ जायेंगे ।"[३५] जहाँ एक उपन्यासकार गांधीजी को निराशापूर्ण दृष्टि से देखता है । वहीं अनन्त गोपाल शेवड़े ने बापू के आंदोलन के योगदान का निम्नांकित शब्दों में उल्लेख किया है –

"गांधी ही वह अद्भुत, अगम्य शक्ति है जो गहन निराशा और पीड़ा से जर्जरित विश्व को शांति का मार्ग दिखा सकेगा ।"[३६] "गांधीजी जेल में होते हुए भी जनता के मन में निवास करते थे । जनता के दिलों का स्वामी था वह लंगोटिया फकीर जो आगा महल की चारदीवारी में बन्दी था ।"[३७] "सन्यासी" में इलाचंद जोशी ने महात्मा गांधी के व्यक्तित्व का जो चित्रांकन किया है वह भी द्रष्टव्य है – "मिस्टर मुकर्जी ने गांधीजी के चित्र को कुछ देर तक गौर से देखते हुए कहा – "बहुत सुंदर चित्र है ... क्यो साहब क्या में यह जान सकता हूँ कि इस चित्र में क्या विशेषता है ? गांधीजी की इस मुस्कान में न सरलता है न भोलापन । इनमें केवल 'केपिटेलिस्टों' की कृपा से परिपुष्ट एक आत्म-तृप्त प्राणी के सुख और संतोष पूर्ण भाव की अभिव्यक्ति में पाता हूँ । परंतु शीतलाप्रसाद मि. मुकर्जी की बात का प्रतिपाद करते हुए कहता है – "में मूर्ख को मूर्ख ही कहूँगा, चाहे वह महात्मा गांधी हो, चाहे खुद अल्लाह मियाँ ही क्यों न हो । उनके चहरे का एक्सप्रेशन देखते नहीं, एक भर पेट भोजन प्राप्त गंवार की तरह हंस रहे हैं । दक्षिण आफ्रिका

में... अपने को अर्पित करने वाले त्यागी गांधी का अंत न जाने कब हो चुका था । सच्चे गांधी को भूलकर दुनिया उसकी प्रेतात्मा को भज रही है ।"[३८]

'बलि का बकरा' में एक नये व्यक्तित्व का चित्रण मंमथनाथ गुप्त ने प्रस्तुत किया है । पंडित जी और हजारी लाल में गांधीजी अवतार है या नहीं इस बात पर वाद–विवाद होता है । पंडित जी कहते हैं – "दस तो कुल अवतार हें, उसमें से नौ हो चुके और कब एक होना बाकी है, एक अवतार जो होने वाला है उससे गांधीजी का कोई लक्षण नहीं मिलता । किन्तु हजारी लाल कहता है – "गांधीजी अवतार हैं यह तो उन तसवीरों से साबित है जो मेरी दुकान में टंगी हैं ।" "तस्वीर से क्या होता है जो जैसी चाहे खींच दे ।... वे कृष्ण हैं तो उनकी गोपियाँ कहाँ हैं ? इस पर हजारीलाल, फिर चित्र का हवाला देकर कहता है । "सब जमाने में गोपियाँ एक सी नहीं हुआ करतीं । इस अवतार में दूसरे नेता उनकी गोपियाँ हैं ।"[३९]

गांधीजी की सफेद टोपी पर गोविंदवल्लभ पंत अपनी भावना पात्र द्वारा व्यक्त कराते हुए कहते हैं – "चमक उठी सफेद टोपी । आरंभ में वह टोपी घोर अराजकताकी जननी हुई, श्वेतांग उसे देखकर भय से डरने लगा, किसान ने उसमें आशाएँ उज्जवल की ।"[४०] नागार्जुन का बलचनमा अपने मालिक के अत्याचारों से पीड़ित है । उसे अब आशा बँधने लगी है क्योंकि फूल बाबू गांधी बाबा के चेला बन गये हैं । उसके मनोभाव का अंकन देखिए – "गांधी महात्मा न बड़े लाट से डरते हैं न छोटे लाट से, न सरकार से न अमला से । गरीबों का पच्छ लेते हैं । फूल बाबू उन्हीं गांधी महात्मा के चेला होकर मेरे लिए क्या इतना भी नहीं करेंगे कि अपने फूफा फूफी (बलचनमा के मालिक) को जरा समझा दें ।"[४१] गांधीजी को 'कॉंग्रेस का डिक्टेटर' कहा जाता था । उसी का चित्रण नागार्जुन ने इस प्रकार किया है ।

"अब एक मात्र महात्मा जी कॉंग्रेस के डिरेक्टटर थे । आंदोलन पूरे उठान पर था । कॉंग्रेस ने सारे अधिकार उन्हें सोंप दिये थे ।"[४२] गांधीजी के

आहवान पर नीलकंठ सत्याग्रही के रूप में जेल चला जाता है तब उसे बच्चों की चिन्ता सताती है । जब उससे पूछा गया कि जेल आया ही क्यों तब वह कहता है कि –

"तब देश का काम था । महात्मा ने हुक्म दिया था ।"

"तब देश ही से माँगो । महात्मा क्यों नहीं दे देता ?

"ठीक से बोलो पंडित इतनी बड़ी आतमा के लिए तुम्हारे छोटे मुँह इतना बड़ा बोल नहीं सुहाता सारा जग उसके सीस नवाता है ।"[४३]

जनता गांधीजी की थी और गांधीजी जनता के थे । सारा देश बाढ़ के जल की तरह उनके पीछे–पीछे था । "गांधी ने देश को डंडा–गोली खाने की ही शिक्षा दी डंडा गोली चलाने की नहीं, जिसके बिना कभी कोई देश आजाद नहीं हुआ करता, मगर इस बाते से क्या कोई इनकार कर सकता है कि गांधी ने देश की जनता को पुकारा और जनता उसकी पुकार पर दौड़ी ।"[४४]

यशपाल ने गांधीजी का शब्द चित्र यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है । – गाँधी जी के शरीर पर केवल कमर में घुटनों से ऊपर की छोटी सी धोती थी । गर्दन झुकी हुई और चहेरा बहुत उदास था ।... उन्हें यह चानने के लिए किसी से पूछने की आवश्यकता नहीं थी । दुबला, गठीला, गहरा, शरीर, सुडौल सुरूप और सुवर्ण न होकर भी भव्य जान पड़ रहा था ।

उपर्युक्त उपन्यासों में प्रत्येक उपन्यासकार ने अपनी भिन्न–भिन्न दृष्टियों से भिन्न–भिन्न रूपों में गांधीजी के व्यक्तित्व का अंकन किया है ।

(६) उपन्यास और आश्रम स्थापना

महात्मा गांधी जब दक्षिणी आफ्रिका से भारत वापस आये तब उन्होंने देश की परिस्थिति का अध्ययन किया । सन् १९१६ में गांधी ने अहमदाबाद में सत्याग्रह आश्रम खोला और उसके बाद १९२० से उसी आदर्श पर दूसरे कई आश्रम खोले गये । हिन्दी उपन्यासकारों में सर्वप्रथम आश्रम की स्थापना मुंशी

प्रेमचंद के 'प्रेमाश्रम' में भारत लौटता है और गांधीजी विदेशी से भारत वापस आते हैं । दोनों के विदेश से आगमन में साम्य है । अंतर केवल इतना है कि एक ब्रिटेन से आता है तो दूसरा अमेरिका से । यही नहीं गांधीजी साबरमती आश्रम की स्थापना करते है और "प्रेमशंकर भी करुणा नदी के किनारे हाजीगंज में रहने का निश्चय करता है ।"[४६] शीघ्र ही "गाँव से बाहर फूस का एक झोंपड़ा पड़ गया । दो–तीन खाटें आ गईं । गाँव वालों की उन पर असीम भक्ति थी । उन्हें सब लोग अपना रक्षक अपना इष्टदेव समझते थे और उनके इशारे पर जान देने को तैयार रहते थे ।"[४७] 'साबरमती आश्रम' की ही भाँति प्रेमशंकर के आश्रम में – "लोग नये–नये सुधार के प्रस्ताव सोचते, राजकीय प्रस्तावों के गुण–दोषों की मीमांसा करते, सरकारी रिपोर्टों का निरीक्षण करते । प्रश्नों द्वारा अधिकारियों को अत्याचारों का पता देते, जहाँ कहीं न्याय का खून होते देखते, तुरंत सभा का ध्यान उसकी और आकर्षित करते... विरोध के लिए विरोध न करते बल्कि शोध के लिए ।"[४८]

गांधीजी के अनुसरण पर प्रेमचंद 'ट्रस्टीशिप' की बात 'प्रेमाश्रय' में उठाते हैं । गायत्री ज्ञानशंकर को सुझाव देती है कि "एक ट्रस्ट कायम कर दीजिये ।" ज्ञानशंकर कहता है – "ट्रस्ट कायम करना तो आसान है पर मुझे आशा नहीं है कि उससे आपका उद्देश्य पूरा हो (क्योंकि) आप अपने विचार में कितने ही निःस्पृह, सत्यवादी, दृष्टियों को नियुक्त करें, लेकिन अवसर पाते ही वे अपने घर भरने पर उद्यत हो जायेगे ।"[४९] 'ट्रस्टीशीप' के बारे में गांधीजी ने कहा था – "आर्थिक समानता की जड़ में धनिक का ट्रस्टीपन निहित है । जिस आदर्श के अनुसार धनिक को अपने पड़ौसी से एक कौड़ी भी ज्यादा रखने का अधिकार नहीं ।... इसलिए अहिंसक मार्ग यह हुआ कि जितनी मान्य हो सकें उतनी अपनी आवश्यकताएँ पूरी करने के बाद जो पैसा बाकी बचे उसका यह प्रजा की ओर से ट्रस्टी बन जाये ।"[५०] प्रेमचंद का यह स्वप्न 'कर्मभूमि' में पूर्ण होता है । वहाँ भी रेणुका का कथन है कि –

"अगर आप कोई ट्रस्ट बना सकें तो में आपकी कुछ सहायता कर सकती हूँ।"[५१] "ट्रस्ट का बनना आरंभ हो जाता है और 'सेवाश्रम का ट्रस्ट बन गया।"[५२]

महात्मा गांधी जिस प्रकार के ट्रस्ट का स्वप्न देख रहे थे वह भारतीय राजनीतिक परिस्थितियों में संभव न था। और न कालान्तर में हुआ ही। उसी भाव का छायाभास रांगेय राघव के इन शब्दों में व्यक्त हुआ है – "गांधी क्या कहते है ? आप क्या करते हैं ? आपने कितने अमीरों जमींदारों और सेठों से जोर देकर कहा कि अपना हृदय बदल डालिए। तुरंत 'ट्रस्टी' बन जाइये।"[५३]

'उग्रे ने भी 'मनुष्यानंद' में अछूत आश्रम की स्थापना की है। यह आश्रम भी 'साबरमती आश्रम' की ही भाँति पूर्ण गांधीवादी आश्रम है। उस आश्रम का एक चित्र प्रस्तुत है – "उस आश्रम में रहनेवाले दलितों को और उनकी स्त्रियों को चर्खा कातना, रुई धुनना, चरखे बनाना और बढ़ई के अन्य काम तथा सूप, पंखे, मेज, कुर्सी आदि तैयार करना बड़े धड़ल्ले से सिखाया जा रहा है। उनके बच्चों को पढ़ाया, लिखाया तथा स्वच्छता प्रेमी बनाया जा रहा है। उत्साह और बड़ा जोश है उन भूखे पतितों में।"[५४]

अजीत भी 'साबरमती आश्रम' से प्रभावित होकर वह भी रेखा नदी के तट पर एक 'आश्रम' की स्थापना करता है "वहाँ चरखे तो चले ही, करधे भी जारी हुए।"[५५] उसकी देखभाल का काम वह स्वयं करता है। "गाँव–गांव घूमता है। कृषकों का दुःख–सुख सुनता है।"[५५] बापू की भाँति नारी के उत्थान में उसका पूरा विश्वास है। आश्रम में 'महिला विभाग' की स्थापना इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु होती है। 'साबरमती आश्रम' में जहाँ बापू का 'वैष्णव जन तो तेने कहिए' अथवा 'रघुपति राघव राजा राम' का भजन कीर्तन किया करते थे उसी तरह अजीत के आश्रम में भी निम्नोक्ति तराना रोजाना गाया जाता था।

जहाँ में हमारा निशाना रहेगा,

वतन का ही हरदम तराना रहेगा,

गोली व बर्छे सहेंगे ख़ुशी से,

पर झंडा वतन का ऊँचा रहेगा ।"[५७]

गांधीजी के आश्रम में भारतीय ही नहीं विदेशी भी आया करते थे । इसी तरह विशाल जी के आश्रम में एक विदेशी महिला बड़े बड़े भारतीय नेताओं के परिचायक पत्रों को लेकर आश्रम के प्रवेश करती है । क्योंकि "अध्यात्म की क्रिड़ा–भूमि भारत ने उसका ध्यान खींचा ।" घूमते–घूमते वह भारतवर्ष में आई गांधीवादी के संपर्क में । उसे विश्वास हुआ, शांति त्याग में है, सभ्यता एक बंधन है... उसने अनेक नये पश्चिमी दार्शनिकों के मत भी संग्रह किये थे । भारतीय तत्त्व ने उस मत की भी पुष्टि की थी रंग–विहीन एक श्वेत खदर की साड़ी उसने अपने आवरण के लिए स्वीकार कर ली । निरामिस और मसालों से विहीन भोजन पर वह चलने लगी । आश्रम के सभी कार्यक्रमों में वह भाग लेती ।"[५८] यह विदेशिनी महिला और अन्य कोई न होकर परम गाँधी भक्त मीरा बहन ही हैं । मीरा बहन का बापू के आश्रम प्रवेश की घटना काम छायांकन ही पंत जी ने अपनी रचना में किया है । साबरमती आश्रम में प्रवेश लेने वाली मैडेलिन स्लेड तथा विशालसिंह के आश्रम में प्रविष्ट महिला में पूर्ण साम्य दिखाई देता है । मीरा बहन का छायाभास लेखक के मस्तिष्क में विद्यमान है ।

जैनेन्द्रकुमार गांधीवादी आस्था के उपन्यासकार कह गये हैं । 'कल्याणी' का 'तपोवन' भी उन्हीं आदर्शो का स्मरण कराता है । 'गांधी चबूतरा' की स्थापना भी गांधीजी के आदर्शो को मूर्तिमान करने के लिए की गई है । यह गांधी चबूतरा ज्योतिस्तंभ होगा मेरे गाँव का तथा पास–पड़ौस का । देखो ईश्वर की कृपा हुई तो स्वप्न पूरे ही होंगे ।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी उपन्यासों में गांधीजी के आदर्शो की स्थापना का किसी न किसी रूप में अवश्य प्रयत्न होता रहा है ।

✰ क्रांतिकारी आंदोलन का चित्रण :

(७) आतंकवाद : दार्शनिक पक्ष

'क्रांति' सम्पन्न करना कोई बायें हाथ का खेल नहीं हैं । यह साधारण व्यक्ति के वेश के बाहर की वस्तु है इसकी कोई निश्चित तिथि भी नहीं है यह वदेश की सामाजिक राजनीतिक और आर्थिक वातावरण की वशेष देन होती है । क्रांति के लिए आत्म बलिदान तथा जन–सहयोग दोनों का होना अनिवार्य है । मात्र आतंक द्वारा राजनीतिक क्रांति का सम्पन्न होना संभव भले हो परंतु दुरुह अवश्य है । फिर भी भारतीय नव–युवक ब्रिटिश साम्राज्यवाद को आतंकवादी तरीकों से उखाड़ ने का प्रयत्न करते रहे । पूंजीवादी सरकार उनके बारे में जनता में गलत फहमी उत्पन्न करती रही जिससे जनता के क्रियात्मक सहयोग के इस भुलावे में न आ सका । उसने अपनी रचनाओं के माध्यम से आतंकवाद के दर्शन को भारतीय जनता तक पहुँचाने तथा समझाने का प्रयास किया । भगतसिंह ने अदालत के सामने कहा था कि " उनका उद्देश्य मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का अंत करना तथा किसान मजदूर के प्रजातंत्र की स्थापना करना है ।"[५९]

दुर्गाप्रसाद खत्री के 'प्रतिशोध' में सर्वप्रथम विप्लव वादी आंदोलन का प्रशस्ति परक चित्रण मिलता है "यह कोई नहीं देखता कि लंबी चौड़ी वक्तृताएँ झड़ँने और मोटरों पर दौरे करने वालों से कितना अधिक त्याग वह क्रांतिकारी कर रहा है । जिस की आवाज पिस्तौल की गोली है और जिस की सवारी अरथी ।

यह कोई नहीं कहता कि क्रांतिकारी तुम्हीं देश के बंधु हो, दस हजार नेता वह नहीं दे सकते जो तुममें का एक–एक हँसते हँसते दे डालता है । ... आओ मेरे गले लगो सभी उसे ठुकराते हैं और सभी उसका अपमान करते हैं ।''[६०]

क्रांतिकारी आतंक क्यों उत्पन्न करता है क्योंकि वह ''अपनी इस पराधीन मातृभूमि का दुःख दूर''[६१] करना चाहता है । इसलिए वह – ''आततायी का वध''[६२] करता है । प्रतिशोध की यह भावना ''रक्त मंडल' में जाकर स्पष्ट होती है । ''देश को जिस तरह से हो सके स्वतंत्र करना उसका मुख्य उद्देश्य था ।''[६३] यशपाल ने अपने संस्मरणों में यहीं भाव व्यक्त करते हुए कहा है – ''हम सुधारों की नहीं बल्कि व्यवस्था बदल देने की माँग करते हैं ।''[६४] इसी ब्रिटिश शासन व्यवस्था को बदलने के लिए विप्लववादी संपूर्ण देश में गुप्त संगठनों की स्थापना करते थे । 'रक्त मंडल' के 'भयानर चार' ने सन् .... के लगभग बहुत जोर बाँधा था । यहाँ तक कि सरकार भी इनसे घबड़ा गई थी मुल्क भर में इस मंडल की साखें थी ।''[६५] 'रक्तमंडल' के 'भयानक चार' की स्थापना दुर्गाप्रसाद खत्री ने प्रस्द्धि क्रांतिकारी रास बिहारी, राचीन्द्रनाथ सान्याल, चंद्रसेखर आजाद, भगतसिंह आदि किसी न किस में से की हैं । ऐसा विश्वास होता है । क्योंकि ब्रिटिश दमन से बचने का केवल प्रतीक ही आधार था । आतंकवाद के उद्देश्य को 'रक्तमंडल' के दूसरे खंड में पुनः स्पष्ट करते रक्त मंडल का एक आदमी कहता है –

''भाई हिन्दीयो ! आज हम लोग बहुत दिनों के बाद इकट्ठे हुए हैं । रक्तमंडल की पिछली बैठक में यह तय हो चुका था कि अब बातचीत और सलाह–विचार का समय बीत गया और काम करने का वक्त, जिनके माने सरकार से मोर्चा लेने का वक्त आ गया है ।''[६६] यह नहीं स्वाधीनता अपनी कीमत प्राणों की आहूति से माँगती हैं । और वह उसके पाने की इच्छा करने वाले को अदा करनी ही पड़ेगी । देश की स्वतंत्रता की भी एक किंमत है

और वह हमें देनी ही पड़ेगी ।"[६७] " 'सफेद शैतान' में भी इसी भाव की आवृत्ति की गई है ।"[६८]

क्रांतिकारी आंदोलन को सजीवनी प्रदान कराने वाले श्री अरविंद थे । उसकी प्रेरणा से ही क्रांतिकारी आगे बढ़े । राजा राधिकारमण प्रसादसिंह ने उसके योगदान का वर्णन इस प्रकार किया है – "जिस मदारी के डमरु पर क्रांतिकारीयों का दल कुर्लांच लेता रहा वह दिकपाल तो श्री अरविंद है, यह दृष्टिकोण तो हर गोरे अफसर का निरंतर बना रहा है । काफी सबूत न पाकर अलीपुर के सेशन जज ने उन्हें जो रिहा कर दिया हो, पर फिरंगियों की निगाह में उनकी सफाई कभी न थीं ।"[६९]

प्रथम विश्व युद्ध के बाद आतंकवाद सक्रिय रूप में पुनः उठ खड़ा हुआ था । उसकी ओर 'आत्मदाह' में संकेत किया गया है । "यह वह समय था जब युद्ध के बाद की शांति–सभा से भारत निराश हो गया । देश में उद्वेग उत्पन्न हो गया था । पंजाब और बंगाल में क्रांतिकारी दल बन गये थे ।"[७०] आचार्य चतुरसेन ने यथार्थ रूप में क्रांतिकारी दल–निर्माण के प्रसार के तथ्यों को उपन्यास में ग्रहण किया है – "बंगाल के अनुकरण में काशी, दिल्ली और लाहौर में विप्लव केन्द्रों की सृष्टि हुई ।"[७१] बलिदान में शेखर भी विनय से अपना विप्लवी उद्‌देश्य स्पष्ट करते हुए कहता है – "अहिंसा ही अहिंसा में आज देश की कितनी विभूतियाँ जेलों में सड़ रही हैं । कितने हत्याकांड हो रहे हैं । मुझे अब अहिंसा में विश्वास नहीं रहा । में गुरिल्ला युद्ध की योजना बन चुका हूँ कलकता, कानपुर, दिल्ली प्रयाग और मेरठ आदि में आजाद सभा के गुप्त कार्यालयों की स्थापना हो चुकी है ।"[७२]

अनंत गोपाल शेवड़े ने भी आतंकवादी आंदोलनकारी के उन मनोभावों को अपनी रचना में यथावत् रूप में चित्रण किया है जिन्हें फाँसी की सजा सुनने के बाद अदालत में भगतसिंह ने अभिव्यक्त किया था । जब जज अभियुक्त अजयकुमार से पूछता है –

"इस आंदोलन में हिस्सा लेने में तुम्हारा क्या ध्येय था ?

"अपने देश की आजादी ।"

"आजादी का मतलब ? "

"विदेशी शासन से पूर्णतः मुक्ति !"

"यानी तुम अंग्रेजी शासन हटाना चाहते हो ।"

"अवश्य ।"

"किसी भी मार्ग से ?"

"स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए कोई भी मार्ग अखित्यार किया जाय उचित है ।"

"हिंसा का भी ?"

"जी हाँ ।"[७३]

'शेखर एक जीवनी' में 'अज्ञेय' ने पूँजीपति वर्ग में आतंकवर्ग के प्रति विद्यमान उपेक्षा का उत्तर विद्याभूषण नामक पात्र के द्वारा दिलाया है । उनका कथन है "सबसे पहले तो उन्हें आतंकवादी कहना ही अन्याय है । यद्यपि आतंकवाद को वे अपने कार्यक्रम से बाहर नहीं निकालते । आजकल के जमाने में जिस आदमी का राजनीतिक दर्शन आतंकवाद तक जाकर समाप्त हो जाता है वह मानसिक विकास की दृष्टि से सात साल का बच्चा है । साफ बात यह है कि उसमें इतना नैतिक बल ही नहीं हो सकता जितना कई आंतकवादी कहलाने वालों में सब लोग मानते हैं ।"[७४]

क्रांति तो साक्षात् महर्षिमर्दनी है । मोहन का कथन हैं 'मैं उसे देवी मानता हूँ ।... में श्रेणी युद्ध में विश्वास करता हूँ और प्रत्येक प्रकार के शोषण का अंत कर देना चाहता हूँ ।"[७५] "अंचल" पु आतंकवादी क्रांति का अनुभव करते हुए कहते है – "हमारे समाज की भयंकर समस्या और नाटकीय विषमता का निपटारा युद्ध में हैं । ... पूँजीवादी स्वार्थों के विनाश में

हैं ।... क्रांति में है... कोटि–कोटि शोषित श्रमिकों कृषकों की हुँकार में हैं – व्यक्तिवादी आत्म अभिव्यक्ति में नहीं हिंसा में हैं, अहिंसा में नहीं ।"[७६]

यशपाल भी 'दादा कामरेड' में कहते हैं कि "हमारा उद्देश्य तो है, इस देश की जनता का शोषण समाप्त कर उसके लिए आत्मनिर्णय का अधिकार प्राप्त करना ।"[७७] 'कल्याणी' में क्रांतिकारी आंदोलन के दर्शन पर विचार हुआ है । यथा "क्रांतिकारी आंदोलन राष्ट्रीय जागरण में कभी अनावश्यक नहीं ।... उसकी सतत आवश्यकता है । असल में वह युद्ध का अग्रिम मोर्चा है ।"[७८]

क्रांतिकारी मन्मनाथ गुप्त जो स्वयं भी भुक्तभोगी रहे हैं, ने अमिताभ पात्र के माध्यम क्रांतिकारी आंदोलन का उद्देश्य बतलाया है । अभिताप का कहना है कि – "सबसे बड़ी बात है खोई हुई अवस्था का पुनरुद्धार... राजनीतिक स्वतंत्रता तो साधारण लोगों के लिए है, नहीं तो किसी शहीद को लीजिए जैसे खुदीराम बोस, कन्हाई लाल, कर्तारसिंह इनके लिए कैसी स्वतंत्रता कैसी परतंत्रता क्योंकि... वे अपने लिए नहीं लड़ रहे थे बल्कि जनता के लिए लड़ रहे थे ।"[७९] यद्यपि क्रांतिवाद और आतंकवाद का उद्देश्य एक है फिर भी उसके सूक्ष्म अंतर को इस प्रकार अभिव्यक्त किया गया है, "क्रांतिकारी जनता के इतिहास निर्माण में भाग लेता है और आतंकवादी स्वयं ही अपने त्याग, तपस्या, तथा वीरता से इतिहास निर्माण करने के लिए चल देता है ।"[८०] अमृतराय ने आतंकवादी आंदोलन पर प्रकाश डालते हुए कहा है – "यह पुलिस के डंडे खाना भी कोई लड़ाई है ।... लाठी का जवाब लाठी यह तो ठीक है मगर यह बकरी की तरह सिर झुकाकर डंडे खाना छिः इस तरह भी क्या कभी कोई मुल्क आजाद हुआ है ?... आजादी की लड़ाई का मतलब है हथियारों की लड़ाई ।"[८१] क्योंकि आतंकवादियों का विश्वास था कि अंग्रेज सरकार पशुबल के आधार पर निर्मित है । वह एक विषैली संस्था है । अतः उसे हिंसक तरीकों से नष्ट करने में कोई बुराई नहीं है ।"[८२] शिवानंद यशोदा से अरुणानंद की बहन के बारे में पूछता है कि –

"क्या वह भी सन्यासिनी है ?" "नहीं उसका भाई क्रांतिकारी दल में है ।"

"यह क्या चीज है ?"

"देश सेवकों का एकदल जो अंग्रेजों को देश से भगाना चाहता है ।"[८३]

डॉ. शेफाली के भी क्रांतिकारी दल में एक महिला अपने सम्मिलित होने का उद्देश्य बताते हुए कहती है – "दीदी में तुमसे सच कहती हूँ कि में जिस दल में शामिल होने जा रही हूँ वह मेरे उद्देश्य के सबसे अधिक निकट है ।"

"क्या ?"

"क्रांतिकारी दल के प्रयत्नों के द्वारा देश को स्वतंत्र करना ।"[८४]

क्रांतिकारी आंदोलन को बंगाल से गति मिली थी । वहीं से वह उतर भारत में फैला । बाबा बटेसरनाथ उसी की कहानी दुहराते हुए कहते हैं – "बंगाल के नौ जवान महात्मा गांधी के असहयोग और सत्य अहिंसा की बातों में आस्था नहीं रखते थे । दुश्मनों को पछाड़ने के जितने भी तरीके हैं वे उन्हें आजमाने के पक्ष में थे ।"[८५]

(८) आतंकवादी कार्यकलापों का अंकन

आतंकवादी क्रांतिकारी दल के नेताओं ने देश में फैले विभिन्न गुप्त दलों को एक सूत्र में पिरोने के लिए प्रयास किया था । उसकी एक गुप्त बैठक भगतसिंह तथा चन्द्रशेखर आदि ने की थी । क्योंकि छोटे छोटे दलों को मिलाकर सशक्त रूप में ब्रिटिश साम्राज्य को सुगमता से उखाड़ा जा सकता है । "यहीं विचार कर इधर कुछ समय से सभी क्रांतिकारियों को एकत्र करके एक साथ मिला देने की चेष्टा हो रही है । काफी बातचीत और उद्योग के बाद हम चार आदमी आज एक हफ्ते से इस जगह एकट्ठे हैं । में गुरु बक्ससिंह पश्चिम की गदर पार्टी का मुखिया हूँ । ये अल्लादीन उस देश की

दक्षिणी सीमा की उस मसहूर पार्टी के मुख्य कार्यकर्ता हैं जिसने शासकों की नाक में दम कर दिया है । ये रास बिहारी मशहूर बगगेंग के सर्वेसर्वा हैं । और ये रघुनाथ सिंह उतर के क्रांतिकारियों के सरगना हैं ।"[८६] प्रस्तुत चित्रण ऐतिहासिक होने के साथ–साथ देश और काल की कसौटी पर भी यथार्थता लिए हुए है । क्रांतिकारी अपना काम गुप्त रूप से करते थे । ताकि ब्रिटिश दमन चक्र से बचा जा सके । 'जीने के लिए' में मोहनलाल का कथन है – "हमने आतंकवादियों की गुप्त समितियाँ सफलतापूर्व संगठित की हैं ।"[८७] ब्रिटिश सरकार आतंकवादियों से परेशान थी । उनको पकड़वाने के लिए इश्तिहार बाँटे जाते थे, इनाम रखा जाता था । 'यशपाल' तथा 'आजाद' की फरारी पर भी ऐसा ही इनाम ब्रिटिश सरकार ने रखा था ।"[८८] 'मुक्ति के बंधन' के "कुमार को जीवित या मरा पकड़ लाने वाले के लए एक सहस्त्र रूपये के पुरस्कार की घोषणा की । जगह–जगह उसके चित्र समाचार पत्रों में छापे गये, दीवारों पर चिपकाये गये । ग्रामों में बाँटे गये ।"[८९] ऐसा ब्रिटिश नौकरशाही प्रायः किया करती थी । गोविंद वल्लभ पंत ने भी उसी नौकरशाही के कार्यक्रम का रेखाचित्र प्रस्तुत किया है ।

प्रेमचंद जब 'कर्मभूमि' की रचना कर रहे थे उस समय तक भारतीय नव युवकों का आंदोलन भी संगठित हो गया था । बंगाल 'तरुण–समिति', ' पंजाब तथा संयुक्त प्रांत में नौजवान भारत सभा के नाम से यह काफी प्रसिद्ध हो चुका था । 'कर्मभूमि' में शांतिकुमार के कथन द्वारा प्रेमचंद ने ऐसे ही युवक–सत्याग्रह के बारे में कहलाया है कि – "आज 'नौजवान सभा' के दस बारह युवकों को तैनात कर आया हूं नहीं इसकी चौथाई हड़ताल भी न होती ।"[९०] प्रेमचंद ने उसी नव–युवक आंदोलन की छाया की ओर यहाँ संकेत किया है । रघुवीर शरण मित्रने भी युवकों के एक अन्य संगठन का चित्रण बलिदान में किया है । 'बलिदान' का शेखर सुखवीर से पूछता है – "कहो सुखवीर हिन्दुस्तान में क्या हाल है ? आजाद सभा का संगठन कैसा है । अब

हमें हर प्रांत हर नगर में सभा के कार्यलय पूरी शक्ति से स्थापित करने है ।"[६१] आजाद सभा भी एक गुप्त संगठन है । आतंकवाद के विकास पर 'ब्रिटिश भारत की एक गोपनीय पत्रावली' में देश के विभिन्न प्रांतों में स्थापित गुप्त संगठनों पर प्रकाश डाला गया है । रघुवीर शरण मित्र ने आतंकवादियों के उसी प्रकार का चित्रण किया है । यहीं नहीं मुख्य–मुख्य ठोस आतंकवादियों की सूची भी शेखर तैयार करता है और कहता है – "खुदीराम बोस, वीरसिंह अशफाक अल्ला खाँ... को तार देकर हवाई जहाज में बनारस बुलाओं ।"[६२] बैठक होती है पर पूर्ण सतर्कता के साथ "खुदीराम' 'असफाक उल्ला खाँ" दोनों ही ऐतिहासिक क्रांतिकारी शहीद हैं ।

गुप्त संगठनों के अतिरिक्त उपन्यासकारों ने आतंकवादियों की कार्य प्रणाली का भी अंकन किया है । क्रांतिकारी साधुओं आदि के वेश में रहते थे । यशपाल ने सिंहावलोकन[६३] में भी इसकी चर्चा की है । वेश बदलना आतंकवादियों के जीवन का अभिन्न अंग था । 'बलिदान' का शेखर भी पुलिस की पकड़ से बचने के लिए ऐसा ही रूप धारण करता है । यथा – "शेखर ने लाल किनारी बाकि धोती बाँधी । राम नाम का दुपटा ओढ़ा, पोथा–पतरा बगल में दबाया और फिर दुपहर को स्टेशन की सड़क के किनारे बोरी बिछाकर बैठ गये । सलेट पर उल्टी सीधी पाँच लाईनें खीचीं किसी का हाथ देखा । किसी की जन्मपत्री जाँची । किसी को कुछ बताया, किसी को कुछ ।"[६४]

'शेष–अशेष' में भी साधुओं के भेष में आतंकवादी क्रांति की योजना बनाते हैं । 'चिदम्बर की योजना थी कि सब दल के साधुओं की सेना बनाई जाये जिस में उदासी, निर्मला, कबीर पंथी, वैरागी, सभी साधु हों और ये अंग्रेजों से लड़कर उन्हें देश से बाहर निकाल दे ।"[६५] हरिशरणनंद भी यही बात कहते है कि "अब हम लोगों का उद्देश्य है कि इस प्रकार का साहित्य तैयार किया जाये कि अंग्रेजों के प्रति इतनी घृणा से उबल पड़े ।"[६६] क्रांतिकारी

अपना प्रचार इश्तिहारों के द्वारा करते थें । " 'हिन्दुस्तानी प्रजातंत्र दल' का एक परचा लाहौर में बलराज के दस्तखत में बाँटा गया था ।"[९७] 'शेष–अशेष' के क्रांतिकारी साधु भी इश्तिहार बाँटते थे । उनमें बड़े जोरदार शब्दों में साधुओं से अपील की गई थी । आग बरसाती हुई भाषा साधुओं को संगठित होकर देश से विदेशियों को निकालने पर जोर दिया था । अंग्रेजों ने देश में जो अत्याचार किये थे उनका ब्योरेवार वर्णन विस्तृत तालिका सहित दिया गया था ।"[९८]

यशपाल ने अपनी जीवनी 'सिंहावलोकन' में कहा है – "हिन्दुस्तानी प्रजातंत्र दल के सदस्य अपने हस्ताक्षरों से पर्चा बाटते थे ।"[९९] रक्त मंडल में भी 'भयानक चार इश्तिहारों द्वारा जनता में जागरण उत्पन्न करते है । उनके इश्तिहार का विवरण इस प्रकार खत्री जी ने दिया है – "अब हम एक आखिरी चोट उस जालिम विदेशी सरकार को पहुँचाना चाहता हैं जिसने अपना कबजा–जबर्दस्ती हमारे देश पर जमा रखा है । तीन रोज बाद इस समस्त प्रांत के उन भागों पर बम बरसाये जायेंगे जहाँ फौजी छावनियाँ सरकारी दाक्तर खजाने, कचहरियाँ या ऐसे ही दूसरे मुकाम हैं ।

रेलो को लूटना, उन्हें रोकना आतंकवादियों के लिए साधारण बातें थी । प्रेमचंद ने 'रंगभूमि' में युगीन आतंकवादी गतिविधि का संकेत सोफिया के इस कथन द्वारा चित्रित किया है – "पुलिस से बचने के लिए ही मेंने रास्ते में गाड़ी को रोक कर सवार होने की व्यवस्था की ।"[१००] इसी प्रकार की अन्य गुप्त समिति का वर्णन 'मुक्ति के बंधन' में भी मिलता है । स्वामी दयानंद ने भी "नगर के एक कोने में – अंधेरे गोठ (तहखाने) मे हिन्दी समिति नामक एक संस्था खोल रखी है । इन षड़यंत्रकारियों का एक क्लब समझिये उसे । हिन्दी तो एक नाम का धोखा है । ये जरूर वहाँ छिपकर बम बनाते होंगे ।"[१०१] बंगाल में जब खुली संस्थाओं का दमन होने लगा तो उसका परिणाम यह हुआ कि सारे देश में नेताओं ने गिरफतारी से बचने के लिए

गुप्त समितियों का प्रचार किया ।"[१०२] कलकते के जोड़ा बगान नामक मुहल्ले में एक बम फैक्टरी पकड़ी गई थी ।"[१०३]

'कल्याणी' और 'सुखदा' में फरारी का जीवन था 'एब्सर्ड कांड', 'मकान की तलाशी' आतंकवादी का 'बाल–बाल बच निकलना' 'गुप्त सभा' का आयोजन आद्यि अनेक प्रसंग जैनेन्द्र ने प्रसंगवशात चित्रित किए हैं ।"[१०४]

यशपाल, गुरुदत्त तथा रांगेय राघव आदि ने भी आतंकवादी गतिविधियों का अंकन अपनी रचनाओं में किया है ।

(६) गदर आंदोलन

भारतीय आतंकवादी क्रांतिकारी बड़ी गुप्त रीति से गदर की तैयारी में लगे थे । यतीन्द्रनाथ के नेतृत्व में पंजाब अंदर ही बंगाल से जोड़ दिया गया था । गदर की तैयारी व्यवस्थित रूप से ही की गई थी । यह खुला सैनिक विद्रोह था, जो अमेरिका से लौटे भारतीयों द्वारा गदर के रूप में सन् १९१५ ई. में किया गया था । भारतीय सैनिकों के गदर के लिए तैयार करने का पुरा प्रयत्न किया गया ।"[१०५] पुलिस स्टेशनों को लूटकर हथियार प्राप्त करना, उसके उपरांत डाकघरों तहसीलों, खजानो को लूटकर तथा रेलों, पुलों और जेलों को तोड़कर अंग्रेजी सरकार को समाप्त करना गदरियों का एकमात्र उद्देश्य था । 'रक्तमंडल' मेंइसी गदर आंदोलन का उद्देश्य चित्रित किया गया । अमर कहता है – "मेरे मंडल का हुक्म है कि इस देश में जितनी भी फौजी छावनियाँ है सब उड़ा दी जायें । में उसी काम के लिए आया हूँ । मेरा पिता मेरे काम में बाधा देता है तो में उसे अपने रास्ते से हटाकर अपना काम करुँगा ।"[१०६]

गदरियों के आंदोलन पर टिप्पणी करते हुए गोपाल कहता है । "अभी तो आपकी दो ही तीन छावनियाँ उठी हैं, जिस समय समूचे देश की छावनियाँ इसी तरह उड़ा दी जाएँगी और तब लाटों की कोठियाँ, कमांडर इन चीफ के

बंगलों, छोटे–मोटे अफसरों के मकानों ओर दफ्तरों तथा कचहरियों की बारी आएगी उस समय तीन सप्ताह के भीतर यहाँ से शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य का नाम निशान मिट जाएगा ।"[१०७] इसी प्रकार 'गदर' के खुले विद्रोह पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है – "देश में गुप्त रीति से जो कुछ आंदोलन हम लोग कर सके हैं उसका भी प्रभाव आशाजन हुआ है । अस्तु इस समय हम लोगों की राय में खुला विद्रोह कर लेने का बड़ा सुंदर मौका आ गया है ।"[१०८]

'आत्मदाह' में भी इसका चित्रण मिलता है । "इधर क्रांतिकारी दल बढ़ रहा था । आतंक के बल पर भारत को स्वाधीन किया चाहता था । युद्ध काल में जो इस दल ने विफल चेष्टाएँ की थीं अब फिर बल आ रहा था ।"[१०९] 'गदर' पार्टी के कता–धर्ता रासबिहारी बोस के अतिरिक्त सरदार करतार सिंह सराबा तथा गुजरसिंह आदि थे । निर्देशक के रचनाकार ने गदर आंदोलन की भावात्मक संयोजना की है । गदर पार्टी के सिख–बाबा साम्राज्यवादी जेलों के भीतर सड़ रहे थे । क्रांति कई नौ निहालों को फाँसी पर झुला चुकी थी । उनका शहीद हो जाना नव–युवकों को रोमांच करता था । 'सिख बाबा' और कोई अन्य व्यक्ति नहीं थे, वे थे 'करतार सिंह सराबा' जिन्हें कारावास की कोठरियों में जीवन बिताना पड़ा ।

(१०) राजनैतिक डकैतियाँ

विप्लववादियों ने अपने जीवन में हमेशा साहसी कामों को ही महत्त्व दिया । क्रांति के प्रचार के लिए तथा अस्त्र–शस्त्र की आवश्यकता को पूर्ण करने के लिए राजनीतिक डकैतियाँ डाली जाती थी । क्योंकि "जनता से माँग न सकने की अवस्था में धन पाने का एक ही उपाय था, राजनैतिक डकैती करना, इसलिए क्रांति के जितने भी प्रयत्न हुए, उनका आरंभ प्रायः राजनैतिक डकैतियों से हुआ ।"[११०]

'रक्तमंडल' के क्रांतिकारी भी भारतीय क्रांतिकारियों की भाँति राजनीतिक डकैती पर विश्वास करते हैं क्योंकि "रक्त मंडल" ने एक बड़ा भारी काम अपने सिर पर उठाया है, स्वदेश को जुल्मियों के पंजे से छुड़ाना । उसके लिए सबसे बड़ी जरूरत रूपये की है ।... जिनके पास रुपये हैं वे इस काम के लिए खर्च करने को तैयार नहीं है । लाचार होकर हमें... जिस तरह जहाँ से और जैसे मिलता है रुपया लेना पड़ता है ।

'रंगभूमि' का वीरपाल भी सरकारी खजाना लूटता है । लगता है प्रेमचंद के अंतर्मन में क्रांतिकारियों की राजनीतिक डकैतियाँ विद्यमान रही हों । कांकोरी षड़यंत्र की भी छाया इसमें निश्चित संभव है क्योंकि वीरपाल भी आतंकवादी है ? विनय जब उससे पूछता है कि राज्य के नौकरों को नेस्तनाबूद क्यों करना चाहते हो । तब वीरपाल स्वयं अपना उद्देश्य स्पष्ट करता है । उसका उद्देश्य आतंकवाद के उद्देश्य से साम्य रखता है । दोनों ही नौकरशाही के अत्याचारों से पीड़ित जनता के मुक्ति के आकांक्षी हैं । वीरपालसिंह का कथन है – "आपको इन लोगों की करतूतें मालूम नहीं हैं । ये लोग प्रजा को दोनों हाथों से लूट रहे हैं । इनमें न दया है न धर्म । जिसे घूस न दीजिए वही आपका दुश्मन है ... कोई फरियाद नहीं सुनता कौन सुने, सभी एक ही थैली चट्टे–बट्टे है ।"[१११] कांकोरी ट्रेन कांड नौ अगष्ट १९२५ को हुआ था । और उसके अभियुक्तों को ६ अप्रेल १९२७ को अदालत ने सजा सुना दी ।"[११२] 'रंगभूमि' का रचनाकाल १९२५–२७ है और काकोरी षडँयंत्र का घटनाकाल तथा उसकी अदालती कार्यवाही का अंत भी १९२७ ई. है । इससे संभव है कि प्रेमचंद ने वीरपाल द्वारा सरकारी खजाने की गाड़ी लूटने के प्रसंग 'काकोरी' के रेलगाड़ी के खजाने को लूटने की घटना से ग्रहण किया हो । वीरपालसिंह के बारे में सरकारी अमला छान–बीन के बाद कहता है – "यह मालूम था कि वह डाकू है... उसने यहाँ से तीन मील पर सरकारी खजाने की गाड़ी लूट ली है । और एक सिपाही की हत्या पर डाली है ।"[११३] ब्रिटिश नौकरशाही की

दृष्टि में आतंकवादी भी तो मात्र आतंकवादी डाकू ही थे । स्वयं 'बिस्मिल' कहते हैं "हम लोगों को डाकू बताकर फाँसी और काले पानी की सजाएँ दी गई हैं... राज्य में दिन के डाकुओं की प्रतिष्ठा है ।"[११४] यशपाल ने 'दादा कामरेड' में इसी आक्षेप का प्रत्युतर शैल के शब्दों में दिया है । वह अपने पिता से कहती है – "पिता जी वे डाकू नहीं है, वे मनुष्य समाज के लिए एक नये युग का संदेश लेकर आए हैं । समाज के कल्याण के लिए ही समाज के अत्याचार को सहन कर रहे हैं ।"[११५]

अन्य उपन्यासकरों में जिन्होंने राजनीतिक डकैतियों का वर्णन अपने उपन्यासों में किया है – उसमें यशपाल (दादा कामरेड) जैनेन्द्र कुमार (सुनीता), वृंदावनलाल वर्मा (अंचल मेरा कोई) तथा गुरुदत्त (स्वाधीनता के पथ पर) मुख्य हैं ।

(११) काकोरी ट्रेइन काँड

राजनैतिक डकैतियों की परंपरा में कांकोरी का ऐतिहासिक महत्त्व है आतंकवादियों ने राजनीतिक कार्यो के संचालन के लिए धन की कमी होने पर सहारनपुर लखनऊ के बीच कांकोरी स्टेशन पर रेल से सरकारी खजाना लूट लिया था । उपन्यासों में उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण घटना का अंकन मन्मथनाथ गुप्त के उपन्यासों में सर्वाधिक हुआ है । क्योंकि वे स्वं 'काकोरी षडयंत्र' के अभियुक्त थे ।

रक्त मंडल के षड्यंत्रकारी भी खजाने की गाड़ी लूटते हैं । सरकारी कर्मचारियों को संबोधित करते हुए उनका एक साथी कहता है – "खजाने की गाड़ी छोड़ कर तुम लोग फौरन पीछे लौट जाओ, नहीं तो एक आदमी थी जीता बचने न पाएगा ।"[११६]

'रैन अँधेरी' में 'काकोरी काँड' का वर्णन करते हुए मन्मथनाथ गुप्त लिखते हैं – "यह तो तय हो ही चुका था कि खजाना लखनऊ में नहीं

लूटना है । तब अविनाश नामका पात्र कहता है – क्यों न ऐसा किया जाय कि जब यह गांडी किसी छोटे स्टेशन पर खड़ी हो तो हम उसे वहाँ पर लूट ले । परंतु 'वीरान जंगल में जंजीर खींचकर गांडी के खजाने को लूटने की बात तय हो गई । गांडी से खजाने का लूटना, अभियुक्तों का गिरफतार होना, मुखबिरों द्वारा झूठा गवाह बनाना, अभियुक्तों को सजा का दिया जाना आदि प्रसंगों का उपन्यास में चित्रण है । जानसन नामक अंग्रेज कहता है – "षड्यंत्र तो साफ है । ये लोग डकैतियाँ भी करते रहे हें, ट्रेन डकैती भी इन्हीं लोगों ने की, कई जगह सरदार गोली चलाकर भाग गया और अब इन लोगों ने मिस्टर बनर्जी की हत्या करके ब्रिटिश सरकार को खुली चुनौती दी है । 'काकोरी' के अभियुक्तों में 'आजाद' गिरफतार नहीं हुए थे, वे फरार हो गए थे । उपन्यास में उल्लिखित 'सरदार' शब्द उन्हीं की ओर संकेत करता है । यद्यपि इस षड्यंत्र के विधिवत नेता पं. रामप्रसाद बिस्मिल थे ।

'लाहोर षडयंत्र' का वर्णन भी 'रैन अंधेरी' में किया गया है । 'लाहौर में भगत सिंह पर मुकदमा चल रहा था । इसी मुकदमे के श्री यतीन्द्रनाथ दास सान्याल राजनीतिक कैदियों के लिए विशेष व्यवस्था की माँग रखकर बासठ दिन के अनशन के बाद शहीद हो गए । उपन्यासकार ने क्रांतिकारी घटना का यथार्थवादी अंकन प्रस्तुत किया है । यतीन्द्रनाथ की तपस्या अब पूरी हो चूकी थी । ... देश का प्यारा यतीन्द्र बोरस्टल जेल में साम्राज्यवाद के विरुद्ध लड़ते हुए शहीद हो गया ।

(१२) अधिकारी वर्ग की हत्याएँ

आतंकवादी अपने उद्देश्य की पूर्ति में बाधक सरकारी कर्मचारियों की प्रायः हत्या किया करते थे । जिनमें छोटे से पुलिस के सिपाही से लेकर भारत का वाइसराय तक उनकी गोली का निशान बनता था । अपने उद्देश्य के लिए यदि उनको हत्या डकैती या अन्य कोई भी बात करनी पड़ती तो वे

उसके लिए तैयार रहते थे । 'रंगभूमि' की सोफिया के द्वारा जसवंतनगर के दरोगा की हत्या का चित्रण आतंकवाद की गतिविधियों का ही युगीन प्रभाव है । जैसा कि पहले कहा जा चुका है प्रेमचंद 'खुदीराम' के प्रशंषकों में थे । खुदीराम को पकड़वाने में एक दरोगा का हाथ था । व्रफुल्चा की ने उस दरोगा को जिसका नाम नन्दलाल मुकर्जी था, मारने का प्रयत्न भी किया था । भाग्यवश वह बच गया पर कुछ दिन बाद नंदलाल क्रांतिकारियों द्वारा दिन दहाडे कलकता में मारे गए । 'रंगभूमि' में दरोगा की हत्या का अंकन विनय के मनोभावों द्वारा व्यंजित हुआ है – विनय ने पूछा, तो मालूम हुआ कि इसका पुत्र जसवंत नगर के जेल का दरोगा था, उसे दिन–दहाडे किस ने मार डाला । सोफी ने कोरी धमकी न दीथी । मालूम होता है, उसने गुप्त हत्याओं के साधन एकत्र कर लिए है ।

पंजाब के गवर्नर जब पंजाब विश्वविद्यालय का दीक्षान्त भाषण करके लौट रहा था, उन पर हरकिशन नामक युवक ने गोली चला दी थी और उन्हें जख्मी कर दिया था । उसी घटना को 'भारत जाग उठा' में इस प्रकार अंकित किया गया है । सबेरे सड़ँक पर अखबार वाला चिल्लाता जा रहा था – गवर्नर साहब पर गोली का निशाना, गवर्नर महोदय बाल–बाल बचे ।''[१७] लाला लाजपतराय की मृत्यु से दुःखी होकर भगतसिंह आदि ने स्टाफ के बदले सेन्डर्स (जो एक उच्च पुलिस अधिकारी थे) को गोली से उड़ा दिया था । इस घटना का वर्णन 'आत्मदाह' में भी मिलता है – ''टेलीफोन खड़का कि लाहौर में पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट को पिस्तौल से उड़ा दिया गया है । चारों तरफ पुलिस ने पड़ाव डाल दिये हैं और हत्याकारी की तलाश बडीं सरगर्मी से की जा रही थी ।''[१४८]

'चटगाँव शस्त्रागार कांड' का क्रांतिकारी आंदोलन के इतिहास में विशेष महत्त्व है । असनुल्ला हत्याकांड का वर्णन 'अपराजित' में मिलता है, जो वास्तविक काण्ड है । तथा अभी महात्मा गांधी के विलायत खाना हो जाने की

खबर ठंडी नहीं हो पाई थी कि हरिपद नामक चौदह साल के एक लड़के ने चटगाँव शस्त्रसागर काण्ड के तहकीकात करने वाले पुलिस इन्स्पेक्टर असनुल्ला को खेल के मैदान में गोलियों से उड़ा दिया । इस वर्णन में हरिपद की उम्र का अंतर अवश्य है । शेष वर्णन भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन का इतिहास से यथावत रूप में मिलता है ।

क्रांतिकारी दल को व्यवस्थित रूप से चलाने के लिए प्रायः दल के गैर जिम्मेदार सदस्य को मौत के घाट उतार दिया जाता था । इस प्रकार की सजा दल के गुप्त कार्यों की सूचना बारह भेजने पर दी जाती थी । 'दादा कामरेड' में यशपाल ने इसी प्रकार की वैयक्तिक घटना का चित्रण किया है । यशपाल और चन्द्रशेखर आजाद के दल की एक महिला कार्यकर्ता सुश्री प्रकाशवती को लेकर मतभेद उत्पन्न हो गया था । यशपाल और प्रकाशवती का वैयक्तिक संबंध इसका एकमात्र कारण था । 'आजाद' ने यशपाल का मुखबिर बनने का भय हो रहा था । यशपाल अपने स्मरणों में स्वयं लिखते हैं कि – उनके एक साथी वीरभद्र ने बतया कि केन्द्रीय समिति की बैठक हो चूकी है और उसमें निर्णय हुआ है कि तुम्हें यहाँ बुलाकर शूट कर दिया जाये ।"[११६] उपर्युक्त संदर्भ का चित्रण थोड़े से परिवर्तन के साथ 'दादा कामरेड' में किया गया है ।

"लिफाफे के भीतर कागज पर अंग्रेजी के टाईप में एक पंक्ति थी । दादा और बी.एम. हरीश के प्राण लेना चाहते है उसे बचाओं – पार्टी का शुभचिंतक दादा के रूप में 'चन्द्रशेखर आजाद' और बी.एम. के रूप में 'धन्वन्तरी' (पंजाब का क्रांतिकारी नेता) की कल्पना की गई है । हरीश का चित्रण स्वयं यशपाल का अपना है ।

(१३) आतंकवाद और बम

ब्रिटिश साम्राज्य को उसके सुख–दुःख से जगने के लिए बम को क्रांतिकारी आवश्यक समझते थे । इसलिए वे स्वयं ही बम बनाते थे और

उसका प्रयोग करते थे । उपन्यासकारों ने बम बनाने वाले क्रांतिकारियों का 'बीरु' ।"[१२०] प्रस्द्धि वीरभद्र तिवारी है ।[१२१] 'मुक्ति के बंधन', 'बलिदान', 'हरिजन', 'पूरब और पश्चिम' तथा रक्त मंडल आदि में भी बम दर्शन का किसी न किसी रूप में वर्णन है ।

वाइसराय की गांडी को बम से उडाया गया था । जिसमें लार्ड इर्विन यात्रा कर रहे थे । दिल्ली से एक मील दूर रेल की पटरी पर बम के विस्फोट से गाड़ी क्षतिग्रस्त हो गई थी । उससे एक नौकर को चोट लगी और भोजन–कक्ष पूरा क्षतिग्रस्त हो गया । इस घटना का चित्रण उपन्यासकारों ने इस प्रकार किया है – "भारत के इतिहास में आज तक जो कभी नहीं हुआ था, वह घटना उस दिन हो गई । यहाँ के जंगी लाट की स्पेशल ट्रेन पर बम फेका गया जिसके फलस्वरूप आधी ट्रेन नष्ट हो । गई और हमारे कमांडर इन चीफ लार्ड गोशेन की जान चली गई ।"[१२२]

भगवतीचरण वर्मा ने अखबारी सूचना निकाली है "इलाहाबाद में सन–सनी फैल गई... कि सुबह के समय जब वाइसराय दिल्ली वापस आ रहे थे, पुराने किल्ले के पास उनकी स्पेशल ट्रेन के नीचे एक बम फटा । वाइसराय बाल–बाल बच गये । लेकिन स्पेशल ट्रेन के खाने वाले हिस्से को नुकशान हुआ और एक नौकर घायल हो गया ।"[१२३]

'हरिजन' में भी 'अबाब पुर रेलवे हाल्ट में सातवीं पुलिया' उड़ाने का उपक्रम हुआ है । यहाँ क्रांतिकारी टाइम बम का प्रयोग करते हैं । और उसी से रेल्वे की गाड़ी उड़ाते है । उस दृश्य का चित्रण द्रष्टव्य है – गाडी की घडघडाहट प्रति क्षण पास आती जा रही थी... आसपास की भूमि हिल रही थी... सामने कुछ दूरी पर इंजिन की तेज रौशनी से दिन का सा प्रकाश हो रहा था । दो सेकिंड़ – एक सेकिंड ... गाड़ी उस पुल पर होकर जा रही थी । एक भयंकर विस्फोट हुआ । उसके साथ हृदयविदारक चीत्कार तथा लोहे की खनखनाहट आदि । ... दस बजते–बजते सारे शहर में सनसनी फैल गई

और धरपकड़ का बाजार गर्म हो गया । देसी बम द्वारा ... एक नौकर घायल हो गया ।

'रैन अंधेरी' में भी उसी प्रकार का एक अन्य चित्रण भी मिलता है । क्रांतिकारी गांधी और इर्विन की बातों से संतुष्ट नहीं थे । इसलिए क्रांतिकारियों ने सम्मेलन के दिन वाइसराय की ट्रेन उड़ा देने का निश्चय किया.. यथा समय बम विस्फोट हुआ पर वाइसराय बाल-बाल बच गये... परिचारिकों में से एक को चोट आई ।

वैधानिकता की चादर को चीर देने के लिए 'हिसप्रस' की केन्द्रीय समिति ने यह निश्चय किया कि जिस समय विधानसभा में 'सार्वजनिक सुरक्षा बिल' तथा औद्योगिक विवाद बिल की बहुमति की उपेक्षा करके वाइसराय की आज्ञा से पारित करने की घोषणा की जाय उस समय विधान सभा में बम फेंककर भारतीय जनता की आवाज से बहरी सरकार को जगाया जाय । इस घटना का संकेत मन्मथनाथ के उपन्यास में मिलता है । क्रांतिकारियों ने अपने दो प्रमुख नेताओं सरदार भगतसिंह तथा बटुकेश्वर दत्त द्वारा असेम्बली में बम डलवाकर इन बिलों का प्रतिवाद किया । इन लोगों युवकों को काले पानी की सजा हुई पर इस चित्रण में एक ऐतिहासिक भूल उपन्यासकार ने की है। भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त आदि को फाँसी की सजा हुई थी, काले पानी की नहीं ।

(१४) क्रांतिकारियों का व्यक्तित्व-चित्रण

(१) भगतसिंह :

इलाचंद जोशी ने 'मुक्तिपथ' में राजीव नामक पात्र के मनोभाव में भगतसिंह के मनोभाव की कल्पना की है । राजीव के मन में एक निश्चित आदर्श और उद्‌देश्य था । भारत माँ के अपमान का बदला लेने की भावना

उसके मन में थी । "जब से उसने सुना कि लाला लाजपतराय की मृत्यु में निरंकुश शासनाधिकारियों का कितना बड़ा हाथ है तब से वह और अधिक विचलित हो उठा ।"[१२४] इसी भाव से विचलित होकर भगतसिंह आदि ने सेन्डर्स की हत्या की थी ।

सेन्डर्स की हत्या के बाद गिरफ्तारी से बचने के लिए भगतसिंह भेष बदलकर और नकली दुल्हन दुर्गा देवी (भाभी) को साथ लेकर कलकता पहुँच गये थे ।"[१२५] 'जिच' में तारा उसी घटना का वर्णन करते हुए कहता है – "जब पहली बार मुझसे कहा गया कि में एक प्रसिद्ध फरार की बनावट पत्नी बनकर रेल की यात्रा करूँ तो मुझे कुछ झिझक जरूर मालूम हुई थी... इन महाशय का नाम तो कुछ और थापर ट्रेन में हम लोगों ने इन्द्रकुमार और उसकी स्त्री सरला के नाम से यात्रा की ।"[१२६] सरला (तारा) और इन्द्रकुमार अन्य कोई नहीं 'दुर्गादेवी' तथा 'भगतसिंह' ही हैं ।

'ज्वालामुखी' के 'अभयकुमार' की कल्पना भी भगतसिंह से की गई है । भगतसिंह की तरह अभयकुमार भी वाइसराय के सामने प्राणों की भीख माँगने के विरुद्ध है उसकी फाँसी रद कराने के लिए देश ने बड़ा प्रयत्न किया । उनके पिता सरदार किशन सिंह ने जब अपने पुत्र की प्राण–भिक्षा के लिए अंग्रेज गर्वनर की सेवा में एक प्रार्थनापत्र भेजा तो उससे देशभक्त भगतसिंह को बड़ा कलख हुआ था । अपनी प्रतिक्रिया अभिव्यक्त करते हुए वीर भगतसिंह ने खिन्नता भरे स्वर में कहा था, "पिता ने ही मेरी पीठ में छरी भोंक दी है ।"[१२७] उसका एक चित्रण देखिए – "एक अपील की गई हाईकोर्ट में, वह खारिज हुई । प्रिवी कोंसिल में दूसरी अपील दायर की गई ।" पर अब प्रिवी कोंसील से भी 'अपील खारीज'[१२८] हो गई तब जनता में निराशा फैल गई । अब केवल वाइसराय के पास दया की अर्जी भर दे भेजना बाकी था । अभयकुमार इन बातों के खिलाफ था । वाइसराय के सामने हाथ पसार कर भीख माँगी जाय यह उसके स्वाभिमान को बर्दाश्त नहीं था । अभयकुमार

नामक 'भगतसिंह' को छड़ाने के लिए 'डेपूटेशन' भी मिले । स्वयं गांधीजी ने भी प्रयत्न किया था । पर वाइसराय ने यही इशारा किया कि इस मामले में उनके हाथ बंधे हुए है, सारी नीति लंदस से निर्धारित हो रही है । भगतसिंह का नारा था 'क्रांति जिन्दाबाद' और 'साम्राज्यवाद मुर्दाबाद' यही भावना अभयकुमार में अंत तक रहती है । जेल का सुपरिन्टेन्डेन्ट जब पूछता है –

"आपकी अंतिम इच्छा क्या है ?

"अंतिम इच्छा ? वह और क्या हो सकती है, सिवा इसके कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद का अंत हो और मेरा देश आजाद हो ।"[१२९]

(२) बिस्मिल :

अभयकुमार में पं. रामप्रसाद 'बिस्मिल' का छायाभास भी उपन्यासकार ने कहीं–कहीं ग्रहण किया है । भगतसिंह द्वारा गीता–पाठ करना युक्तिपूर्ण नहीं लगता है परंतु अभयकुमार को 'बिस्मिल' की तरह फाँसी से पूर्व गीता–पाठ करते चित्रण किया गया है । "जब प्रातः काल तीन बजे उठकर उसे बताया गया कि पाँच बजे उस फाँसी दी जाने वाली है तब शौचादि से निवृत्त होकर गीता का पाठ आरंभ किया न जायते प्रियतेु शरीरे । बिस्मिल हमेशा गीता पाठ करते थे उन पर गीता के निम्न श्लोक का विशेष प्रभाव था – "ब्रह्मण्याघाय कर्माणि... निवाम्भासा ।

(३) अशफाक उल्ला :

'रैन अंधेरी' का युसुफ और कोई नहीं काकोरी का अमर शहीद हिन्दू–मुस्लिमों का प्राणप्यारा 'अशफाक उल्ला' ही है । जिस जेल में युसुफ को फाँसी हुई वहाँ सबसे अधिक जोश रहा । शहर के सारे हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के गले मिलकर एसे बुरी तरह रो रहे थे कि कोई अपने प्रिय व्यक्ति के वियोग पर भी क्या रोता होगा । सत्यवान भी अशफाक का दिवाना

है । भगतसिंह से जरा घटकर जिस दूसरे आदमी की जगह उसके दिल में थी वह था अशफाक उल्ला – काकोरी केस वाला अशफाक उल्ला ।

फाँसी की तरह बढ़ते हुए रामप्रसाद 'बिस्मिल' ने यह शेर पढ़ा था जो तभी से सत्य को याद है ।

"दरो दीवार पर हसरत से नजर करते हैं ।

खुश रहो अहले वतन हम तो सफर करते हैं ।"[१३०]

काकोरी के शहीदों को जब फाँसी घर की ओर ले जाया जा रहा था तब उन्होंने अंतिम बार वंदेमारतम् का नाद किया और सुनाई पड़ा । "दरो दीवार पर... करते है ।"[१३१]

(४) यशपाल :

क्रांतिकारी यशपाल और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती प्रकाशवती यशपाल, दोनों ही 'आजाद' के गुप्तदल के सक्रिय कार्यकर्ता थे । दोनों धीरे-धीरे एक-दूसरे को चाहने लगे थे ।[१३२] अंत में जेल में ही यशपाल ने शादी कर ली थी । बुझते दीप में निलिमा और सुधीबाबू की कल्पना उपर्युक्त दोनों ही क्रांतिकारियों से ग्रहण की है । दोनों ही पात्र समाजवादी विचारधारा के भी हैं । निलिमा का कथन है –

"में उनके साथ राजनैतिक षडयंत्रों में वर्षो से काम करती आ रही थी । धीरे-धीरे हम दोनों ही मन ही मन दाम्पत्य जीवन की कल्पना करने लगे ।"[१३३]

ऐसा कहा जाता है कि चन्द्रशेखर आजाद आदि लोग यह अनुभव करने लगे थे कि वैयक्तिक आतंकवाद से अधिक सफलता मिलना संभव नहीं है । पंडित जवाहरलाल नेहरू ने 'मेरी कहानी' में एसा ही भाव व्यक्त किया है कि जब 'आजाद' उनसे मिले तो उसने कहा कि खुद मेरा तथा दूसरे साथियों का यह विश्वास हो चुका है कि आतंकवादी तरीके बिल्कुल बेकार हैं और उनसे

कोई लाभ नहीं है । हाँ वह यह मानने को तैयार नहीं था कि शांतिमय साधनों से ही हिन्दुस्तान को आजादी मिल जायेगी । 'आजाद' के इस मनोभाव का चित्रण कई उपन्यासों में हुआ है । 'जीने के लिए' का मोहन 'दा' कहता है – देश की आजादी कौन नहीं पसंद करेगा ? लेकिन एक–दो पिस्तौल या बम चला लुक–छिपकर किसी को मार देना... मेरी दृष्टि में उतना लाभदायक नहीं है ।"[१३४] 'रक्तमंडल' का नरेन्द्र सिंह भी इसी भावना को प्रकट करता है – उसका कहना है – "छिपी हत्याओं और पिछे से किये गये हमलो ने आजतक किसी देश को स्वतंत्र नहीं किया और न एकान्त निरीहता और शांतिप्रियता ही किसी जाति को पराधीनता से छुड़ा सकती है ।"[१३५]

(१५) समाजवाद : दार्शनिक पक्ष

समाजवाद एक ऐसा आंदोलन है जो किसी देश की पूंजी और भूमि में व्यक्तिगत अंतर, प्रतिस्पर्धा को समाप्त करके व्यक्ति की उन्नति के लिए समाज में समान अवसरों की स्थापना करता है । यह एक ऐसा तरीका है जिससे संपूर्ण मानव समाज अपनी आर्थिक विपन्नता का शमन करके अपनी योग्यता के अनुसार उसके फलों का रसास्वादन करता है । अंग्रेजी शब्द सोशलिज्म के लिए हिन्दी में साम्यवाद और समाजवाद शब्दों का व्यवहार होता है । सतही दृष्टि से दोनों एक ही भावना को प्रकट करते हैं । यद्यपि सूक्ष्म आधार पर इनमें अंतर निहित है ।

समाजवाद की कोई निश्चित परिभाषा करना संभव है । फ्रॉंस के 'लफिगारो' ने इसकी लगभग छः सौ परिभाषाएँ की है ऐसा कहा जाता है । इसके अनेक भेद है । प्रसिद्ध क्रांतिकारी यशपाल ने समाजवाद और साम्यवाद का अंतर स्पष्ट करते हुए कहा है कि – "साम्यवाद का अर्थ है समाज में सब समान हों और समाजवाद का अर्थ है समाज स्वामी हो... साम्यवाद लक्ष्य है और समाजवाद साधन । लक्ष्य बिना साधन के संभव नहीं है । समाजवाद

विकासशील एवं वास्तविक तत्त्वों पर बल देकर संवैधानिक उपायों द्वारा समाज में परिवर्तन लाना चाहते है किन्तु साम्यवाद क्रांतिकारी उपायों द्वारा पूंजीवाद का अंत करने का समर्थन है । दोनों ही व्यक्ति का उत्थान चाहते है और समाज में समानता की कामना करते हैं । शोषक और शोषित, पीड़क और पीड़ित का अंत करना दोनों का समान लक्ष्य है । मूलतः समाजवाद वह आंदोलन है जो कि उत्पादन के मुख्य साधनों और समाजीकरण पर आधारित वर्गहीन समाज स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील है और जो मजदूर वर्ग को इसका मुख्य आधार बनाता है । साक्र्स ने इसे भौतिकवादी विज्ञान कहा है, जिसके मूल में वैज्ञानिक यथार्थवाद है सामाजिक समानता के लिए राजनीतिक स्वाधीनता का संघर्ष अनिवार्य है । उस संघर्ष का सिपाही है सर्वहारा वर्ग ।

रुसी क्रांति की स्थापना का प्रभाव भारतीय राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन पर पड़ा । भारतीय नवयुवक मजदूर और कृषकों के क्रियात्मक सहयोग द्वारा ब्रिटिश साम्राज्य की समाप्ति का प्रयत्न करने लगे । इसके लिए सर्वहारा वर्ग की चेतना को जागरित करना अनिवार्य था । क्योंकि रुस के किसान और मजदूरों की सफलता का आरंभ भारत में माना जाता है । मानवेन्द्रनाथ राय के दिशा निर्देशन में किसान मजदूरी पार्टी की स्थापना हुई और सन् १९२४ तक एक अखिल भारतीय साम्यवादी दल का संगठन भी हुआ । भारतीय मजदूर वर्ग भी अपनी सामाजिक स्वतंत्रता के लिए देश की स्वाधीनता के लक्ष्य को एकमात्र अंतिम उपाय मानने लगा । भारतीय मजदूर वर्ग की चेतना को जगाने में हिन्दी उपन्यासकार भी समाजवादी आंदोलन के साथ आगे आया । उपन्यासों में समाजवाद की व्याख्या, मजदूरों और किसानों के शोषणों का कारण उनसे मुक्ति, उनकी भूमिका आदि के महत्त्व पर प्रकाश डाला जाने लगा जिससे मजदूर अपने शोषक का अंत कर सकें । जहाँ तक साम्यवाद और समाजवाद के अंतर का प्रश्न है प्रस्तुत शोध–प्रबंध में राष्ट्रीय आंदोलन के

संदर्भ में दोनों को एक ही संदर्भ में देखा गया है । क्योंकि साधन–भिन्नता होते हुए भी साध्य दोनों का एक ही रहा है ।

समाजवाद का लक्ष्य क्या है ? मोहन (चढ़ती धूप) कहता है – ''हमारा एक युद्ध एक नारा एक लक्ष्य है जो मेहनत करते हैं उन्हीं का राज्य हो । हम राज्य चाहते हैं – किसानों को जो भूमि के सच्चे स्वामी हैं । हम राज्य चाहते हैं मजदूरों का जो कारखानों और मिलों के सच्चे अधिकारी हैं । हमें शोषण का अंत करना है । जब तक उसका अंत नहीं होता तब राजनैतिक शक्ति कोई अर्थ नहीं रखती ।''[१३६] वर्गहीन समाज की स्थापना के लक्ष्य पर प्रकाश डालते हुए एक अन्य नारी पात्र भाभी कहती है – ''बड़े छोटे का यही भेद मिटाकर हमें वर्गहीन समाज की स्थापना करनी है कैसा मंगलमय होगा वह दिन जब हमारे देश में – इस महान ऐतिहासिक राष्ट्र में वर्गहीन समाज का निर्माण होगा – अब सबके बराबर अधिकार – सबकी एक सी मान्यताएँ होगी । श्रमसत्ता के लाल झंडे के नीचे मानव का मानव से मिलना होगा ।''[१३७]

मोहन पुनः मजदूरों को संबंधित करता है और उनका कर्तव्य उन्हें समझता है । उसका कथन है – ''सहमायादारी का नाश करो अपने तबके की आजादी के लिए कुरबानी का समुंदर खोल दो । हमारे तबके की आजादी किसान मजदूर की आजादी हिन्दुस्तान की आजादी है ।''[१३८] नायडू भी सामाजिक समानता की बात करता है – ''हम उत्पादक श्रम का समाजीकरण चाहते हैं उसे चारों और से घेने वाले – लूट खसोट–छीना–झपटी मचाकर बीच में ही हड़प जाने वाले व्यक्तिगत पूंजी और मुनाफे का अंत चाहते हैं । यही इन्कलाबी समाजवादी हमारे सपनों के प्रेरक है ।''[१३९] अंचल ने पूरे उपन्यास में समाजवाद का दर्शन स्पष्ट करने का प्रयास किया है ।

'राहुल' जी ने साम्यवाद अथवा समाजवाद पर लगाए गए आरोपों का प्रत्युत्तर देने का प्रयास किया है जिससे मार्क्सवाद के बारे में जन सामान्य की

धारणा स्पष्ट हो सके । सोहनलाल से दुक्खु पूछता है कि ''मरकस बाबा का रास्ता हत्या का रास्ता है । तब वह उस पर प्रकाश डालता हुआ कहता हैं – ''मरकस बाबा हत्या का रास्ता नहीं बताते, वह ऐसा रास्ता बताते है कि दुनिया में फिर आदमी को आदमी की हत्या करने की कभी जरूरत ही न पड़े ।... मरकस बाबा ने ऐसा–ऐसा रास्ता बताया है जि जोंक ही न रह जाये और दुनियाभर के सारे आदमियों का एक परिवार बन जाए गांधीजी जोंको (पूंजीपतियाँ) को भी रखना चाहते है और यही जोकें हत्या की जड़ पडे हैं ।''[१४०]

भारत की गरीबी, उसका शोषण, छोटे बड़े की समस्या भूखे–नंगों का सवाल, गरीब और अमीर जैसे रहे हैं वैसे ही बने रहेंगे । कपूर इन प्रश्नों पर सोचता है । पर उसे आशा की किरण केवल क्रांति में दिखाई देती है । तब वह स्वतः कहता है –

''ओ समानता के युग ! ओ आशा और उत्साह देने वाले समय ! ओ जीने का संदेश लाने वाले इन्क्लाब !! तुम आओं, तुम्हारा स्वागत है, देर करोगे तो स्वागत करनेवालों में से इन्तजार करते–करते ही मर जाएगी । ... ओ मजलूमों के मसीहा आओं ।''[१४१]

'इन्सान' की कमला का कहना है – ''अभी भारत का मजदूर अच्छी तरह ट्रेन्ड नहीं हुआ है । मजदूर वर्ग अभी केवल नारों को समझता है, सिद्धांत हो नहीं । जब तक वह यह नहीं समझने लगेगा कि कम्युनिज्म ही उसकी अपनी चीज है और इसके अतिरिक्त सब उसे भुलावे में डालने वाले मायाजाल है – उसका खून चूसने के लिए जोंके हैं, तब तक वह अपना निश्चित मार्ग निर्धारित नहीं कर सकेगा ।''[१४२] 'दादा कामरेड' में उपन्यासकार यशपाल समाजवाद की व्याख्या करते हुए कहते हैं – ''हमारा विश्वास है कि प्रत्येक मनुष्य को अपने फल पर पूर्ण अधिकार होना चाहिए । एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य से, एक श्रेणी द्वारा दूसरी श्रेणी से, एक देश द्वारा दूसरे

देश से उसके परिश्रम का फल छीन लेना अनुचित है, अन्याय है, अपराध है । यह समाज में निरंतर होने वाली हिंसा और शोषण को समाप्त करना ही हमारे जीवन का उद्देश्य रहा है, उसी के लिए हमने प्रयत्न किया है ।''[१४३] मजदूर आंदोलन के उद्देश्य को भी स्पष्ट किया गया है – ''पहले मजदूरों, सब पेशों के मजदूरों को आर्थिक प्रश्नो पर संगठित करना, फिर उनके संयुक्त मोर्चे के हाथ में राजनैतिक शक्ति देना यही हमारी लाइन है ।''[१४४]

मजदूर वर्ग अधिक से अधिक समाजवादी बन सके इसके लिए उनके सामने समाजवादी व्यक्तित्व की प्रशंसा प्रस्तुत की गई है । यथा – ''मगर भाई कुछ भी हो ये कम्युनिस्ट होते बड़े महेनती हैं । शांति भी तो कम्युनिस्ट है, शांतिदास कितना काम करती है... बाकी लड़कियों को देखती हूँ उन्हें अपने पाउडर लिपिस्टिक से ही फुर्सत नहीं ।''[१४५]

डॉ. शेफाली पूछती है – ''यह भौतिकवाद क्या बला है ?''

''चौधरी बोल उठा, ''भौतिकवाद, नास्तिक वाद ।''

''ठीक है भौतिकवाद नास्तिकवाद होते हुए भी वह सत्य है ।''

''प्राणनाथ बोला ।''

''कैसे ?''

प्राणनाथ ने कहा – ''जड़वाड का पहला सिद्धांत है कि सब चीजें बदलने वाली है । परिवर्तनशील हैं । वस्तुओं का स्थान बदलता रहता है । उनके घटक गुण धर्म सब बदलते रहते हैं ।''[१४६]

'नियंत्रण' का रचनाकार भी समाजवाद पर अपना विचार व्यक्त करते हुए कहता है कि ''उत्पादन के जितने भी साधन है उन पर प्रभुत्व यहाँ स्थापित है उस समाज का जो न श्रम उचित मूल्यांकन करता है, न बौद्धिक प्रयोगों का ।... ये सूदखोर, ये महाजन, लगानखोर जमींदार, हरामखोर व्यापारी और उसके दलाल, रिश्वतखोर हाकिम और अहलकार संगठित रूप से जो हमारा शोषण करते हैं उसी का तो कुफ्ल हम भोग कर रहे हं ।''[१४७]

सविनय अवज्ञा – आंदोलन तथा भगतसिंह तथा 'आजाद' के युग की समाप्ति के उपरांत आतंकवादी आंदोलन मृतप्राय हो गया । भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेस में उग्रवाद की भावना उभरने लगी थी । क्योंकि भारतीय सरकार के गुप्त दस्तावेजों में यह कहा गया है कि आतंकवाद समाजवाद (कम्युनिज्म) में और समाजवाद, भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेस में विलीन होकर प्राधान्य होता जा रहा है । जिसका परिणाम यह हुआ कि सन् १९३४ में पटना–कांग्रेस अधिवेशन के समय ही वामपंथी विचारकों ने ''अखिल भारतीय समाजवादी दल' की स्थापना कर ली थी । उक्त पार्टी का उद्देश्य कांग्रेस को प्रगतिशील बनाना था ।

हिन्दी उपन्यासकारों में भारतीय समाजवादी दल के कार्य कलापों का अंकन भी यत्र–तत्र मिलता है । समाजवादी दल के नेता थे । बाबू संपूर्णानंद, आचार्य नरेन्द्र दवे, तथा जयप्रकाशनारायण आदि । अनेक नवयुवक धीरे–धीरे समाजवादी दल में भरती होने लगे । 'बलिदान' के गोपा, नलिन और रागिनी भी ''कॉंग्रेस समाजवादी पार्टी में भर्ती हो गए ।... बालरवि भी पूरे जोश और खरोश के साथ नौ जवानों को संगठित करने लगे ।''[१४८] यही नहीं ''योजनाएँ तैयार कर अरुणा एवं नलिन के दिल्ली में समाजवादी नेताओं की एक बैठक बुलाई । जयप्रकाशनारायण, आचार्य नरेन्द्र देव, अच्युत पटवर्द्धन, बाबा राघवदास आदि प्रसिद्ध नेता दिल्ली पधारे ।''[१४९] आगामी क्रांति पर जय प्रकाश ने विवेचना करते हुए कहा – ''इश्वर के भरोसे पर देशी शस्त्रों से युद्ध करना या मरना होगा ।... फौजों में बगावत का मंत्र फूकों ... सन् अठारह सौ सत्तावन की तरह आग भड़केगी ।... उस युद्ध की आग से स्वतंत्र भारत निकलेगा ।''[१५१]

'देशद्रोही' में समाजवादी पार्टी के बनने के कारणों पर प्रकाश डाला गया है – ''ज्यों–ज्यों उग्र कार्यक्रम के पक्षपाती, समाजवादी लोग परिवर्तन की पुकार को ऊँचा करने लगे, भद्रता और शांति के रूप में प्राचीनता के समर्थक उनके विरुद्ध होने लगे । कॉंग्रेस के किसी भी काम या कार्यक्रम को पूरा करने के

समय यह प्रश्न अनिवार्य रूप से उठ खड़ा होता कि वह कार्य उग्र दल के नेतृत्व में होगा या दक्षिण पक्ष के ।"[१५१]

'गोदान' का रचनाकार भी समकालीन समाजवादी प्रभाव को अपनी रचना में स्थान दिये बगैर न रोक सका । प्रेमचंद जी लिखते है – "गुड़ से मारने वाला जहर से मारने वाले की अपेक्षा कहीं सकल हो सकता है । में तो केवल इतना जानता हूँ कि हम या तो साम्यवादी हैं या नहीं हैं । हैं तो उसका व्यवहार करें । नहीं तो बकना छोडँ दें । में नकली जिंदगी का विरोधी हूँ ।"[१५२] इसी प्रकार 'इस डेमोक्रेसी में भक्ति नहीं रही, कोंसिलों से बेजार होना, उनमें आग लगाना, उन पर जमींदारों, व्यापारियों का राज्य होना आदि प्रसंगों द्वारा भी युगीन समाजवादियों के मनोभावों को गोदान मे आभासित किया गया है ।

'नई इमारत' में समाजवादी दल की उस नीति का भी संकेत उपन्यासकार ने किया है जिसके अनुसार समाजवादी दल का उद्‌देश्य 'कांग्रेस के भीतर ही रहकर उसे नया रूपाकर प्रदान करता था । हम राष्ट्रीय समाजवादी है ।... यहाँ हमारा रोल उलटा है । हम कांग्रेस के 'राइट विंग' को फैसिज्म की तरह जाने से रोकेंगे ।"[१५४] नागार्जुन ने 'बलचनमा' में भी इसी भाव को दोहराया है – "मालूम हुआ है कि कांग्रेस के अंदर ही इन लोगों का एक अलग दल बन गया है । इस दल में बूढ़े लीडर है ही नहीं.. पर भैया, सोसलिस्टों का क्या कहना था ? उनका कहना यही था कि दो–चार साधु–महात्मा गिड़ गिड़ाने से अंग्रेजों का दिल नहीं बदलेगा । समूची जनता आपस में भेदभाव भुलाकर उठ खड़ी होगी, तभी अंग्रेज भागेगा ।"[१५४] ' समाजवादी' दल की नीतियों में राष्ट्रीय आंदोलन में नई हलचल उत्पन्न हो गई थी और अन्य दलों के सदस्य उस दल की ओर आकर्षित होने लगे । मथुरादत्त भी अपने को अलग थलग न कर सका और "उधर मथुरादत्त जी एक दो बार जेल गए तथा वहाँ के जीवन में इसकी जान पहचान एक

समतावादी महाशय से हो गई । उनकी संगति से इनका मेल पुरी समतावादी नी पार्टी से हो गया तथा वे उसके सदस्य भी बन गये ।"[१५५] कांग्रेस और समाजवादी दल में आर्थिक कार्यक्रम के कारण ही मतभेद हो गया था देवराज का कथन है – "में मानता हूँ कि कॉंग्रेस के नरम और गरम दल में पार्थक्य शुरू हो गया है । यह पार्थक्य आर्थिक प्रोग्राम के कारण है, इसीलिए उसे स्थायी तौर पर मिटाया नहीं जा सकता ।"[१५६]

'अखिल भारतीय कॉंग्रेस कमेटी' के सदस्य बाबू संपूर्णानंद ने 'भारतीय समाजवादी दल की नीतियों को घोषणा पत्र तैयार किया था उसमें आर्थिक कार्यक्रम को ही प्रथम प्रश्रय दिया गया था । प्रसिद्ध इतिहास वेता के. एम. पन्नीकर की भी यहीं मान्यता है । चाहे कॉंग्रेस दल हो या समाजवादी दल दोनों का उद्देश्य तो एक ही था । दोनों की पूंजीवाद को समाप्त करना चाहते थे । दयानाथ का कथन है – "हम सब साम्यवाद (समाजवाद) चाहते हैं । पर उसे प्राप्त करने के तरीकों पर हमारा आपका मतभेद है, खैर वह हुआ करे । उससे क्या होता है ? वेसे हमारा आपका ध्येय तो एक है ।"[१५७]

कानपुर षडयंत्र :

कानपुर की ऐतिहासिक मजदूर हड़ताल को 'इंदुमति' में वर्णनात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है – "कानपुर में मजदूरों की हड़ताल की तैयारियाँ चल रहीं थी । लखनऊ की हड़ताल से यह हड़ताल कहीं बड़ी होने वाली थी ।'[१५८]

रांगेय राघव ने भी उक्त हड़ताल का चित्रण करने का प्रयास किया है । ब्रह्मदत्त और शंकर हड़ताल का आयोजन करते हैं । उसी का चित्र प्रस्तुत है – "अब कहीं एक महीने पहले सबको लेकर शंकर कानपुर आ सका था । मगर इसी बीच में ब्रह्मदत ने मिल एरिया में जाकर मजदूरों को जो बताया कि वे अपनी हालत सुधार सकते हैं तो उनकी आँख खूली ।... मजदूरों ने इसे बहुत आसानी से समझा कि देश की बात रोटी की बात है,

रोटी की बात देश की बात है । और जो बात रोटी की नहीं देश की नहीं है और देश की बात है उसके लिए जरूरी है कि यह रोटी की बात है । पर ऐसे मजदूर बहुत कम थे । उन दिनों मजदूर वर्ग इतना चेतन नहीं हुआ था ।"[१५६] क्योंकि वह प्रथम प्रयास मजदूर नेताओं का था । फिर भी उनका प्रयास व्यर्थ नहीं गया । "सुनते ही सुनते हजारों मजदूरों की भीड़ उठकर खड़ी हो गई । .. दरोगा भूपसिंह भाग खड़ा हुआ । मजदूरों ने हर्ष से नारा लगाया रोटी के कुत्ते ... 'मुर्दाबाद' ।

ब्रह्मदत ने पुकारा कर कहा 'हिन्दुस्तान.. ।'

हजारों गंभीर कंठो ने उतर दिया 'करेंगे आजाद ।'

कानपुर, गदर और अंग्रेजी जुल्मों के समय का वह अबुझ अंगारा दहक उठा । उस समय उन भूखे और गरीब इन्सानों की वज्र हुकारों से कानपुर के अत्याचारी थर्रा उठे ।"[१६०]

'मशाल' में पुनः कामरेड युसुफ ऐलान करता है – "हम हड़ताल शांतिपूर्वक चलना चाहते हैं ।... लेकिन मिल मालिकों और कॉंग्रेसी नेताओं ने पुलिस और फौजियों की मदद से हमारी हड़ताल तोड़ने की कोशिश की तो मजदूर सभा अपनी पूरी ताकात से उनका मुकाबला करेगी और कानपुर में मजदूरों और मिल–मालिकों में ऐसा संघर्ष होगा, जो कानपुर वर्ग के इतिहास में हमेशा अमर रहेगा ।"[१६१]

मेरठ षडयंत्र :

असहयोग सत्याग्रह के स्थगन के बाद 'कानपुर षडयंत्र' के अतिरिक्त सन् १९२७–२८ में श्री अमृतपाद डांगे और श्री विठ्ठल भाई पटेल के नेतृत्व में बम्बई में मजदूरों की हड़ताल हुई । इसी तरह की हड़ताल बम्बई के साथ–साथ बंगाल में भी हुई । जब हड़ताल कमजोर होने लगी तब देश के भिन्न–भिन्न स्थानों से ट्रेड युनियन नेताओं को मार्च १९२९ ई. में गिरफतार

करके मेरठ लाया गया । और उन पर ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति अखिल भारतीय स्तर पर 'कम्युनिस्ट षडयंत्र' रचकर विद्रोह करने का अभियोग चलाया गया । जिसे मेरठ षडयंत्र कहा जाता है । अभियुक्तों ने ब्रिटिश साम्राज्य का खात्मा करने की बात स्वयं अपनी एक अपील में स्वीकार की थी । उपर्युक्त षडयंत्र में 'इकतीस व्यक्तियों' पर मुकदमा चला । ''कम्युनिस्टों की इस ताकात को देखकर सरकार और घबराई और देश भर के कोने–कोने से गिरफतार करके जोसी, अधिकारी डांगे आदि उनतीस कम्युनिस्टों पर मेरठ में मुकदमा चला ।''[९२] राहुल ने उपर्युक्त वर्णन में यथार्थवाद का भावबोध ऐतिहासिक घटना निरूपण के रूप में किया है । अभियुक्तों की नामवली भी सही है ।

'मेरठ षडयंत्र' की अभियुक्त संख्या का उन पर लगाये गये आरोप आदि के बारे में 'निर्देशक' में भी वर्णनात्मक संकेत उपलब्ध होता है – ''नवीन चुपचाप सुन रहा था । बयालीस नौजवानों का वह सवाल था । वे सब अठारह से अठ्ठाइस तक के नौ–जवान लड़के हैं । उनके उपर पुलिस अफसरों की हत्या, बादशाह के खिलाफ षडयंत्र और न जाने क्या–क्या अपराध नहीं लगाये गये ''उस कमरे में तीन व्यक्ति थे । बातचीत में मालूम हुआ उसके नाम थे अपूर्व, गंगोली, अविनास घोष, हरिपद मलिका वे सब कम्युनिस्ट हो चुके थे क्योंकि व्यक्ति थे । बातचीत में मालूम हुआ । उसके नाम थे अपूर्व, गंगोली, अविनाश घोष, हरिपद मलिक । वे सब कम्युनिस्ट हो चुके थे क्योंकि व्यक्तिगत क्रांति से ऊब चुके थे । उन्होंने जान लिया था कि समाज में मजदूर वर्ग ही सबसे अधिक क्रांतिकारी हो सकता है । एक नई दुनिया जहाँ कोई किसी को लूट नहीं सकेगा ।''[९४] उपन्यासकार ने प्रकारांत से मेरठ षडयंत्र को ही छायाभास के रूप में प्रस्तुत किया है । इसी तरह का छायांकन 'अंचल मेरा कोई' में भी है । मजदूर नेताओं की गिरफतारी से चिंतित अचल का कथन है – ''पंचम गिरधारी बगैरह का वह मुकदमा अभी तक खत्म नहीं हुआ है । पुलिस उन लोगों के उपर कोई दूसरा मुकदमा चलाने की तैयारी

कर रही है । जिसका रूप है सरकार के खिलाफ हथियार इकट्ठे करके षडयंत्र रचना ।"[९५]

'मेरठ षडयंत्र' के दौरान पुलिस ने घर–घर छापे मारे थे । तलाशियाँ ली थी । भगवतीचरण वर्मा ने भी उपर्युक्त षडयंत्र की कार्यवाही पर संक्षेप में पात्रों के वार्तालाप द्वारा प्रकाश डालते हुए लिखा है – "मुझ पर कम्युनिस्ट होने का आरोप है । मेरे घर की तलाशी का भी वारंट निकला है... "ज्ञान प्रकाश ने कहा, ओह तो मेरठ कास्पिरेसी केस में तुम्हारा नाम भी शामिल है । लेकिन गिरफतारियाँ तो मार्च में हुई थी । तुम बचे कैसे रहे ? ताज्जुब की बात है ?"[९६] वर्मा जी ने अपनी "मेरठ कांस्पिरेसी केस का कोई भी अभियुक्त जमानत पर नहीं छूटा ।"[९७] यद्यपि बतीस लोगों कोल गिरफतार किया गया था पर एक छोड़ दिया गया था ।

भारतीय स्वातंत्र्य संघर्ष का गहन अध्ययन किया जाय तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि मजदूर आंदोलन की अपनी एक विशेष भूमिका रही है । बम्बई, कलकता, कानपुर, पंजाब आदि नगरों में समय–समय पर अनेक हड़तालें होती रही है । उनका चित्रण अनेक उपन्यासों में हुआ है । जिसमें मुख्य है – " टेढ़े मेढ़े रास्ते', 'निर्देशक', 'अब भारत जाग उठा', 'पार्टी कामरेड', 'दादा कामरेड', 'देशद्रोही' के कथानक का तो आधार ही मजदूर आंदोलन की भिति पर खड़ा है । 'रेणु' के 'मैला आँचल' में मजदूर आंदोलन का एक सुंदर चित्र द्रष्टव्य है ।

"उठ महेनतकश अब होश में आ
हाथ में झंडा लाल उठा,
जुल्म का नामों निशा मिटा
उठ होश में आ बेदार हो जा ।"[९८]

समाजवादी तथा समाजवादी दृष्टिकोण मजदूर आंदोलन का चित्रण यशपाल, अंचल, राहुल, भैरवप्रसाद गुप्त, प्रतापनारायण श्री वास्तव तथा

अमृतराय के उपन्यासों में बहुतायत से पाया जाता है । मजदूर आंदोलन का आंशिक रूप में चित्रण यज्ञदत ने भी किया है । इसके अतिरिक्त द्वितीय महासमर में साम्यवादियों की भूमिका को लेकर उन पर 'गदारी' का जो आरोप किया गया था । उसका प्रत्युतर भी यशपाल 'अंचल' आदि की रचनाओं में दिया गया है । साम्यवाद तथा समाजवाद के पक्ष–विपक्ष पर सविस्तार तथा समाजवाद में की गई है । प्रत्येक उपन्यासकार ने स्वयुगीन राजनीतिक घटनाचक्र को अपने चक्षुओं से देखने और परखने का प्रयास किया है ।

हिन्दी उपन्यासों में 'वाद' विशेष के मंडनार्थ गांधीवाद के अतिरिक्त साम्ययाद के सैद्धांतिक एवं व्यवहारिक पक्ष के विविध चित्र भी यत्र–तत्र उरेहे गये हैं । समाजवादी लेखकों को समाजवाद के मंडन के लिए गांधीवाद का खंडन विशेष अभिप्रेत रहा है । यही तथ्य गांधीवादी लेखकों के बारे में भी सत्य है । इसका एकमात्र कारण राष्ट्रीय मुक्ति–संग्राम में विद्यमान राजनीतिक दर्शन की वैचारिक भिन्नता भी है । क्योंकि गांधीवाद, समाजवाद, आतंकवाद और साम्यवाद राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए अपने अपने राजनीतिक सिद्धांतों को ही श्रेष्ठ मानते थे । देश की स्वाधीनता के लिए इन्हीं राजनीतिक सिद्धांतों को अस्त्र बनाकर ब्रिटिश साम्राज्यवाद से लोहा लेते रहे ।

(ख) असहयोग–सत्याग्रह आंदोलन

महात्मा गांधी दक्षिणी अफ्रिका से भारत वापस आए । प्रथम विश्व युद्ध की कालिमा संसार में व्याप्त थी । भारत में आकर उन्होंने संपूर्ण देश का भ्रमण किया । महासमर में अंग्रेजों की विजय के लिए अपना पूर्ण समर्थन दिया । गांधीजी गोपाल कृष्ण गोखले के निर्देशन में राष्ट्रीय काँग्रेस के अधिवेशनों में भाग लेने लगे । दक्षिणी अफ्रिका में चलाए गए आंदोलन की सफलता के कारण भारतीय जन–मन पर उसके व्यक्तित्व का विशेष प्रभाव पड़ने लगा था ।

'चम्पारन सत्याग्रह' तथा 'अहमदाबाद–मजदूर आंदोलन' की सफल भूमिका ने भारतीय स्वातंत्र्य संघर्ष के एक नवीन युग का प्रारंभ किया । स्वाधीनता प्राप्ति के लिए कटिबद्ध भारतीय जनता ने बापू का देश की राजनीतिक में प्रवेश का हार्दिक स्वागत किया । वह विशाल ब्रिटिश साम्राज्य को एक नवीन राजनीतिक अस्त्र–अहिंसात्मक सत्याग्रह के द्वारा पूर्णतः मिटा देने को सन्नद्ध थे ।

गांधीजी के अहिंसात्मक सत्याग्रह आंदोलन ने न केवल भारतीय जनमानस को ही प्रभावित किया अपितु भारतीय साहित्य में भी, विशेषकर हिन्दी साहित्य में उसका प्रभाव स्पष्ट मिलता है । देशवासियों को एक नवीन आलोक, सदूर क्षितिज में दिखाई देने लगा । उसके राजनीतिक प्रवेश के समय संपूर्ण देश में जो सुखद प्रतिक्रिया हुई उसका मनोहारी अंकन हिन्दी उपन्यास में बड़ी ही कुशलता से किया गया है ।

राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह बापू के राजनीति में प्रवेश का अंकन करते हुए लिखते हैं – "१९२० का साल ! जलियावाला बाग की आग अभी बुझी नहीं है । महात्मा गांधी ने राष्ट्र के अंतर में नवीन चेतना का जादू फूंका है ।... फुरसत वाली लीडरी सर पर नौकरशाही की सलीमशाही को काफी ढो चूकी । अब गांधीत्व की तमतमाई हुई आध्यात्मिकता राजनीति के

अखाड़े में ताल ठोकनेवाली है ।"[१६६] अपने एक अन्य उपन्यास में गांधीजी के राजनीतिक प्रवेश को पुनः इस प्रकार व्यक्त किया है – "अरे भई १९०७ या ८ की बात है । गांधी तो उन दिनों दक्खिनी अफ्रिका में रहे अपने नये प्रयोग को आजमाने में व्यस्त । वह क्रांति की लहर को बम और पिस्तौल को लेकर उठी.... गांधी ने आकर उस क्रांति का काया ही पलट दी जैसे । बम और पिस्तौल की जगह असहयोग और सत्याग्रह का अमोध अस्त्र आया और हिंसा के हाविटजर से कहीं पुरअसर अहिंसा के कमान का तीर । बस उड़ चले अंग्रेजों के हाथ के तोते ।"[१७०] भारत की 'मुक्ति का दाता तो केवल गांधीजी ही है । वही देश की नब्ज जानता है और कोई नहीं । वह तो बताएगा, वही हमारे उद्धार का मार्ग है । उसमें यदि आग में भी कूदना पड़े तो कोई परवाह नहीं ।"[१७१] 'इन्दुमती' का एक पात्र भी बापू के प्रति अपने अदगार व्यक्त करते हुए कहता है – "अब एक नया आदमी आया है, देखे वह क्या करता है ।"[१७२] 'मुक्ति के बंधन' का रचनाकार अपनी प्रतिक्रिया बतलाते हुए कहता है "भारत के राजनीतिक आकाश में एक नवीन तारे का उदय हुआ । अफ्रिका में पालना झूलकर वह शिशु अपनी जन्मभूमि में आया । माता ने हृदय भरकर उसे अपनी छाती से लगाया निर्धन–निर्जीव, असहाय और दलितों ने उस पर अपनी आशाएँ उगानी आरंभ की ।"[१७३]

'जलियावाला बाग' की भयंकर मानसिक वेदना से बापू भी अपने को अलग न रख सके । अंग्रेजों के इन्हीं जयन्ध अपराधों का अंत करने के लिए उन्होंने 'असहयोग सत्याग्रह' के अमोध अस्त्र का प्रयोग किया था । उसका भारतीय जन जीवन पर इतना गंभीर प्रभाव पड़ा कि ब्रिटिश सत्ता की नींव हिलाने लगी । प्रेमचंद ने तो सरकारी नौकरी से त्यागपत्र ही दे दिया था । गांधीजी ने न वकील, न अपील तथा न दलील के साथ–साथ स्कूल तथा कालेजो का बहिष्कार, सरकारी नौकरी से त्यागपत्र, कोंसिलों तथा पदवियों का बहिष्कार विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार आदि का आयोजन 'असहयोग सत्याग्रह

आंदोलन में किया था ।"[१७४] ब्रिटिश सरकार से जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सहयोग न करना और सत्य पर डटे रहकर अपनी वास्तविक माँग मनवाना ही असहयोग सत्याग्रह कहलाता था ।

नागार्जुन का एक पात्र बलचनमा पूछता है – "असहयोग क्या होता है भैया ?"[१७५] भैया असहयोग का अर्थ समझाते हुए कहता है – "गांधी महात्मा ने यह तरीका निकाला था कि दुश्मन अगर ताकतवर हो तो तुम लाठी से उसका मुका बला नहीं कर सकते । हाँ उससे बोलचाल बन्द कर दो । उसके किसी काम में मदद न पहुँचाओ । दुश्मन दच्छिन की ओर मुँह करके खड़ा रहे तो तुम पीठ फेर कर अपना मुँह उतर की तरफ कर लो ।"[१७६]

मंगलदास भी असहयोग की व्याख्या करता है । उसका कथन है – "दफतर और खजाने हाथ में लेना इस आंदोलन का अभिप्राय नहीं । हम लोग तो इस आंदोलन द्वारा सरकार की सारी कलाबाजी को ऐसा बैकार कर देना चाहते है कि संपूर्ण देश में इन्हें धत्ता बता दें और कुछ शासन की बागडोर अपने हाथ में कर लें ।"[१७७]

बाबा बटेसरनाथ असहयोग आंदोलन की कथा सुनाते हुए कहता है – "बेटा गांधीजी अपनी अहिंसा के आगे और सत्य व आत्मशुद्धि के आगे बाकी बातों की पहवाह शायद ही करते थे । जल्द से जल्द स्वराज हासिल करने के लिए १६२० के अंत में काँग्रेस ने असहयोग और बहिष्कार का नया लडाकू प्रोग्राम अपनाया था । बड़े नेताओं के इस निर्णय से साधारण जनता में उत्साह की अनोखी लहर फैल गई ।"[१७८]

गांधीजी के आहवान पर छात्रों ने विद्यालयों में जाना छोड़ दिया था । क्योंकि उनका कहना था कि – "हमारे देश की वर्तमान शिक्षा–प्रणाली दास मनोवृत्ति पोशक है और उन्होंने विद्यार्थियों को स्कूल तथा कालेजों को छोड़ देने की सलाह दी थी ।"[१७९]

'मेरा देश' उपन्यास का पात्र विमल भी गांधीजी के सत्याग्रह से प्रभावित होकर विद्यालय छोड़ देता है सत्याग्रह आंदोलन में भाग लेता है । माँ उससे पूछती है – "बेटा ! तुमने गांधीजी के असहयोग के बारे में सुना है ?"

"हाँ" – "वह सुना है कि कितने विद्यार्थी अपने अपने कालेज और स्कूल छोड़ रहे है ?"

"हाँ" [९०]

अपनी माँ से इतना सुना था कि गांधीजी की विजय बोलता हुआ विमल फिर कभी स्कूल नहीं जाता है ।

डॉ. शेफाली का प्राणनाथ कहता है – "में जिन दिनों पाँचवीं–छठी में पढ़ता था, उन दिनों ही असहयोग आंदोलन में मेंने पढ़ना छोड़ दिया था ।"[९१] 'मंगलसूत्र' का साधुकुमार भी ऐसा ही पात्र है – "जिसने सत्याग्रह संग्राम में पढ़ना छोड़ दिया, दो बार जेल हो आया ।"[९२] 'कुल्लीभाट' के कुल्ली भी गांधीजी से प्रभावित होकर "अदालत के स्टाप बेचते थे, बेचना छोड़ दिया था । महात्मा की बातें करते लगे ।"[९३] " 'आत्मदाह' का सुधीन्द्र भी नौकरी छोड़ देता है ।"[९४] "भूले बिखरे चित्र' का फरहतुल्ला भी गांधीजी के आंदोलन में चला जाता है । "फरहतुल्ला ने एलान कर दिया कि महात्मा गांधी और कॉंग्रेस के हुक्म से उन्होंने आज से वकालत छोड़ दी । यहीं नहीं थानेदार विक्रमसिंह ने अपनी नौकरी से इस्तीफा दे दिया ।"[९५] इसका परिणाम यह हुआ कि गाँव वाले स्वयं झगडा निपटाने लगे । इस संदर्भ में राहुल कहते है – "गाँव – गांव में पंचायत है । घर–घर से सेवासन्ती के लिए मुठिया निकाली जाती है । सेवासन्ती रात को पहरा देती है । पंच लोग मुकदमों का फैसला करते हैं । अब कचहरी की रौनक नहीं रही । वकील लोग बैठ–बैठ मक्खी मारते है ।"[९६] नौकरी से त्यागपत्र की ओर संकेत 'अनबुझी प्यास' में भी किया गया है – "गांधी महात्मा की पुकार पर कितने–कितने छोटे नौकरों ने नौकरियाँ छोड़ दी थीं । स्कूल मास्टरों ने पुलिस के सिपाहियों ने दफ्तरों

के बाबुओं ने सभी जात के छोटे नौकरो में से बहुतों ने छोड़ दी ।"[१८७] राजाराम भी बापू के आंदोलन से प्रभावित होकर अपनी लांडरी की दुकान बंद करके जेल चला जाता है ।"[१८८]

प्रेमचंद ने भी 'रंगभूमि' में बापू के 'असहयोग सत्याग्रह' की भावना का अंकन करने का प्रयास किया है । मिसेज सेवक कुंवर साहब को निमंत्रण देती है । पर राष्ट्रीय आंदोलन से प्रभावित होकर कुवरसाहब का कथन – "मुझे खेद है कि में उस उत्सव में सम्मिलित न हो सकूँगा । मेंने व्रत कर लिया है कि राज्यधिकारियों से कोई संपर्क न रखूँगा ।"[१८९] पदवियों, नौकरियों से त्यागपत्र की जो हलचल असहयोग आंदोलन में चल रही थी उसका संकेत भी रंगभूमि पर सलाह लेते हुए पूछते हैं कि उन्हें क्या करना चाहिए, इन्दु कहती है – "पदत्याग, राजा साहब मेरे पदत्याग से जीवन बच सकेगा ।"[१९०]

बाबू कुलानंददास भी (बाबा बटेसरनाथ' 'असहयोग' के कारण खूब चलती–चलाती वकालत छोड़कर सत्याग्रह में जेल चले जाते हैं । उसका अंकन द्रष्टव्य है "उन दिनों असहयोग की धूम मची हुई थी... कोई अपनी नौकरी से इस्तीफा दाखिल कर रहा था, कोई कालिज की पढ़ाई छोड़ रहा था, कोई प्रोफेसरी और मास्टरी पर लात मार रहा था । असहयोग की बातों को लेकर पढ़े लिखे लोगों से खूब चहल पहल थी ।"[१९१] स्वर्गीय चितरंजनदास ने भी असहयोग आंदोलन के युग में वकालत छोड़ दी थी । लगता है नागार्जुन के कुलानंददास का चरित्र मे जो अब जनता के प्रिय हो गये थे "पिछले सत्याग्रह संग्राम में बड़ा यश कमाया था । कोंसिल की मेम्बरी छोड़कर जेल चले गये थे । तब से उनके इलाके के असामियों को उनसे बड़ी श्रद्धा हो गई थी ।"[१९२] 'शेखर' भी असहयोग आंदोलन में भाग लेने का प्रयत्न करता है ।[१९३] 'रंगभूमि' का पांडेपुर का सत्याग्रह जिस प्रकार दिन प्रतिदिन उग्ररूप ग्रहण करता चला जा रहा था उसी प्रकार पांडेपुर का सत्याग्रह भी अपनी भीषणता पर था । यथा 'पांडेपुर का आंदोलन दिन–दिन भीषण होता था । मुआवजे के

रुपये तो अब किसी के बाकी न थे ।... इन खाली मकानों को गिराने के लिए मजदूर न मिलते थे । दुगुनी–तिगुनी देने पर भी कोई मजदूर काम करने को न आता था – अन्य भागों से मजदूर बुलाये तो रातों रात भाग खड़े हुए ।"[९४]

(१) खिलाफत आंदोलन

उपन्यासकारों ने असहयोग आंदोलन की प्रत्येक घटना को अपनी रचनाओं में चित्रित करने का प्रयत्न किया है । परंतु कुछ मुख्य–मुख्य घटनाओं का ही विश्लेषण संभव है । गांधीजी ने 'असहयोग आंदोलन' को सफल बनाने के लिए 'खिलाफत आंदोलन' को भी अपने आंदोलन का एक अंग मान लिया था । हिन्दू और मुसलमान नेताओं ने पूरे सहयोग से काम किया ।"[९५]

सर्व प्रथम 'खिलाफत आंदोलन' पर मुंशी प्रेमचंद ने प्रकाश डाला है । उस आंदोलन का कारण समझाते हुए जन सेवक कहता है – "सफलता में दोषो को मिटाने की विलक्षण शक्ति है । आप जानते हैं । दो साल पहले मुस्तफा कमाल क्या था ? बागी, देश उसके खून का प्यासा था । आज वह अपनी जाति का प्राण है । क्यों ? इसलिए कि वह सफल–मनोरथ हुआ । लेकिन कई साल पहले प्राणभय से अमेरिका भागा था, आज वह प्रधान है । इसलिए उसका विद्रोह सफल हुआ ।"[९६] खिलाफत, आंदोलन का सूत्रपात ही 'कमालपाशा' के पक्ष का समर्थन करने के लिए हुआ था । प्रेमचंद का उपर्युक्त चित्रण सामायिक प्रसंग का द्योतक है ।

'प्रत्यागत' का कथानक तो 'खिफालत आंदोलन' से ही निर्वाहित हुआ है । मंगलदास के कारण ही बांदा जिले में खिलाफत आंदोलन को बल मिलता है । दादा जी उसका विरोध करते हुए पूछ्ते है – "ब्राह्मण का लड़का होकर तू खिलाफत विलायत के झगड़ों में क्यों पड़ता है ? ... देश का इससे क्या

उपकार होगा रे ?" मंगलदास बोला "दादा जी, जिन–जिन बातों से अंग्रेज परेशान हों, उन उन बातों से देश को लाभ होगा ।"[१६७] जब पुनः मंगलदास से पूछा जाता है "यह खिलाफत है क्या ?" "मंगलदास समझता है "ठीक ठीक यह क्या है सो तो मुसलमान भी नहीं बतला सकते । परंतु हिन्दू – मुसलमानों में इसका कारण बहुत मेलजोल पैदा हुआ है । देश के लिए यह कम कल्याणकारक नहीं है ।

"आखिर यह लड़ाई है किस बात की ?"

"इस बात की कि मुसलमानों के एक बड़े भारी पुरुष का जो टर्की में रहते हैं । अंग्रेजों ने अपमानित किया है और उनका राज्य छीन लिया है । उन्हीं के लिए हिन्दू–मुसलमान अपना पुरा बल लगा रहे हैं ।"[१६८] वर्मा जी ने उपर्युक्त वार्तालाप के द्वारा 'खिलाफत आंदोलन' का यथार्थवादी चित्रण किया है जो एक ऐतिहासिक सत्य है ।

(२) चौरी–चौरा हिंसात्मक घटना–काण्ड

असहयोग आंदोलन शीघ्र ही हिंसात्मक रूप में परिवतर्ति हो गया था । उतर भारत में 'चौरा–चौरी' की हिंसात्मक घटनाओं ने महात्मा गांधी को सहयोग अहिंसात्मक सत्याग्रह को वापस लेने के लिए मजबूर किया था । गांधीजी ने शीघ्र ही चौरी–चौरा की घटना पर विचार करने के लिए कॉंग्रेस कार्यसमिति की बैठक बुलाई और असहयोग आंदोलन को स्थापित कर दिया । आंदोलन को असफलता की संज्ञा दी गई ।

हिन्दी उपन्यासों में उसकी अभिव्यक्ति अनेकानेक रूपों में हुई है । 'रंगभूमि' में सर्वप्रथम असहयोग आंदोलन की असफलता का विश्लेषण करते हुए कहता है – "सच्चे खिलाड़ी कभी रोते नहीं, बाजी पर बाजी हारते हें, चोट पर चोट खाते हें, धक्के पर धक्के सहते हैं पर मैदान पर डटे रहते हैं । खेल में रोना कैसा ? खेल हँसने के लिए दिल बहलाने के लिए है, रोने के

लिए नहीं ।”[१९९] खेल में संघर्ष में गिरना स्वाभाविक है । जब दो खेलते हैं तो हार–जीत होती ही है । सत्याग्रह का संघर्ष भी तो एक खेल ही महात्मा गांधी के लिए था । हार क्या जीत क्या ? खेलते–खेलते गिर पड़ना हार नहीं है । गांधीवादी सूर का कथन है –“हम तो खेल खेलते हैं । जीत–हार तो भगवान के हाथ है ।” बस नियति ठीक होनी चाहिए ... सभी चाहते है कि हमारी जीत हो, लेकिन जीत एक ही ही होती है तो इससे हारने वाले हिम्मत हार जाते है ? वे फिर खेलते हैं । कभी न कभी उनकी जीत होती ही है ।”[२००] गांधीजी भी हिम्मत हारने वाले पुरुष न वे स्वयं अपने सत्याग्रह का विश्लेषण करते हुए कहा था – “समय आते ही ओर समय आयेगा ही ये ही सरकारी लडेगे... मेरे हथियार आज काम नहीं आये, इस कारण वे कुछ अयोग्य नहीं हें, उन्हें अधिक पानी देने की आवश्यकता होगी, उनका उपयोग असमय हुआ होगा ।

सूरदास चौरी चौरा जैस हिंसात्मक घटना का विरोध भी करता है उसका सत्याग्रहियों से कहना है कि – “आप लोग वास्तव में मेरी सहायता करने नहीं आये है, मुझसे दुश्मनी करने आये है । हाकिमों के मन में फौज के मन में, पुलिस के मन में जो दया और धरम का ख्याल आता उसे आप लोगों ने क्रोध बना दिया है । में हाकिमों को दिखा देता कि एक दिन अंधा आदमी एक फौज को कैसे पीछे हटा देता है, तोप का मुह कैसे बंद कर देता है, तलवार की धार कैसे मोड़ देता है । में धरम के बल से लड़ना चाहता था ।”[२०१]

‘चौरी–चौरा’ में सत्याग्रहियों ने थाने पर हमला करके पुलिस कर्मचारियों को जिन्दा जला दिया था । ‘कायाकल्प’ में भी उसी घटना की छाया ग्रहण की गई है । चक्रधर के नेतृत्व में राजा साहब के विरुद्ध मजदूरों का आंदोलन हिंसात्मक रूप ग्रहण कर लेता है । “राजा साहब बंदूक लेकर चक्रधर के पीछे दौडे... उनका जमीन पर गिरना था कि पाँच हजार आदमी बाड़े को तोड़कर

सशस्त्र सिपाहियों को चीरते, बाहर निकल आये और नरेशों के कैम्प की ओर चले । रास्ते में जो कर्मचारी मिला उसे पीटा । मालूम होता था कि कैम्प में लूट मच गई है ।... चारों तरफ भगदड मच गई ।"[२०२] यही नहीं, सत्याग्रही तीन अंग्रेजों के मौत के घाट उतार देते हैं । हिंसा की लार टपकने लगती है चोरी–चौरा में पुलिस कर्मचारी हिंसा का शिकार होते हैं । 'कायाकल्प' में उसी नौकरशाही के उच्चाधिकारी अंग्रेज अंतिम साँस लेकर रह जाते हैं । 'राहुल' ने भी 'चौरी–चौरा' की घटना का संकेत किया है – "असाधारण उतेजना के कारण एक जगह कुछ खून खराबी हो जाने से गांधीजी ने सत्याग्रह बंध कर दिया ।"[२०३]

"ए यह क्या ?" ज्ञान प्रकाश कलक्टर का नोट पढ़कर मानो चिल्ला उठा, "यह चौरी, चौरा की खबर झूठ हो अतिश्योक्ति है । इक्कीस पुलिस के सिपाही और एक सब इन्स्पेकटर जिन्दा जला दिये गये और थाना फूंक दिया गया । में इस बात पर यकीन नहीं कर सक्ता । क्यों गंगा, क्या यह वाकई सही खबर है ?[२०४] ज्ञानप्रकाश विश्वास करे या न करे परंतु उक्त घटना ऐतिहासिक है । खुफिया पुलिस की रिपोर्ट के आधार पर चौरी–चौरा में २२ पुलिस कर्मचारी मारे गये थे ।

'रैन अंधेरी' में इबादत हुसैन 'चौरी–चौरा' का मनन करते हुए कहता है – जब चौरी–चौरा वाली वारदात हुई, तभी में समझ गया था कि इसमें कोई चाल है, नहीं तो भला गोरखपुर जिले के देहातियों की क्या मजाल कि पुलिस वालों को घेर कर मार दे ।

'निर्देशक' के रचनाकार ने भी 'चौरा–चौरी' का चित्रण किया है – सन् २२ का वह प्रवाह एका एक रुक गया । एक सुबह गांधीजी खून के लाल धब्बे पाकर चोंक उठे ।... आंदोलन जहाँ का तहाँ खड़ा कर दिया गया ।

'चौरी–चौरा' जैसी हिंसात्मक घटनाओं का विरोध 'कर्मभूमि' में भी मिलता है । संभव है उसी घटना से उपन्यासकार ने इसे ग्रहण किया हो ।

अमरकांत हिंसात्मक आंदोलन का विरोध करते हुए सत्याग्रहियों को समझाता और कहता है – "जिस रास्ते पर तुम जा रहे हो वह उद्धार का रास्ता नहीं है – सर्वनाश का वास्ता है । तुम्हारा बैल अगर बिमार पड़ जाए, तो तुम उसे जोतेगे ।"[२०५] समरकांत भी ग्रामीण सत्याग्रही जनता को संबोधित करते हुए कहता है – "तुम धर्म की लडाँई लड़ रहे हो । लड़ाई नहीं यह तपस्या है । तपस्या में क्रोध और द्वेष आ जाता है तो तपस्या भंग हो जाती है ।"[२०६]

सत्याग्रह आंदोलन में हिंसा न आने पाये यही प्रयत्न हमेशा बापू करते रहे । हिंसा उन्हें कभी भी स्वीकार्य नहीं थी । प्रेमचंद ने अहिंसा के संदर्भ में ही उपर्युक्त गांधीवादी भावों को पात्रों के द्वारा अभिव्यंजित किया है ।

(३) मोप्ला उपद्रव

महात्मा गांधी ने 'अहसयोग आंदोलन' के दौरान हिन्दू मुसलमान एकता की जो माला पिरोई थी वह अहसयोग आंदोलन के स्थगन के कारण बिखरने लगी । क्योंकि जनता एक खोखलापन अनुभव करने लगी थी । विदेशी सत्ता भी चुपचाप न थी । मलाबार में मुस्लिम जनता गरीब थी और हिन्दू अमीर थे । अमीरी और गरीबी की भावना ने वहाँ मात्र एक कृषक समस्या ने सांप्रदायिकता का रूप ले लिया । 'असहयोग आंदोलन' में किसान भी बापू के साथ थे । किसान और जमींदार का संघर्ष हिन्दू मुसलमान का संघर्ष बना दिया था ।

ऋषभचरण जैन ने एक गरीब मुसलमान कुतबी के भावों का अंकन ' भाई' में किया है –

"अरे यार इन (गाली) हिन्दुओं ने मुसलमानों का सारा रोजी–रोजगार खत्म कर दिया ।"

"हिन्दुओं ने ? कैसे ?"

"आज ही लडाई–झगड़ा । सशुरे अपने आप तो झगड़ा खड़ा करते हैं । दीनी भाई तादात में कम है, बस हिन्दुओं के शिकार हो जाते हैं । दीनी भाई गरीब है । हिन्दू भाई अमीर ।"[२०७]

मंगलदास खिलाफत आंदोलन के प्रचार के लिए मलाबार पहुँच जाता है परंतु हिन्दू होने के नाते मुसीबत में फँस जाता है । "सवेरा होने पर मंगल ने मलबार की गलियों को सुनसान पाया । इधर–उधर मकान धधक रहे थे । कभी–कभी मोप्लों के लोहू–लुहान और धूलि–धूरारित झुंड जय की पुकार लगाते निलक पड़ते थे । मंगल ने सोचा सचमुच मोप्लों का राज्य हो गया ।"[२०८] मोप्लों के उपद्रव का समाचार मंगलदास के घर बांदा भी पहुँचता है । कीर्तन – मंडली में उसकी चर्चा होती है – "सुना है, मोप्लो ने छावनी, खजाने सब एक पल भर में लूट लिए ... हिन्दुओं को भी बहुत तहस–नहस किया है । अंग्रेजों का कुछ नहीं बिगाड़ पाये ।"[२०६]

दक्षिण भारत के उक्त सांप्रदायिक दंगे ने सारे भारत में दंगो का आरंभ किया । अंग्रेजों ने बड़ी कुशलता से अपने विरुद्ध चलाये गये आंदोलन को हिन्दू–मुसलमान प्रश्न बना दिया । रांगेय राघव का मंतव्य है कि "मोप्ला दंगों को अंग्रेजों ने चतुराई से अपने विरोध से हिन्दुओं के विरोध में बदल दिया था ।... आर्य समाज उस पर हाहाकार करने लगा और शुद्धि आंदोलन के परिणाम स्वरूप भीषण रक्तपात हुआ । अंग्रेजों ने दोनों को हवा दी ।"[२१०]

बाबा बटेसरनाथ का कथन है – "असहयोग का वह जमाना अद्‌भुत था । देश का हर हिस्सा नई चेतना से स्पंदित होकर अंगडाइयाँ ले रहा था ।... दक्षिण मलबार के मोल्पो ने बगावत कर दी ।"[२११]

(४) सत्याग्रह का चित्रण

महात्मा गांधी ने जो 'सत्याग्रह आंदोलन' चलाया था । उसके स्वरूप का अंकन भी अधिकांश उपन्यासों में किया गया है । सत्याग्रहियों का पुलिस के

सामने धरना, नारे लगाना, झंडा फहराना, राष्ट्रीय गीत गाना आदि अनेक कार्य 'सत्याग्रह' के ही आनुषांगिक थे । ब्रिटिश भारत की गोपनीय पत्रावलियाँ सत्याग्रह के विविध कार्यो की रिपोर्टो से भरी पड़ी है । इतिहासकारों को इन घटनाओं के विस्तृत वर्णन को जानबूझ कर छोड़ना होता है । वे भी अपनी सीमा से बंध होते हैं । हिन्दी उपन्यासों में 'सत्याग्रह' के कार्य–कलाप का बहुविध चित्रण उपलबध है परंतु शोध–अध्येता यहाँ अपनी सीमाओं में बँधा होने के कारण उस कार्य कलाप की कुछ झाकियाँ प्रस्तुत करना चाहेगा ।

'रंगभूमि' गांधी 'सत्याग्रह' से प्रेरित रचना है । सूर के नेतृत्व में जो सत्याग्रह सम्पन्न होता है उसका चित्रण इस प्रकार है ।

''सुपरिन्टेन्डेन्ट ने गली के मोड़ पर आदमियों का जमाव देखा, तो घोंड़ा दौडता उधर चला – ''तुम सब आदमी अभी हट जाओ, नहीं हम गोली मार देगा ।

समूह जौ भर भी न हटा ।

''अभी हट जाओ, नहीं हम फायर कर देगा ।''

''कोइ आदमी अपनी जगह से न हिला । सुपरिन्टेन्डेन्ट ने तीसरी बार आदमियों को हट जाने की आज्ञा दी । समूह शांत गंभीर स्थिर रहा ।''[२१२]

'दो पहलू' में भी सत्याग्रही जनता का चित्रण मिलता है – ''सड़क पर मीलों तक जनता जुटी खड़ी थी । जनता का जोश बराबर बढ़ता ही चला जा रहा था । सभी के सिर पर आज सफेद खादी की गांधी टोपी दिखाई दे रही थी ।... महात्मा गांधीजी की जै, जवाहरलाल की जै, भारतमाता की जै, इन्कलाब जिन्दाबाद आदि न जाने क्या क्या ध्वनियाँ चारो ओर से आ आ कर नभ में गूँज रही थीं ।''[२१३]

बापू की गिरफतारी का चित्र भी उपन्यासों में चित्रित हुआ है । ''गांधी बाबा गिरफ्तार हो गए थे । चारों तरफ उधम मच रहा था । कभी–कभी जो

कोई शहर से लौटता, बताता है कि लारियों की लारियाँ भरे गांधी वाले गिरफ्तार हो रहे हैं ।"[२९४]

रमईपुर के सत्याग्रही थाने पर धावा बोले देते हैं । और उस पर अपना कब्जा कर लेते हैं । स्वातंत्र्य संघर्ष के इतिहास में कई बार ऐसा हुआ । सत्याग्रहियों के नेता ने "रमईपुर के चारों तरफ जितने पुलिस थाने थे सब पर कब्जा कर लिया है और अपने साथ फौज के समान एक बड़ी भीड़ लेकर लखनऊ पर अधिकार जमाने जा रहा है ।"[२९५]

थाने पर तिरंगा फहराने की घटना का वर्णन 'ज्वालामुखी' में भी है –

"क्या तेरा नाम रामनाथ है ?"

"हाँ"

"उस दिन जुलूस की मुखियागिरी तूने ही की थी ?"

"हा"

"थाने पर तिरंगा झंडा तूने ही चढ़ाया था ।?"

"हाँ !"[२९६]

'भूले बिखरे चित्र' में भी राष्ट्रीय आंदोलन का चित्र यथार्थ रूप में अंकित यिका गया है । "उस जलूस में आगे काँग्रेस की झंडियाँ लिए हुए स्वयंसेविकाये थी, जिसमें अन्य स्त्रियाँ भी संमेलित हो गई थीं । उनके पीछे कांग्रेस के स्वयंसेवक तथा अन्य कार्यकर्ता थे ।"[२९७]

"मैला आंचल" का एक सत्याग्रही अपने साथियों को संबोधित करते हुए कहता है – "पियारे भाइयो, हमने भारतमाता का नाम, हमतमाजी का नाम लेना बंद नहीं किया । तब मिलेटरी ने हमको नाखन में सुई गड़ाया, तिस पर भी हम इसबिस नहीं किए । आखिर हारकर जेलखाना में डाल दिया गया ।... जेहलन ही ससुराल यार हम बिहा करन को जायेंगे ।"[२९८]

'मेरे देश के सत्याग्रही जेल को जाते हुए निम्नांकित गीत गाते हैं –

"भाई विदा करो जाने दो

वहीं भेज दासत्व पाश माता का कटवाने दो !
जहाँ तिलक भगवान रहे थे
करते गीता ज्ञान रहे थे ।
गांधी, मोती 'लाल' जहाँ है
अली, दास, आजाद जहाँ है ।
मेरा भी बलिदान तनिक वेदी पर चढ़ जाने दो ।"[२१६]

(ग) गांधीजी के रचनात्मक कार्य का चित्रण :

'असहयोग' आंदोलन की हिंसात्मक परिणिति के फलस्वरूप महात्मा गांधीने अपने 'सत्य के प्रयोग' का पुनः मूल्यांकन किया । हिंसात्मक घटनाओं से स्वराज्य की प्राप्ति तो दूर उसकी कल्पना भी असंभव जान पड़ी । फलतः 'सत्याग्रह' को पुनः सत्य की कसौटी में कसने के लिए भारतीय जनता का सामाजिक जागरण अनिवार्य था । भारत का सामाजिक उत्थान जो राजनीतिक जागरण की नीव था, एक नया कार्यक्रम जनता के सम्मुख बापू ने रखा । बापू की यह धारणा बन चुकी थी कि रचनात्मक कार्यक्रम के बिना 'सत्याग्रह आंदोलन' की सफलता भी संज्ञाहीन हाथ से चम्मस उठाने के समान है । उसके रचनात्मक कार्यक्रम में 'जातीय सदभाव एवं एकता', 'अस्पृश्यता का निवारण', 'मध–निषेध', 'खादी और ग्रामोद्योग', 'ग्रामीण स्वच्छता' 'स्वभाषा के प्रति प्रेम', 'कृषक तथा नारी जागरण', 'राष्ट्रिय शिक्षा' आदि मुख्य विषय थे ।

गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम का प्रसंग 'सीधा–सादा रास्ता', 'पथिक', 'हृदय–मंथन' 'बलचनमा', 'पतवार', 'भूले बिखरे चित्र', 'अलका' आदि उपन्यासों में उठाया गया हैं, जिसमें यह स्पष्ट करने का प्रयत्न भी है कि गांधीजी क्यों रचनात्मक कार्यक्रम की ओर बढ़े । बापू के रचनात्मक कार्यक्रम के संदर्भ में उनके मुख्य–मुख्य कार्य पर जो हिन्दी उपन्यासों में चर्चा का विषय बने हैं, प्रस्तुत अध्याय में विचार होगा ।

(१) कृषक आंदोलन :

भारत कृषि प्रधान देश है । कृषक उसकी रीढ़ है । उस रीढ़ पर निरंतर प्रहार करने वाला सामंतवाद, ब्रिटिश साम्रज्यवाद रूपी मशीन के विभिन्न पुर्जो के समान है । जो भारतीय कृषक का शोषण करके उसकी शैली को सर्वदा भरता रहा है । दुनिया बदल रही थी । दास प्रथा विश्व के मानचित्र से धूमिल हो रही थी । संसार का कृषक अपनी पीढ़ी की केंचुल को त्याग

चुका था । परंतु भारतीय किसान उसी बरगद की धनी छाया में बैठा का बैठा रह गया । जिसके तले उसके पुरखों ने विश्राम लिया था । जब भी वह वहाँ से उठने के लिए अपनी लाठी उठाता उसे अपने सामने 'पंचभूत' पटवारी, पुलिस, जमीदार, महाजन और मुखिया की क्रूर दृष्टि दिखाई देती थी । 'रावल एग्रीकल्चर कमीशन' (१९२८) ने भारतीय कृषक के जीवन पर जो प्रकाश डाला है वह निश्चय ही उसकी दयनीय कहानी का यथार्थ चिटठा है ।

एक पुरानी कहावत है कि बैल हमेशा अपने प्राण त्यागने के स्थान की खोज में रहता है जब उसे स्थान मिल जाता तब वह मर जाता है । ठीक यही बात भारतीय किसान पर भी लागू होती है । कृषक के शोषण का संदर्भ देते हुए पंण्डित नेहरू कहते हैं कि हमारी औसत दैनिक आय सात पैसे है और हमसे जो भारी कर जाते है उसका २० फीसदी किसानों के लगान के रूप में... वसूल किया जाता है ।

भारतीय कृषक के उत्थान के लिए भारतीय 'कॉंग्रेस' भी अपने प्रस्तावों द्वारा ब्रिटिश सरकार का ध्यान आकर्षित करती रही है । 'लखनऊ कॉंग्रेस' (१८९९) में कृषकों की दशा सुधारने का प्रस्ताव पारित किया गया था । हिन्दी उपन्यासकार भी कृषक की दयनीय दशा से परिचित थे । सबसे पहले हमें प्रेमचंद के उपन्यासों में भारतीय कृषक की दुखभरी गाथा पढने को मिलती है । 'सेवा सदन' में आंशिक रूप सें युगीन कृषक हलचल तथा उसकी बेचेनी का आभास दृष्टिगत होता है । क्योंकि सन् १९१८ ई. में मालवीयजी ने दिल्ली कॉंग्रेस को जनसाधारण ओर किसानों की कॉंग्रेस बना दिया । उन्होंने देश के किसानों को कॉंग्रेस में सम्मिलित होने के लिए निमंत्रण किया था । कॉंग्रेस और कॉंग्रेस का वैधानिक संबंध यहीं से आरंभ होता है । 'चम्पारन' और 'खेडा' आंदोलन जो गांधीजी से संबंधित है वैयक्तिक आंदोलन की परिघि में आते हैं । महात्मा गांधी ने किसानों को जो आह्वान किया था 'सेवा सदन' में उसकी परछाई कुंवर अनिरुद्ध के प्रति व्यक्त इस वक्तव्य में दिखाई देती है –

आज कुंवर अनिरुद्धसिंह यहाँ एक कृषि सहायक सभा खोलने वाले है । सभा का उद्देश्य होगा किसानों को जमींदारों के अत्याचार से बचाना । बाबू राजेन्द्र प्रसाद का कहना है कि इस जागृति में होम सत्ता आंदोलन ने भी काफी मदद पहुचाई थी । एक रूप इसका यह हुआ कि जहाँ–तहाँ किसाना सभायें स्थापित हुई जो जमींदारों के विरुद्ध किसानों की शिकायतों को जाहिर करने लगी ।

गांधीजी का रचनात्मक कार्यक्रम विधिवत 'असहयोग आंदोलन' के बाद प्रारंभ होता है परंतु उसका सुत्रपात 'चम्पारन सत्याग्रह' से ही हो गया था । स्वयं बापू की भी यही मान्यता है । उसका कथन है – मैं तो चाहता था कि चम्पारन में शुरू किये गये रचनात्मक काम को जारी रख कर लोगों में कुछ वर्षो तक काम करूँ । परंतु उन्हें 'रोलट एक्ट' के प्रतिरोध के लिए आगे आना पड़ा तथा असहयोग–सत्यागह का संचालन करना पड़ा ।

'प्रेमाश्रम' की रचना की प्रेरणा का कारण अवश्य ही गांधीजी के रचनात्मक कार्य–कृषक उत्थान, चम्पारन तथा खेडा–सत्याग्रह हैं । 'प्रेमाश्रम' का कथानक खेडा सत्याग्रह के समीप अधिक जान पडता है । क्योंकि सन् १९१८ में 'खेडा' में बहुत भारी मात्रा में फसल की बाढ मारी गई थी । किसानों भुखे मर रहे थे । लगान देना उसके बस की बात न रही । लोगों ने सरकार से लगान माफी की मिन्नतें कीं । सब व्यर्थ रहा । 'प्रेमाश्रम' में मनोहर और कादिर के वार्तालाप में उस लगान–माफी की ही ध्वनि समाई है । मनोहर कहता है – ''जब उस देश के किसान राज का बंदोबस्त कर लेते हैं तो क्या हम लोग लाट साहब से अपना रोना भी न रो सकेंगे ?'' कादिर – ''तहसीलदार साहब के सामने तो मुँह खोलता नहीं, लाट साहब से कोन फरियाद करेगा ?''[२२०]

'उस युग में किसानों पर जो अत्याचार किये जा रहे थे । उसकी कहानी 'राय साहब की जुबानी' – 'मैं मानता हूँ कि जमींदार के हाथों किसानों की बड़ी दुर्दशा होती है । मैं ... बेगार लेता हूँ, डांड बीज भी लेता

हूँ बेदखली या इजाफा का कोई अवसर हाथ से नहीं जाने देता ।"[२२१] लखनपुर के किसानों के लिए गोसखां का अत्याचार बर्बर आंग्ता–प्रशासन के अत्याचारों का ही प्रतीक है । खेड़ा पर अफसरशाही ने जो कयामत ठाही थी वही कयामत गौसखाँ के शब्दों में प्रस्तुत हैं – "इसीलिए मुझे इन बेबसों पर सभी तरह की सख्तियां करनी पड़ती हैं । कहीं मुकदमें खड़े कर दिए, कहीं बेगार में फसा दिया, कहीं आपस में लड़ा दिया । कानून का हुकम है कि आदमियों को लगान देते ही पाई–पाई की रसीद दी जाय, लेकिन मैं सिर्फ उन्हीं लोगों को रसीद देता हुँ जो जरा चालाक हैं छोटे सरकार का बकाया पर इतना जोर है कि एक पाई भी बाकी रहे तो नालिस कर दो ।"[२२२] छोटे सरकार के हुक्म को फैजुल्लाह खाँ भी न टाल सका समस्त गाँव उनके अत्याचार से पीडित था ।... पूस में ही विलासी पर बकाया लगान की नालिश हुई और उसके सब जानवर कुर्क हो गये ।"[२२३] खेड़ा के किसानों ने गांधीजी से सलाह ली और गांधीजी ने उन्हें सत्याग्रह करने तथा लगान न देने की सलाह दी । लखनपुर में भी इन्हीं अत्याचारों के विरुद्ध सत्याग्रह आरंभ होता है । सामंतवाद की चाबुक, सर्पिणी की भाँति किसानों को अपने डंक का शिकार बनाती है । फजुल्लाह खाँ रूपी नोकरशाही सत्याग्रहियों को 'चौपाता के सामने धूप में खड़ा' करती । 'किसी की मुश्के कस कर पिटवाई होती, दीन नारियों के साथ पाशविक व्यवहार किया जाता', किसी की चूडियाँ तोड़ी जातीं, किसी के जुड़े नोचे जाते आदि नाना प्रकार के अत्याचार सत्याग्रह के दमन हेतु होते । परंतु सत्य की सदा विजय होती है । 'खेड़ा सत्याग्रह' के सामने ब्रिटिश सरकार को झुकना पड़ा तथा किसानों की न्यायपूर्ण माँगे माननी पड़ी । सर्वत्र आनंद और उत्साह छा गया । 'प्रेमाश्रम' में भी ताखनपुर का सत्याग्रह सकता होता है । प्रेमशंकर के द्वार पर विजय की हलचल सुनाई देती है । 'खेड़ा' सत्याग्रह' की विजय का चित्रण लखनपुर सत्याग्रह के विजय के रूप में ' प्रेमाश्रम' में भी चित्रित किया गया है ।

"अचानक उसे द्वार पर हलचल सी सुनाई दी । खिड़की से झांका तो नीचे सैंकडो आदमियों की भीड़ दिखाई दी । इतने में महरी ने आकर कहा, बहू जी लखनपुर के जितने आदमी कैद हुए थे सब वह सब छूट आये हैं और द्वार पर खड़े बाबूजी को आशीर्वाद दे रहे हैं । जरा सुनों, वह बुड्ढा दाढ़ीवाला कह रहा है, अल्लाह ! बाबू प्रेमशंकर को कयामत तक सलामत रख ।"[२२४]

प्रेमशंकर खेड़ा रूपी लखनपुर का महात्मा गांधी ही है । महात्मा गांधी की कल्पना प्रेमशंकर में की गई है । जिस पर पहले विचार हो चुका है ।

ब्रिटिश सरकार ने लैड एक्यूजीशन एक्ट' के अनुचित प्रयोग आरंभ कर दिया था । किसानों की जमीन जबर्दस्ती छीन कर बड़े बड़े कारखाने पूंजीपतियों द्वारा खोले जा रहे थे । जिससे किसान समाज में एक व्यापक रोष उत्पन्न हो गया था । जनता के उसी रोष को ध्यान में रखकर नागपुर कॉंग्रेस (१९२०) के अधिवेशन में लैंड एक्यूजीशन एक्ट' के विरुद्ध प्रस्ताव पारित कर कहा गया था कि 'लैंड एक्यूजीशन एक्ट' के अनुचित प्रयोग से पूंजीपीतयों और विशेषकर विदेशी पूंजीपतियों के लिए सरकार ने जर्बदस्ती बहुत–सी जमीन ले लेने की जो नीति बताई है – जिसके गरीब किसानों के घर–बार और परंपरा के पेरो उजड़ गये हैं । उनकी और कॉंग्रेस जनता का ध्यान आकर्षित करती है तथा सरकार से असहयोग का एक और कारण हो जाता है .. जिन भारतीय पूंजीपतियों का इससे संबंध है उनसे यह कॉंग्रेस प्रार्थना करती है कि वे गरीबों के इस आसन्न नाश को रोके । जन सेवक का सिगरेट का कारखाना भी सूरदास की जमीन छीनकर ही बनाने का प्रयास है । जान सेवक भारतीय पूंजीवर्ग का एक कठपूतला है । जो भूमि हथियाने के लिए एवं हंथकंडा अपनाता है । म्युनिसिपालिटी में वह जाता है । मिस्टर क्लार्क की मिन्नता वह करता है । सुर की हर चाल को नाकाम बनाया जाता है । ताहिर अली

जानसेवक का प्रवक्ता बनकर सूर को समझता है । उसके निम्नांकित कथन में उस युग में जबर्दस्ती भूमि के अधिग्रहण की प्रक्रिया की गंध स्पष्ट है ।

"इन बड़े आदमियों से अभी पाला नहीं पड़ा है । अभी खुशामद कर रहे है । मुआवजा देने पर तैयार है, लेकिन तुम्हारा । मिजाज नहीं मिलता, ओर यही जब कानूनी दाँव पेच खोलकर जमीन पर कब्जा कर लगे, तो चार सौ रूपये बरायनाम मुआवजा दे देंगे तो सीधे हो जाओगे ।... देख लेना.. साहब यह जमीन लेगें जरूर, चाहे खुशी से दो, चाहे रोकर ।"[२२५] 'रंगभूमि' में पूँजीपतियों की उसी छना झपटी, कानूनी दाँव–पेच का पर्दाफाश करने के लिए प्रेमचंद ने सिगरेट के कारखाने के लिए जबरन भूमि हथियाने की शासन की नीति का विरोध किया है ।

'असहयोग–आंदोलन' में गांधीजी ने किसानों को भी सम्मिलित किया था । क्योंकि उनका विचार था कि यदि "देश आजाद होगा तो केवल किसानों के बल पर । यदि स्वराज्य हमें मिलेगा तो महज किसानों की सहायता से । स्वराज्य संग्राम का अंतिम युद्ध शहर की चौक में न होगा । वह होगा किसान के खलिहान में । असहयोग आंदोलन के पश्चात भारतीय किसानों की स्वतंत्र संस्थाओं के निर्माण की प्रक्रिया आरंभ हो गई थी ।.. जिसके फलस्वरूप १९२६–२७ में उतरप्रदेश, पंजाब, तो बंगाल में अनेक किसान समायें प्रारंभ हुई । 'जागरण' में करुणाशंकर कृषक आंदोलन का सूत्रपात करता है जिसके साथ संग्रामसिंह, रुकमणी तथा पुरोहित शिवदत सत्याग्रही भी भाग लेते हैं । कृपा शंकर गांधीवादी जन नेता है । रियासत के राजा के विरुद्ध भयंकर आंदोलन होता है । सूबा के अत्याचार अंग्रेजी सरकार के अत्याचारों के प्रतीक है । सर कृपाशंकर का कथन है कि "किसान' की समस्या केवल रोटी की ही समस्या नहीं है सम्मानपूर्वक जीवन बिताने की भी समस्या है ।

सत्याग्रही अहिंसात्मक रूप से आंदोलन करते हैं और एक प्रस्ताव पारित कर रियासत के राजा के पास भेजते हैं जिसमें यह माँग की जाती है ।

किसानों की राह यह महती सभा अपने राजा को बतलाना चाहती है कि .. आज प्रजा कष्ट में है । राजा उसके कष्ट को बंटायें । राजा से किसानों की इस महती सभा का निवेदन है कि उसे (सूबा को इस पद से हटा दिया जाय और दूसरा । सूबा किसानों की सलास से नियुक्त किया जाय । ....यदि किसानों की मांगे स्वीकार न की गई तो उसका सम्मानपूर्वक जीवित रहना असंभव है । उस दशा में वे ईश्वर से प्रार्थना करेंगे और उन्हें जो भी मार्ग दिखायेगा उधर ही वे बेधड़कर जायेंगा । उपर्युक्त प्रस्ताव पर 'नागरपुर कॉंग्रेस' (१६२०) में पारित प्रस्ताव का प्रभाव स्पष्ट रूप से अंकित है ।

'अलका' में भी किसान संगठन और आंदोलन पर प्रकाश डाला गया है । जब यह पूछा जाता है कि यह किसान क्या चाहते हैं, तब स्नेह शंकर जी का कहना है – "चाहते और क्या हैं ? न्याय और इस दुख से मुक्ति"[२२६] रायबरेली में कृषक आंदोलन अपने योवन पर रहा है, जिसका संकेत अजीत नामक पात्र द्वारा कराया गया है – "देहात में सिक्का जम सकता है । रायबरेली जिले में कुछ काम भी हो रहा है ओर महीने भर पहले मैंने एक व्याख्यान भी दिया था । किसानों की सभा थी ।"[२२७] पंडित जवाहरलाल नेहरू ने रायबरेली के किसानों का संगठन किया था और आये दिन प्रत्येक जिले में नहेरू जी का भाषण होता था । किसान कॉंग्रेस के साथ थे । भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेस के नेतृत्व में चल रहे कृषक आंदोलन से परेशान कृपानाथ खीझ कर बतलाता है कि "हुजूर, ये लोग कॉंग्रेस से मिले हैं, और एक आदमी वह खड़ा है, तमाम गॉंव बिगड़े हुए है । सारी करामत इसी की है ।"[२२८]

"कुल्लीभाट' में भी किसान और कॉंग्रेस के आपसी संबंधों पर प्रकाश डाला गया है ।"[२२६]

'चम्पारन सत्याग्रह' का गुणगान करते हुए भैया का कथन है – "गांधीजी के उपकार को बहुत मानता हूँ । उन्होंने ही चम्पारन के निहतो साहबों के मद को चूर किया ओर सैंकड़ो वर्षो से भेड़ बने सियारों को सेर बनाया ।"[२३०]

काँग्रेस ने बेगार प्रथा का भी विरोध किया था । उसी का छायांकन 'चढ़ती धूप' में मिलता है । मोहन खुशहालपुर के किसानों का संगठन करता है । एक किसान सभा होती है । जिस में वह कहता है – "मैंने साफ–साफ कह दिया है, किसी हालत में तुम्हें यह बेगार नहीं देनी है । तुम खेत जोतते हो बदले में लगान देते हो । जमींदार को इसके अतिरिक्त तुमसे कुछ वसूल करने का अधिकार नहीं ।"[२३१]

किसान आंदोलन का चित्रण "बयालीस' में भी किया गया है । कल्याणपुर की जनता सर भगवानसिंह के अत्याचारों से पीड़ित होकर सत्याग्रही करती है । जब दो किसान सर भगवानसिंह से अपना दुखड़ा सुनाने जाते हैं तब सर भवानसिंह कहते हैं कि – "मुझे मालूम हो गया कि तुम मुझको पाठ पढ़ाने आये हो । तुम सायद काँग्रेस में काम करते हो, तभी बदमाशी तुम्हारे चेहरे से टपक पड़ती है । जानते हो, एक इशारे से में तुमसे आजन्म जेल में चक्की पिसवा सकता हूँ ।"[२३२] सर भगवानसिंह ब्रिटिश साम्राज्यवाद की दमनकारी प्रवृत्ति के प्रतिक हैं । कल्याणपुर की गरीब रियाया संपूर्ण भारत की पीड़ित रियाया है ।

'बलचनमा' भी कृषक आंदोलन की ध्वनि को ध्वनित करता है । उसमें चित्रित कृषक आंदोलन का एक चित्र द्रष्टव्य है – "कमाने वाला खायेगा.. इन्किलाब.. जिन्दाबाद ... जमीन किसकी .. जोते बोये, उसकी । अंग्रेजी राज का नाश हो । जमींदारो प्रथा.. नाश हो । किसान सभा जिन्दाबाद लाल झंडा जिन्दाबाद ।"[२३३] 'राहुल' के भैया नामक पात्र की तरह बाबा बटेसरनाथ भी चम्पारन के कृषक आंदोलन का वर्णन करता है, यजा – 'हदयानाथ को अपने

जीवन में पढ़ने–लिखने का समय नहीं मिला था । लेकिन महात्मा गांधी के लिए श्रद्धा और भक्ति थी । वह तभी हो गई थी जबकि चम्पारन की भूमि पर गांधीजी के चरण पड़े थे । नील के काखानेदार साहबों की तरफदारी में पहले तो सरकार तन गई परंतु पीछे उसे झुकना पड़ा और इस प्रकार चम्पारन की जनता को नील दानवों से छुटकारा मिला ।"[२३४]

'चम्पारन सत्याग्रह' की यादे 'रेणु' ने 'मेला आंचल' में भी चित्रित की है । यथा "पूर्णिया जिले में ऐसे बहुत से गाँव और कस्बे है, जो आज भी अपने नामों पर नील्हे साहबों का बोझ ढोते हैं । वीरान जंगलों और मेंदानों में नील कोठी के खंडहर राही बेटीहियों को आज भी नील युग की भुली हुई कहानियाँ याद दिलाते है ।... गौना करके नई दलहिन के साथ घर लोटता हुआ नौजवान अपने गाड़ीवान से कहता है "जरा गाड़ी यहाँ धीरे धीरे हाँकना, 'कनिया' साहेब की कोठी देखेगी । ... यही है मके साहब की कोठी ।... वहाँ है नील महने का हौज ।"[२३५]

किसान आंदोलन चल रहा है । सभी किसान सभा में जा रहा हैं । उस समय का एक अन्य चित्र भी उपन्यास में द्रष्टव्य है –

"चलो ! चलो ! सभा दखने चलो ।"

"किसान राज कायम हो, मजदूर राज कायम हो ।"[२३६]

'बारड़ोली–किसान–सत्यागह' का प्रारंभ सरदार वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व में हुआ था, जो स्थानीय सत्याग्रह की सीमा को लाँध कर अखिल भारतीय बन गया था । जिसने संपूर्ण दशे में जागरण की एक नवीन लहर उत्पन्न कर दी थी । यह आंदोलन एक तरह से 'खेड़ा आंदोलन' की पुनरावृत्ति था । मन्मनाथ गुप्त ने 'अपरिजात' में उसका विवराणात्मक चित्र अंकित किया है ।

बारड़ोली में विशेषकर बहुत विस्फोटक परिस्थिति थी । यहाँ करबन्दी आंदोलन हो चुका था, किसानों की हालत बहुत खराब थी । उन पर जुर्माने किये जा रहे थे और बराबर पुलिस का घौंस चपटटा जारी था ।

(२) नारी नागरण :

बंग–भंग के परिणाम स्वरूप स्वदेशी आंदोलन को नारी के सहयोग से एक नया जीवन मिला था । मानव–समाज के विकासार्थ नारी का समाज में एक विशिष्ट और महत्त्व स्थान है । नारी के बिना समाज पंगु है । दयानंद सरस्वती का योगदान नारी–जागरण के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण रहा है । भारतीय स्वतंत्र संघर्ष के नेता यह अनुभव करने लगे थे कि नारी के पूर्ण सहयोग के बिना स्वराज्य पाना सरल नहीं है । आर्यसमाज ने नारी स्वावलंबन के लिए जो भूमि तैयार की थी । उसका सदुपयोग राष्ट्रीय संग्राम में किया गया । 'नारी को स्वातंत्र संग्राम में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने के तथा उसके सामाजिक एवं राजनैतिक अधिकारों की माँग करने के लिए सन् १९१७ में 'भारतीय महिला संगठन' की स्थापना की गई । इसके अतिरिक्त सन् १९१८ में भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेस ने दिल्ली अधिवेशन में भी यह माँग रखी कि नारियों को पुरुषों के बराबर ही मतदान का अधिकार दिया जाए । सन् १९२५ में तो 'भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेस' की एक महिला अध्यक्षा बनाई गई थी जिसका गौरव सुश्री सरोजिनी नायडू को प्राप्त है ।

महात्मा गांधी ने नारी राजनीतिक जागरण में विशेष सहयोग दिया । नारी आहवान पर पर्दो को चीरकर राष्ट्रीय संग्राम में कूद पड़ी । बापू वेश्या–प्रथा के भी सख्त विरोधी थे । भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेस ने भी सन् १८९२ ई. में श्री यूल के प्रयत्नों से इलाहाबाद अधिवेशन में इस कुप्रथा को पूर्णतः बंद करने के लिए ब्रिटिश सरकार से कानून बनाने की माँग की थी । 'सेवासदन' प्रेमचंद की राजनीतिक घंटी है जिसके माध्यम से वह यह कहना चाह रहे थे कि यदि नारी का शोषण वेश्या के रूप में होता रहा तो हमारे राष्ट्रीय संग्राम का बाया स्कंध कमजोर ही बना रहेगा और स्वराज्य शीघ्र उपलब्ध न होगा ।

'भारतीय महिला संघ' तथा काँग्रेस के नारी–जागरण की ध्वनि जोहराजान के इस कथन में गूँजती हुई दिखाई देती है – "मैं अपनी बहनों से यही कहना चाहती हूँ कि वह आइन्दा से हलाल–हराम का ख्याल रखे।.. बदकार रईसों के शुहवत (कामातुरता) का खिलौना बनाना छोड़ना चाहिए ... अब हमें अपने को आजाद करना चाहिए।"[२३७] भोली का कथन है कि "हम कोई भेड–बकरी तो हैं नहीं कि माँ–बाप जिसके गले मढ़ दे, बस उसी की हो रहें।"[२३८] सुमन भी पुरुष की दुत्कार सहना पसंद नहीं करती। वह आत्मनिर्भरता की ओर पग बढ़ाती है। उसका कहना है यह दुत्कार क्यो सहूँ ? मुझे कहीं रहने का स्थान चाहिए। खाने भर को किसी न किसी तरह कमा लूंगी, कपड़े भी सीऊँगी तो खाने भर को मिल जाएगा।"[२३९]

'सेवासदन' में सरकार से वेश्याओं के बारे में प्रश्न करवाना,[२४०] "बाबू विठलदास का सुधारक संस्था की स्थापना करना।"[२४१] ये सब प्रश्न नारी–जागरण की ही युगीन देन है। यही कारण है कि 'असहयोग आंदोलन' में नारी ने पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर सत्याग्रह किया था।

'रंगभूमि' की इन्दु भी राजा साहब की लोंडी' बनना अच्छा नहीं समझती। राजा साहब को इन्दु की स्वतंत्रता तथा सत्याग्रह में भाग लेना गवारा नही है। राजा साहब से वह स्पष्ट कहती है "आपने अगर हुक्कम के दबाव से सूरदास की जमीन ली तो मैं चुपचाप बैठी न रह सकूँगी। स्त्री हूँ तो क्या, पर लिखा दूँगी कि सबल से सबल प्राणी भी किसी दीन को आसानी से पैरों तले नहीं कुचल सकता।"[२४२] सोफिया का आतंकवादी आंदोलन नारी–जागरण का ही प्रतिफल है।

'कर्मभूमि' की मुन्नी तो राष्ट्रीय आंदोलन की ही उपज है। अपने सम्मान की रक्षा के बदले के लिए वह तीन अंग्रेजों का खून कर देती है। उस पर मुकदमा चलाता है। दूसरी नारी उसकी मदद करती है। "रेणुका नगर की रानी बनी हुई थी। मुकदमे की पैरवी का सारा भार उसके ऊपर

था ।"[२४३] मुन्नी छूट जाती है । जनता उसका स्वागत करती है ।" फिर बैंड बजने लगा । सेवा समिति के दो सौ युवक केसरिये बाने पहने खुलुस के साथ चलने को तैयर थे । ... महिलाओं की संख्या एक हजार से कम न थी ।"[२४४]

सुखदा जन–नेता है । सब सुबिधाओं को त्यागकर अमरकांत की तरह वह भी सत्याग्रह का नेतृत्व करती है । जनता को गोलियों के भय से भागते हुए देखकर वह स्वयं गोलियों के सामने खड़ी हो जाती है ।[२४५] जनता को संबंधित करती हुई कहती है –

"मैं कहती हूं, हमारे ही हाथों में कुछ है । हमें लड़ाई नहीं करनी है, फिसाद नहीं करना है । सिर्फ हड़ताल करना है.. यह हड़ताल एक दो दिन को नहीं होगी । यह उस वक्त तक रहेगी जब तक बोर्ड अपना फैसला रद करके... न दे दे । .. बिना तकलीफ उठाए आराम मिलता ।"[२४६] सुखदा गिरफतार हो जाती है । समरकांत जमानत देने की जुगत सोचते हैं । सुखदा दृढता से कहती है – "मैं जमानत न दूंगी, न इस मुआवजे की पेरवी करुगी ।"[२४७] पंडित नेहरू का यह कथन सत्य ही है कि 'राष्ट्रीय संग्राम' की सबसे बड़ी विशेषता यही थी कि भारतीय नारियों ने इस संग्राम में भाग लिया और उससे सारे संसार को प्रभावित किया । 'कर्मभूमि' की सुखदा का साम्य कुमारी मणिबेन पटेल से किया जा सकता है । 'बारड़ोली सत्यागह' में "सरदार वल्लभभाई पटेल की पुत्री कुमारी मणिबेन पटेल भी, जिन्होने आंदोलन में अपनी राजकोट की बहनों की सहायता के लिए भाग लिया था, पकड़ी गई थी । सुखदा भी सत्याग्रही के रूप में पकड़ी जाती है । दोनों के सत्याग्रह आंदोलन में भाग लेने में घनिष्ठ साम्य है ।

'गोदान' में मालती भी एक ऐसा ही नारी चरित्र है । जो नगर कॉंग्रेस कमेटी की 'सभानेत्री' है । जो नारी उत्थान को अपने जीवन का ध्येय बना लेती है । प्रेमचंद उसके योगदान का वर्णन करते हुए कहते है – शीघ्र ही

विमेन्स लीग ओर से मेहता का भाषण होने वाला है । .. यह लीग इस नगर की नई संस्था है और मालती के उद्योग से खुली है । नगर की सभी शिक्षित महिलाएँ उसके शरीफ है ।"[२४८]

'गांधीजी भारतीय नारियों से पर्दा त्यागने की अपील की थी । बिहार से इस आंदोलन का सूत्रपात हुआ था । सारे भारत में इसका प्रभाव दिखाई दिया । बापू की अपील पर कट्टरपंथी परिवारों की लगभग पचास महिलाओं ने तुरंत हस्ताक्षर कर दिये थे ।

इलाचंद्र जोशी की लज्जा भी एक ऐसा ही अन्य पात्र है जो देश–हित का व्रत लेना चाहती है । चरखे का प्रचार गाँव गाँव में जाकर ग्रामीण नारियों के बीच करके उनकी राजनीतिक चेतना को जागरित करना चाहती है । सामाजिक बंधनो की दिवार उसके सामने है । पर्दा–प्रथा उसकी राह का काँटा है । मनोविश्लेषण उपन्यासकार जोशी जी ने उसी का अंकन 'पर्दा–प्रथा हटाओं' से प्रभावित होकर किया है । लज्जा कहती है – "पर्दानशीन औरतों को पर पुरुषों के साथ बातें करने का अधिकार नहीं होता इस सत्यानासी प्रथा के विरुद्ध अब देश भर में आंदोलन मच रहा है । पर हमारे घर में स्त्री स्वाधीनता पूर्ण रूप में वर्तमान होने पर भी राजीव को यह बात बेतरह अखरती है कि मैं डाक्टर साहब के साथ बेधडक बातें करती हूँ । ... इस अन्याय का विरोध करना ही होगा ।"[२४९]

चपला ('विदा') नारी जागरण से पूर्ण प्रभावित नवीन पीढी की युवती है । वह भी समाज में नारी की मुक्ति की समर्थक है । सिस्टर वर्मा जैसे पूँजीपति वर्ग के शोषकों का यह दृढता से सामना करती है । उसका कथन है – "सच्ची स्त्री स्वाधीनता वही है, जहां स्त्री पर अत्याचार न हो ।"[२५०] माधव बाबू इसका समर्थन करते है कि "सबसे पहले इस लोगों का लक्ष्य होना चाहिए स्त्रियों की स्वाधीनता स्त्रियों की चहारदीवारी तोड़ देनी चाहिए । ...

उनके अधिकारों के लिए सबसे पहले हमको आवाज उठानी चाहिए.. जिससे वे स्वयं अपना कैदखाना तोड़ दे ।"[२५१]

'अंचल ने 'चढती धूप' में तारा का चरित्र समाजवादी नारी के रूप में चित्रित किया है । तारा मजदूरों के कारखाने के आगे धरना देती है । देहातों में घूमती है । "जनता के काम से उसे फुरसत नही मिलती । यहाँ रहेगी तो दिन-दिन भर मिल मजदूरों की बस्तियों में घूम घूमकर बगावत फैलायेगी । बाहर रहेगी तो देहातों में व्याख्यान देती फिरेगी ।"[२५२]

वह अपनी शक्ति के सवारे अपनी उपलब्धि के बल पर समाज की मान्यताएँ ठुकराकर अपना सिर ऊँचा रखना चाहती है ।"[२५३] मजदूर औरतों को पढ़ाना, ताड़ी शराब और जुआ मजदूरों से छुड़वाना उसके अन्य कार्य हैं । अपनी नारी स्वतंत्रता की भावना का उल्लेख करते हुए वह कहती है "नारी स्वतंत्रता से मेरा मतलब है नारी के स्वतंत्र अस्तित्व और व्यक्तित्व की मान्यता । उसकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति की सुरक्षित मर्यादा । ... मन से किसी एक की रहते हुए भी रोटियों और केवल रोटियों के लिए दूसरे का बनने पर (उसे) मजबूर न किया जाए ।"[२५४]

अचल, कुनती, सुधारक तथा गिरधारी आदि सत्याग्रह आंदोलन चाहते हैं । आंदोलन में पुरुषों के साथ नारियाँ भी होती है । जिसमें स्त्रियों के आजादी के नारे लगवाए होते हैं । कुन्ती की धारणा है कि "जब तक हर बात में पुरुष को मात न दिया जाए तब तक उसकी आत्मा स्त्री की उच्चता की कायत ही होगी ।"[२५५] सत्याग्रही आगे बढ़ते हैं ओर रोक दिए जाते हैं । पुलिस के सामने कुंती के दृढ सत्याग्रही रूप के अंकन का एक चित्र प्रस्तुत है

"कुंती अकड़कर खड़ी हो गई ।

अपना कर्तव्य पालन कर रही हूँ । आपको पकड़ना हो तो मुझ को पकड़िए । आप इन गरीब स्त्रियों का और अधिक अपमान नहीं कर सकेंगे ।"[२५६]

यज्ञदत शर्माने कमला के माध्यम से राष्ट्रीय संग्राम में नारियों के योगदान का उल्लेख किया है । यथा – "कमला का स्त्रियों में किया हुआ कार्य सरहनीय था । उसने घर–घर में जाकर उन्हें कॉंग्रेस को वोट देने के लिए पक्का किया था । कार पर घूमने वाली कमला के पैरों में आजकल एक चक्कर था और उसी चक्कर में वह बिना भूख, प्यास की चिंता किए बराबर कार्य कर रही थी । स्त्रियों में खलबली पेदा कर दी थी ।"[२५७] 'इन्दुमती' भी मजदूर वर्ग में आंदोलन का नेतृत्व करके एक नवीन चेतना को जगाती है ।"[२५८] 'विसर्जन' की उर्मिला', 'भँवरजाल' की सत्या, 'मूक्ति के बंधन' की लक्ष्मी, 'हृदय मंथन' की चंचला, 'स्वराज्यदान' की मनोरमा', 'स्वाधीनता के पथ पर' की पूर्णिमा, 'सीधा–सादा रास्ता' की हरदेई 'दाद कामरेड' की शैल, 'झूठा सच' की कनक आदि अनेक नारी–पात्रों के माध्यम से उपन्यासों में नारी–जागरण का युगीन चित्र किया गया है ।

(३) अछूतोद्धार – आंदोलन :

गांधीजी का विचार था कि बिना सामाजिक उन्नति के राजनीतिक उन्नति का कोई मूल्य नहीं होता है । सामाजिक कार्य को वे राजनीतिक कार्य से कभी भी हेय नहीं समझते थे । 'असहयोग आंदोलन' हिंसा की चादर में लिपटकर भस्मीभूत हो गया था । गांधीजी के हृदय में अस्पृश्यता और साम्प्रदायिकता को जला देने की अग्नि धधक रही थी । अन्त्यजों के प्रति किये गये धृणित व्यवहार से वह बहुत दुःखी थे । उनका कहना था कि यह मेरे हृदय की प्रार्थना है कि मैं इस जन्म में मोक्ष न प्राप्त कर सकूँ तो अगले जन्म में भंगी के घर पैदा होऊ । अन्त्यजों के प्रति विशेष महत्त्व तथा स्नेह के कारण ही बापू ने "उस समय तक के 'अछूत' शब्द के बदले में 'हरिजन' शब्द का व्यवहार आरंभ कर दिया था । सन् १९२२ में 'हरिजनों' के उत्थान के लिए 'बारड़ोली' में एक प्रस्ताव पारित किया गया था । समय समय पर गांधीजी

अन्त्यजों के उद्धार के लिए कोई न कोई कार्यक्रम बनाते रहे । 'हरिजन' सेवक संघ' की स्थापना, हरिजनों के लिए मंदिर–प्रवेश की योजना, उनसे मांस न भक्षण करने की प्रार्थना आदि अनेक कार्य बापू ने उनके लिए किये । बापू के कदम से कदम मिला कर हिन्दी उपन्यासकार भी उनके साथ चल रहे थे ।

(४) साम्प्रदायिक निर्णय :

भारतीय स्वातंत्र्य संघर्ष की जडे दिन–प्रतिदिन गहरी होती जा रही थी । जनता एक प्रबल तूफान की तरह ब्रिटिश–साम्राज्यवाद के किले को झकझोरने लगी थी । उससे चिंतित होकर कुशल ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने एक नवीन चाल चली । अगस्त १९३२ ई. को मैकडोनाल्ड ने साम्प्रदायिक निर्णय' की घोषणा कर दी । जिससे हिन्दू आपस में विभक्त हो जाये और स्वाधीनता की मांग कमजोर पड़ जाय । गांधीजी अंग्रेजों के उस राजनीतिक ब्लेकमेल पर तुषारपात करने के लिए 'आमरण अनशन' की घोषणा भी की थी ।

एक ओर हिन्दू–मुसलमानों का अलगाव जारी था तो दूसरी ओर अंग्रेजों ने यह नया मोहरा खोल दिया था । विष्णु प्रभाकर ने उसी युगीन समस्या पर विचार किया गया है । जब निशिकांत से पुछा जाता है कि "हिन्दू मुसलमानों को एक कर आये" तो वह मुस्काराकर रहा जाता और कहता है "कभी नहीं, हिन्दू लोग पहले अपने में तो मेल करलें । "हम लोग अछूतों को किस प्रकार बुरी तरह दुत्कारते हैं । हम जब तक उनको नहीं अपना ले तब तक मुसलमानों की बात करना अपने को धोखा देना है । अपना घर ठीक करो । हिन्दुओं को एक स्तर पर लाओ ।"[२५९] गांधीजी के आमरण–अनशन का चित्रण भी उपन्यास में संकेत के रूप विद्यमान है । टेढ़े मेढ़े रास्तें में भी उपर्युक्त समस्या पर विचार हुआ है । यथा "अंग्रेज ही इन चमारों को भड़का रहे हैं ताकि हिन्दू मुसलमान की तरह का झगड़ा भी पैदा करके फायदा उठाया जाये ।

''नहीं तिवारजी'' नीलकंठ अवस्थी ने कहा है ''यह आग कॉंग्रेस की भड़काई हुई है ।''

कॉंग्रेस की नहीं, रामनाथ ने कहा, अंग्रेजों की चाल है । कॉंग्रेस तो महता बीच का खिलौना है । कॉंग्रेस समझती है कि वह इस सनातन परंपरा को बदल सकेगी । लेकिन अंग्रेज इसे बदलना नहीं चाहते । फिरः एक असंतोष देना चाहते हैं, उसकी हिम्मत बढ़ा कर छोड़ देना चाहते हैं ।''[२६०]

(५) हिन्दू–मुस्लिम एकता :

भारत में हिन्दू–मुस्लिम समस्या अंग्रेजी साम्राज्य की देन थी । आगे इस समस्या पर विचार हो चुका है । 'असहायेग आंदोलन' में हिन्दू मुस्लिम एकता का जो सशक्त स्वरूप उभर रहा था वह फूट डालो और राज्य करो' की नीति से उभरना न पाया । धार्मिक आर्थिक तथा राजनीतिक प्रश्नों को लेकर हिन्दू और मुसलमानो में तनातनी होने लगी । 'असहयोग' आंदोलन' का मुख्य उद्देश्य ब्रिटिश सरकार को पंगु बनाना या जिससे ध्वंसात्मक के अवशेषों पर नव निर्माण किया जा सके । बापू का कहना था कि 'हिन्दू–मुस्लिम–एकता के बिना स्वराज्य पाना संभव नहीं है । क्योंकि आपसी लडाई से शत्रु का मुकाबला कर देश को स्वाधीन करना बच्चों का खेल नहीं है ।

दुर्गा प्रसाद खत्री ने 'प्रतिशोध' में बिखराव की ओर उन्मुख हिन्दू–मुस्लिम एकता के प्रति करते हुए कहलाया है कि ''इस देश के निवासी इस समय शक्तिहीन हो रहे है । सबसे पहले उन्हें शक्ति प्राप्त करनी होगी अगर वे चाहते है कि अपनी पराधीनता को दूर कर स्वाधीन बने या अपने देश में अपना राज्य स्थापित करें तो उन्हें सबसे पहले शक्तिशाली बनना पड़ेगा ।''[२६१] जातीय एकता की बात 'उग्र' ने भी असगरी के एक पात्र द्वारा कृष्णमुरारी को लिखते हुए कही है – ''पहले हिन्दू और मुसलमान या यहूदी

कोई नहीं था । सभी आदमी थे, सभी खुदा के प्यारे बच्चे थे ? फिर ? सब लोग मिलकर फिर से आदमी क्यों नहीं बन जाते ?"[२६२]

'असहयोग आंदोलन' के बाद प्रायः धार्मिक भावना को लेकर सांप्रदायिक दंगे होते रहते थे । विभिन्न धार्मिक दल अपने स्वार्थ की पूर्ति धर्म की ओट में करते थे । प्रेमचंद ने उसकी ही चुटकी लेते हुए कहलाया है – हिन्दू, मसलमानों, इसाई, यहूदी, बौद्ध ये नहीं हैं, भिन्न-भिन्न स्वार्थो के दल हैं, जिससे हानि से सिवा आज तक किसी को लाभ नहीं हुआ ।"[२६३] सोफिया और विनय का विवाह प्रसंग भी उस युग की धार्मिक कट्टरता की ओर संकेत करता है । धर्म ने दो दिलों को मिलाने की अपेक्षा उन्हें जुदा करने में ही सहयोग दिया है । धार्मिक कट्टरता समाप्त करके मानवीय स्तर पर मानव का मानव से संबंध स्थापित होना चाहिए । यही मुंशी जी का एक मात्र उद्देश्य है ।

साम्प्रदायिक एकता का प्रश्न 'कायाकल्प' में ओर अधिक स्पष्ट हुआ है । ख्वाजा साहब पिछली हिन्दू-मुस्लिम एकता की यादें बटोरते हुए कहते हैं – "यह देखता हूँ कि आपस में पहले की सी मुहब्बत नहीं है । दोनों कोमों में कुछ ऐसे लोग हैं जिसकी इज्जत और सरवत दोनों को लड़ाते रहने पर कायम है । .. मेरा तो यह कौता है कि हिन्दू रहो चाहे मुसलमान रहो, खुदा के सच्चे बंदे हो । न सब मुसलमान पाकीजा है न सब हिन्दू देवता । इसी तरह न सब हिन्दू काफिर है, न सभी मुसलमान मोमिन । जो आदमी दूसरी कौम से जितनी नफरत करता है समझ लीजिए कि वह खुदा से उतनी दूर हैं ।"[२६४] एक ओर ख्वाजा साहब साम्प्रदायिक एकता के लिए लोगों को समझाते हैं तो दूसरी ओर वागीश्वरी का कथन है "नित्य समझाती रही, इन झगड़ों में न पड़ो । न मुसलमानों के लिए दुनिया में कोई दूसरा ठौर-ठिकाना है, न हिन्दुओ के लिए । दोनों इसी देश में रहेंगे और इसी देश में मरेंगे । फिर आपस में क्यों लड़ मरते हो ? मिल-जुल कर रहो ।"[२६५]

डॉ. आंबेडकर ने असहयोग आंदोलन के उपरांत होने वाले हिन्दू – मुसलमानों के झगड़ों की समीक्षा करते हुए कहा – यहा एक सत्य है कि हिन्दू और मुसलमानो जो दो वर्ष पूर्व मित्रों की भाँति मिलकर कार्य कर रहे थे, अब आपस में जानवरों की भाँति लड़ रहे हैं । ये लड़ाई झगड़े कभी गाय को लेकर तो कभी बाजे को लेकर प्रायः होने लगे थे ।

महात्मा गांधी ने इन धार्मिक झगड़ो से दूर रहेने की जनता को सलाह दी थी । जो झगड़े गाय की बील लेकर होते थे उस पर उनका कहना था कि ‘‘गाय तो प्राणी मात्र का एक प्रतीक है । गोरक्षा का अर्थ है, दुर्बलों, असहायों, गूंगों और बहरों की रक्षा करो । गाय को लेकर एक दूसरे का रक्त बहाना बापू उचित नहीं मानते थे । इसीलिए उनकी मान्यता थी कि ‘‘गाय की रक्षा करने का एक ही उपाय है कि मुझे अपने मुसलमान भाई के सामने हाथ जोड़ने चाहिए । और उसे देश की खातिर गाय को बचाने के लिए समझाना चाहिए । अगर वह न समझे तो मुझे गाय को मरने देना चाहिए क्योंकि वह मेरे बस की बात नहीं । अगर मुझे गाय पर अत्यंत दया आती हो तो अपनी जान दे देनी चाहिए लेकिन मुसलमान की जान लेनी न चाहिए ।

‘प्रेमचंद ने अपनी रचना ‘कायाकल्प’ में गांधीजी के इन्ही दार्शनिक तत्वों के आधार पर गाय की बलि वाला प्रसंग चित्रित किया है । मुसलमान गाय की बलि देना चाहते हैं । यशोनंदन व उनके साथी गाय की बलि का विरोध करते हैं । आमने सामने अस्त्र–शस्त्र लिए दोनों कौमों के लोग एक दूसरे का रक्त पीने को खड़े खड़े हैं । इतने में चक्रधर दोनो दलों में शांति स्थापित करने का प्रयत्न करता है । आवाजें बढ़ती जाती है कि ‘‘हम मर मिटेंगे पर गाय की कुरबानी न होने देगें ।’’ वह मुस्लिम दल के लोगों को भी समझाता है और कहता है – ‘‘इस गाय की कुरबानी करना आप अपना मजहबी फर्ज समझते हो तो शौक से कीजिए इसलाम ने कभी दूसरे मजहव वालों

की दिलवारी नहीं की । उसने हमेशा दूसरों के जजबात का एहतराम किया है ।"[२६६]

परंतु लोगों के दिलो–दिमाग में धर्म का खुमार चढ़ा था । वे किसी की कब मानने वाले थे । तब पुनः क्रोध और काँपती हुई आवाज में वह कहता है – "भाइयों ! एक गरीब बेकस जानवर को मारना बहादुरी नहीं । खुदा बेकसों के खुन से खुश नहीं होगा ।.. जानवर ही हिमायत में इन्सान का खून बहाना इन्सान को मुनासिब नहीं ।"[२६७] जब लोग नहीं माने तो चक्रधर ने फूर्ती से गाय की गर्दन पकड़ ली और कहा "आज आपको इस गौ के साथ एक इंसान की भी कुरबानी करनी पड़ेगी.. खुदा की यही मर्जी है कि आज गाय के साथ मेरी भी कुरबानी हो ।"[२६८]

साम्प्रदायिक एकता का एक अन्य चित्र 'गोदान' में भी चित्रित हुआ हैं – 'गोबर ने सबको राम–राम किया । हिन्दू भी थे मुसलमान भी थे, सभी में मित्रभाव था । सब एक – दूसरे के सुख–दर्द के साथी । रोजा रखने वाले रोजा रखते थे । एका–देशी रखने वालो एकादशी । कभी कभी विनोदभाव से एक–दूसरे पर छोटे भी उड़ा लेते थे । गोबर अलाउदीन की नमाज को उठा–बैठी कहता, अलाउदीन पीपल के नीचे स्थापित सैंकड़ों छोटे–बड़े शिवलिंग को बटखरे बताता, लेकिन साम्प्रदायिक द्वेष का नाम भी न था । गोबर घर जा रहा था । सब उसे हँसी–खुशी विदा करना चाहते हैं ।"[२६९]

नूरदीन पहलवान के अखाड़े में हिन्दू और मुसलमान का कोई भेद–भाव नहीं है । "इस अखाड़े में हिन्दू–मुसलमान सभी लोग आते थे । एक बार शहर के कुछ मुसलमान वहाँ आये । नूरुदीन के घर ठहरे । अखाड़े का भी निरीक्षण किया । सिन्दूर से विचित्र हनुमान जी की तस्वीर एक आले में विराजमान थी ।"[२७०] परंतु नूरदीन के अखाड़े से उस मुर्ति का लोप कर दिया जाता है । भाई–भाई से लड़ा दिया जाता है ।

'बलिदान' की नलिन भी हिन्दू–मुस्लिम एकता के लिए चिंतित होकर कहती है – "भैया ! न हिन्दू का बिगडता है न मुसलमान का ! दिल पर तो उसक बीतती है जिसके घर आदमी जाता है । फिर भी गोपा, तुम किसी का खून मत करना क्योंकि इससे हमारे देश की स्वतंत्रता पीछे रह जाएगी ।"[२७१]

राधिकारमण प्रसाद सिंह ने 'राम–रहीम' में साम्प्रदायिक एकता के वर्णनात्मक चित्रों का सुंदर संयोजन किया है । कुछ चित्र द्रष्टव्य हैं – "क्यों हम 'राम' के नाम पर सिर झुकाते है और 'रहीम' के नाम पर फबतियाँ चुस्त करते है ? बात यह हैं, कि राम हमारा है, रहीम दूसरों का ! और राम रहीम तो एक ही रहै, मगर हम और वे जो एक थे दो हो गए... इस तोड़–फोड़ से हमारा और उनका सर टूटा 'राम' या रहीम का तो कुछ नहीं बिगड़ा... न बना ।"[२७२]

राम रहीम दोनों एक ही हैं । बेलो को समझाते हुए बीजली कहती है – "जिसे तुम संस्कृत जवा में राम कहती हो, उसे तुम अगर फारसी जवान में रहमान कहोगी, तो इससे क्या राम हराम हो गया ? आखिर हम दोनों में से कोई भी तुम्हारी अपनी जबान नहीं । जो तकरार जबान लेकर है, उसे जाहिल दुनिया ईमान लेकर राम–रहमान लेकर मान बैठी ही । तुम अपने बाप को बाबा न कह कर अब्बा कहोगी, तो इससे तुम्हारे बात कोई दूसरे हो गए ।"[२७३] पूरा उपन्यास हिन्दू मुस्लिम एकता का संदेश देता है । राम और रहीम का मूल तत्व एक है । भगवान को मनुष्य ने अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए बाँट रखा है । "तुम उसे राम कहकर भेजो या रहमान कहकर सुमिरो, तुम्हारी जबान न हुई ! कुछ वह तो दो हुआ नहीं । तुम गीता के छंदों में उसका यश गाओं या कुरान की आयातों में उसे याद करो, तुम्हारी किताब दो हुई कुछ वह तो दो हुआ नहीं ।"[२७४] महात्मा गांधी भी 'रघुपति राधव राजा

राम', 'इश्वर अल्ला तेरा नाम' कहकर एकता का पाठ सबको सुनाते रहते थे ।

गांधी का कहना था कि हम सब एक ही आलीशान पेड के पते हैं । सभी धर्मों का मूल एक ही है । यद्यपि वे पेड के पतो की तरह एक–दूसरे से अलग अलग है । पथिक भी दोनों कौमों को एक मान कर कहता है – मैं तो हिन्दू–मुसलमानों को अलग नहीं मानता । यह फरक तो अंग्रेजों ने ही पैदा किया है ।"[२७५] हिन्दू और मुसलमानों के सांप्रदायिक नेताओंने अपने अनुयायियों के मन में विद्वेष का विष धोला था । 'विसर्जन में यूसुफ उसी ओर संकेत करते हुए कहता है "खबरदार जरा आप से बाहर न हो ठकुरी । आपस में फूट डालना ठीक नहीं है । लड़ाई के मौके पर मेल मिलाप बढ़ाया जाता है या आपस में लड़ कर अपनी ताकात को बरबाद किया जाता है ।"[२७६]

रहीम अपनी जात–बिरादरी को शांति से समझाता है । उनका कथन है "अगर अपने पडोसी, अपने भाई के खून करने से हलाल करने से, उसके घर में अग्नि लगाने से, उसका घर लूटने से कोई इन्सान मुसलमान बन सकता है तो बेशक मैं वैसा मुसलमान बनने से बाज आया ।"[२७७] वह पुनः कहता है – "तुम मुसलमान पर वार कर सकते हो, लेकिन न मैं हिन्दू को मार सकता हूँ और न मुसलमान को, क्योंकि दोनों मेरे भाई हैं ।" एक धर्म के नाते भाई हैं, और एक मुसलमान के नाते, दोनों का रुतबा बराबर है और दोनों जिन्दगी के लिए जरूरी है ।"[२७८] पीपल वृक्ष को काटने के लिए ईदु कुल्हाडी थाम खड़ा है । रहीम पीपल के पेड को काटने का विरोध करते हुए कहता है – "पीपल का तन काट डालने से पहले मेरा तन काटो ! ईदु अगर तुम्हारे हाथों में ताकात है तो लो पहले अपने रहीम काका को मौत की नींद में सुला दो ।"[२७९] अखिया भाइयों की इस प्रतिहिंसा को देखकर उन्हें

समझाते हुई कहती है – "हिन्दू–मुसलमान धर्म अल्लाह की दोनों आखें हैं – एक दाहीनी और एक बाई ।"[२८०]

हिन्दू–मुस्लिम एकता की ध्वनि 'झूठा सच' में भी सुनाई पड़ती है । तारा अपनी माँ को साम्प्रदायिक सौंपाई के बारे में समझाते हुए कहती है – "आज कल हिन्दू मुसलमानों के ब्याह हो रहे हैं । महात्मा गांधी के लड़के ने ब्राह्मण की लड़की से और जवाहरलाल नेहरू की लड़की ने पारसी से शादी की है । हिन्दू–पारसी और मुसलमान में क्या फरक ? आदमी आदमी सब एक ।"[२८१]

'मैला आँचल' में साम्प्रदायिक एकता के उस गीत का स्मरण किया गया है जो तिवारी जी ने खिलाफत के जमाने में गाया था । गीत इस प्रकार है –

"अरे चमके मंदिरवा में चाँद
मसजिदवा में बंसी बजे !
मिली खु हिन्दू मुसलमान
मान–अपमान तजो ।"[२८२]

हिन्दू–मुस्लिम एकता के सूत्र तो गांधीजी की भावना से आवेष्टित हैं वे 'आत्मदाह' नई इमारत' 'कर्मभूमि', 'गांधी चबूतरा' और 'इन्दुमती' आदि में भी बिखरे पड़े हैं । किन्तु वे केवल सूत्र ही हैं, चित्र नहीं ।

(६) विदेशी बहिष्कार एव स्वदेशी भावना का चित्रण :

लार्ड कर्जन द्वारा किए गए बंगाल विभाजन के विरोध में स्वदेशी आंदोलन ने एक नए राजनीतिक युग की स्थापना की । यद्यपि उस आंदोलन को एक प्रादेशिक आंदोलन कहा गया । परंतु स्वातंत्र्य–संघर्ष के इतिहास में आगामी संघर्ष के लिए उसने नीव के पथ्थर का कार्य किया । महात्मा गांधी के विदेशी वस्त्र बहिष्कार से पूर्व बंगाल की धरती में यह आंदोलन अपना

सिक्का जमा चुका था । बहिष्कार की इसी परंपरा के दर्शन असहयोग – आंदोलन के युग में भी होते हैं ।

जब असहयोग का दोर–दौरा चल रहा था उस समय 'प्रिन्स ओफ वेल्स' के भारत आगमन पर भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेस ने उसके बहिष्कार का प्रस्ताव पारित कर संपूर्ण देश में हड़ताल करने का आहवान किया । हड़ताल सफल रही । युवराज जहां–जहाँ गए वहाँ वहाँ उन्हें हड़तालों और सूनी सड़कें ही मिलीं ।"[२८३] पच्चीस दिसम्बर को युवराज कलकता पहुँचे, लेकिन वहाँ जितनी बड़ी हड़ताल हुई तथा समसत उतर भारत में जो हड़तालों हुई और जो प्रदर्शन हुए उनस हालत और भी चिंताजनक हो गई ।"[२८४] एक दो अन्य उपन्यासों में भी युवराज का बहिष्कार चित्रित किया गया है ।

स्वदेशी की भावना का चित्रण हिन्दी उपन्यासों में तीन रूपों–स्वदेश प्रेम, स्वभाषा–प्रेम तथा स्वदेशी वस्तु के प्रति आस्था के रूप में प्रमुखतः उपलब्ध होता है ।

स्वदेश–प्रेम :

अपने देश के प्रति अनुराग भी भावना के दर्शन पाक गांधी युगीन उपन्यासों में सांकेतिक रूप में चित्रित है । तन–माली अपनी भावना को प्रगट करते हुए कहता है मेरे मन में परदेशीपन का जो मुल घुसगया था वह निकल गया । 'आरण्यबाला' में देश के उत्थान के लिए फ्ल–कारखानों खोलन की बात कही गई है – "फ्ल कांटे का जहाँ तहाँ कारखाना खोले पर तुम्हें कपड़ा, लोहा, चमड़ा आदि सब पदार्थो के लिए यहाँ के रहने वालों को दूसरों का मुँह न ताकना पड़े ।

'हिन्दू गृहस्थ' का एक पात्र हरसहाय स्वदेशी भावना से अभिप्रेरित होकर भारत में दियासलाई का कारखाना खोलने के लिए प्रयत्न करता है । कारखाने के विचीय सहयोग हेतु वह अनेक संस्थाओं को पत्र लिखता है । पत्रोत्तर के

माध्यम से उपन्यासकार ने स्वदेशी भावना का चित्रण करते हुए कहलाया है महाशय, अपने भारतवर्ष में दियासलाई का जो कारखाना खोलने का विचार है उसका हमारी सभा अनुमोदन करती है । आप वास्तव में देश हितैसी हैं और आपका कार्य वस्तुतः भारत वर्ष का हित करने वाला है ।"[२८५]

स्वदेश के पति प्रेम की भावना का चित्रण प्रेमचंद के वरदान में चित्रित हुआ है, सुवामा, देवी से एसे पुत्र की याचना करती है जो देश के लिए स्वप्राणों का उत्सर्ग कर सके । सुवामा से प्रसन्न होकर देवी पुछती है ।

'सुवामा ! मैं तुझसे बहुत प्रसन्न हूँ । माँग क्या माँगती है ?

'सपूत बेटा ।'

'जो कुल का नाम रोशन करे ?'

'नहीं' ।

'जो विद्वान और बलवान हो ?'

नहीं ।

फिर सपूत बेटा किसे कहते हैं ?'

जो अपने देश का उपकार करे ? ।"[२८६]

देश को पराधिनता की कारा से मुक्त करने हेतु ऐसे ही सपूतों के लिए भारतीय नारियाँ कामनाएँ करती आई हैं । जिन्होंने तिलक, भगनसिंह, आजाद, सुभाष, गांधी नहेरू आदि सपुतों कोजन्म दिया है 'रक्तमंडल' के क्रांतिकारी भी 'महाशक्ति की जय तथा जननी जन्मभूमि की जय ।'[२८७] का गुणगान करते हुए हँसते हँसते देशोद्धार का प्रयत्न करते हैं । 'मेरा देश ' में विमल जब अपनी मरणा मां से मिलने के लिए जेल से माफी मांगकर मां के पास जाता है तब मरणा माँ बेटे को उसका कर्तव्य बतलाते हुए कहती है । " मेरा पुत्र होकर अपने पिता का पुत्र होकर मांफी माँग ली ! मेरे जन्मने में कलंक का टीका लगा दिया । जिसके पिता ने देश के लिए हँसते हँसते प्राण अर्पण कर दिए..वह कायर निकला, वह देशद्रोही निकला हाय मैं पुत्र के होते हुए भी

निपुत्री से बुरी हूँ ।"[२८८] किशोर विमता रोने लगता है और पुछता है "माँ की ममता छोड़ सकूँगा ? कोशिश करो और अपना मंत्र बना लो मेरा देश ।"[२८९]

प्रोफेसर शिवदयाल भी देश–प्रेम की भावना से ओत–प्रोत हैं । परतंत्र भारत में वहसंसारी बनना नहीं चाहते । वह शपथ लेते हुए कहते हैं – मैं शपथ.. लेता हूँ कि जब तक देश आजाद नहीं होता तब तक मेरेलिए संसार का कोई व्यवहार नहीं विवाह व्यापार या रोजगार । मैं तमाम तन–मन–धन माता के चरणों पर निछावर करता हूँ ।"[२९०]

इसी प्रकार की भावना का चित्रण 'धर्मपुत्र' में भीं दिलीप के कथन में अभिव्यक्त हुआ है – जब तक मेरा देश स्वतंत्र न हो जाए.. तब तक ब्याह करके गुलाम संतान पेदा करने से क्या फायदा है माँ ! फिर कोन जाने हमें किस मुसीबत में फँसा पडे । जेल जाना पडे, फांसी लटकना पडे.. पहले हिन्दी.. हिन्दुस्तान है । पीछे ब्याह शादी ।"[२९१]

सवभाषा–प्रचार :

महात्मा गांधी से पूर्व भी तिलक ने स्वभाषा के प्रयोग पर विशेष बल दिया था । जिन्होंने मराठी भाषा के प्रति लोगों का ध्यान आकर्षित किया था । हिन्दी भाषा की उन्नति तथा प्रयोग के प्रश्न पर भी उन्नीसवी शताब्दी के अंत में अंग्रेज प्रभुओं से प्रार्थना की गई थी । "प्रभुवर श्रीमान एन्टोनी मैगडो नेता साहब बहादुर कोन्यायशील और सच्चे प्रजा हितैषी समझ दीनहीन हिन्दी भीन्याय के लिए एक बार फिर पुकार मचाने के लिए साहस करने में सन्नद्ध हुई है । महात्मा प्रेमानंद के निम्नोकित कथन में उस युग की भाषाई समस्या का संकेत मिलता है । उसका कथन है – मैं एक बात कहने को भूल गया कि शिक्षा तुम्हें अपने देश की भाषा में देनी होगी... शिक्षा का माध्यम तुम्हें जगन्मान गुणकारी नागरी ही को रखना पड़ेगा ।

भाषाई जागरण का श्रेय भी महात्मा गांधी को ही जाता है । नरमदली राजनीति के युग में उसके विकासार्थ कोई प्रयत्न विशेष नहीं किया गया । बापू भाषा को माता के समान मानते थे । उनका कहना था कि “विदेशी भाषा द्वारा आप जो स्वतंत्रता चाहते हैं वह नहीं मिल सकता .. अब हमें अपनी मातृभाषा को और नष्ट करके उसका खून नहीं करना चाहिए : बापू ने ये शब्द सन् १९१८ में हिन्दी –साहित्य सम्मैलन इन्दोर के आठवें अधिवेशन में कहे थे । उन्होंने लोगों को स्मरण कराते हुए कहा था मेरा क्षेत्र दक्षिण में प्रचार करना है । सन् १९१८ में जब आपका अधिवेशन यहा (इन्दौर में हुआ था, तब से दक्षिण में हिन्दी प्रचार के कार्य का आरंभ हुआ है ।

सेवासदन में सर्वप्रथम गांधीजी के स्वभाषा प्रचार का प्रकारान्त से उल्लेख मिलता है । प्रेमचंद विठलदास के माध्यम से कह कहते है यह मानसिक गुलामी उस भौतिक गुलामी से कही गई गुजरी है । आप उपनिषदों को अंग्रेजी में पढ़ते हैं । गीता को जर्मन में अर्जुन को अजुना, कृष्ण को कृशना कहा कर अपने स्वभाषा ज्ञान का परिचय देते है ।”[२६२] राष्ट्रीय कार्यो में विदेशी भाषा का बोलबाला था । गांधीजी ने “कॉंग्रेस कार्यकर्ताओं को हिन्दी के विषय में उपदेश दिया था परंतु उसके सिवाय कोई भी नेता स्वभाषा के प्रचार पर जोर नहीं देता था ।”[२६३] कुँवर अनिरुद्ध के द्वारा उसी भावना को व्यक्त कराया गया है । वह कहता है “मेरी समझ में नहीं आता कि अंग्रेजी भाषा बोलने और लिखने में लोग क्यों अपना गोरव समझते हैं । मैंने भी अंग्रेजी पढ़ी है । दो साल विलायत रह आया हूँ । पर मुझे उससे ऐसी धृणा होती है । जैसे किसी अंग्रेज के उतारे कपड़े पहनने से ।”[२६४]

शेखर के मन में भी विदेशी भाषा के प्रति धृणा उत्पन्न होती है । उसके मनोभावों का अंकन इस प्रकार किया गया है – उसने देखा कि हमारी नस–नस में विदेशी का प्रभुत्व ही नहीं आतंक भरा हुआ है.. उसे यह भी ध्यान हुआ कि पिता उसे घर में भाईयों से अंगेजी में बात करने को कहा

करते हैं । उसके आत्माभिमान को बहुत सख्त धक्का लगा ।... उसने उसी दिन से बड़ी लगन से हिन्दी पढना आरंभ किया और चेष्टा से अपनी बातचीत में से अंग्रेजी शब्द निकालने लगी ।"[२६५]

महात्मा गांधी भी अंग्रेजी के सख्त विरोधी थे । 'करांची कँाग्रेस' में उन्होंने कहा था, जो लोग हिन्दुस्तानी नहीं समझते उनके लिए यह अच्छा होगा कि वे कँाग्रेस के प्रतिनिधित्व और भारतीय कँाग्रेस कमेटी की सदस्यता के लिए उम्मेदवारी न खडे हों ।

भैया दुक्खू भाई से कहता है – "हिन्दी पढ़ना खराब नहीं है "और संतोखी उसका समर्थन करती है – "अपनी भाषा में पढ़ाई होगी तभी भैया कोइ मरद–औरत अनपढ़ नहीं रहेगा और तब किताब, अखबार पढ़ समझ लेंगे ।"[२६६]

एक मजदूर का स्वभाषा के प्रति लगाव और अंग्रेजी भाषा के प्रति धृणा यशपाल ने इन शब्दों में व्यक्त किया है – "एक मजदूर कामरेड, जो पार्टी का मराठी अखबार अपने पड़ोस में बेचता था, इस अंग्रेजी से उकता गया । हाथ के अखबार को फर्श पर पटक वह क्रोध में चिल्ला उठा क्या दशे का स्वराज्य लेगा तुम लोग ! तुम्हारा तो दिमाग मांझे इंगरेजी, जुबान इंगरेजी, हर बात इंगरेजी ।"[२६७]

प्रसूति गृह का उद्घाटन होता है । उद्घाटन–भाषण किस भाषा में पढ़ा जाय, इस समस्या को लेकर प्राणनाथ और डॉ. शेफाली के मध्य जो वार्तालाप हुआ उसका चित्र उपन्यास में इस प्रकार चित्रित है

"मैंने स्वयं अंग्रेजी में लिखा है ।"

"नहीं में हिन्दी में ही बोलूँगी ।"

"तो में क्या करूँ ? मैं हिन्दी में तो लिख नहीं सकता ?'

"तुम भी हिन्दी में लिखो हम लोग क्या अंग्रेज है ?

मैं तो चाहती हूँ विज्ञापन, साइनबोर्ड, कमरों के नाम सब हिन्दी में हों । यह हमारी दासता का चिहन है जो हम अपनी भाषा का महत्त्व नहीं देते ।"[२९८]

स्वदेशी वस्तु–प्रचार :

महात्मा गांधी ने वस्त्रों के उपयोग के प्रति जनता में एक नई प्रेम की भावना उत्पन्न की । स्वदेशी वस्त्रों के लिए यह आवश्यक था कि पहले विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार किया जाय । क्योंकि परमुखापेक्षी राष्ट्र भी दासता की बेडियों को तोडने में समर्थ नहीं होता है । स्वराज्य की प्राप्ति के लिए देश की जनता का स्वावलम्बी होना अत्यंत आवश्यक था । इसके लिए महात्मा गांधीने विदेशी वस्त्र बहिष्कार की विधि को सर्वोतम माना । जिससे जनता विदेशी वस्त्रों के अभाव में परंपरागत खादी को अपना सके । बापू ने अपने इस आंदोलन में सभी विदेशी वस्तुओं और उनकी दुकानों का बहिष्कार आरंभ किया । कलकता में सर्वप्रथम विदेशी वस्त्रों की होली जलाई गई । विदेशी वस्तु–बहिष्कार एक राजनीतिक अस्त्र के रूप में प्रयोग किया गया ।

बापू द्वारा आयोजित स्वदेशी आंदोलन का प्रभाव सर्वप्रथम 'गबन' में दिखाई देता है । देशहीन स्वदेशी आंदोलन का एक कर्मठ समर्थक है । जब उसे पुछा जाता है कि तुम विलायती कपड़े नहीं पहनते तो वह कहता है "दो जवान बेटे इसी सुदेशी की भेंट कर चुका हूँ । भैया । एसे–ऐसे पट्ठे कि तुमसे क्या कहें ! दोनों विदेशी कपड़े की दुकान पर तैनाथ थे । क्या मजाल थी कि कोई ग्राहक दुकान पर आ जाये । हाथ जोड़कर धिधिया कर, धमकाकर, लजवाकर सबको फेर देते थे ।"[२९९]

देवीदीन देश–भक्तों की कथनी और करनी के अंतर पर व्यंग्य करते हुए कहता है – "बड़े बड़े देश भक्तों को बिना विलायती शराब के चैन नहीं आता । अनेक घर से जाकर देखो एक भी चीज देसी न मिलेगी । दिखाने

को दस–बीस कुरते गाढ़े के बनवा लिए, घर का सब सामान विलायती है । उस पर दावा यह कि देश का उद्धार करोगे । अरे तुम क्या देश का उद्धार करोगे ! पहले अपना उद्धार कर लो । .. विलायती शराबें उड़ाओं, विलायती मोटरों दोड़ाओं, विलायती मुरब्बे और अचार चखो । ... विलायती बरतनां में खाओं.. पर देश के नाम पर रोये जाओ । मुदा इस रोने से कुछ न होगा ।''[३००]

शेखर ने भी स्वदेशी के रंग में रंग कर ''विदेशी कपड़े उतार कर रख दिये । जो दो–चार मोटे देशी कपड उसके पास थे वही पहनने लगा । बाहर घूमने–मिलने जाना उससे छोड दिया क्योंकि इतने देशी कपड़े उसके पास नहीं थे कि बाहर जा सके । .. वह ऊपर की खिड़की के पास जाकर खड़ा हो जाता है और बाहर देखा करता ।''[३०१] वह सभी अपने विदेशी कपड़ो की होली जला देता है । उसका चित्रण भी द्रष्टव्य है – ''शेखर ने घर के सब कमरों में से विदेशी कपड़े बटोरे और नीचे एक खुली जगह ढेर लगा दिया । .. उस पर मिट्टी का तेल उँड़ेला.. और आग लगा दी । आग एकदम भभक उठी.. वह आग के चारों ओर नाचने लगा और गला खोलकर गाने लगा ।

गांधी का बोलबाला ! दुश्मन का मुँह काला ।''[३०२]

'राहुल' ने भैय के द्वारा विदेशी वस्तु बहिष्कार पर एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है । भैया दुखराम से कहता है – ''पुराने गांधी की परछाई से भी जोंके धबराती थी .. लेकिन गांधीजी के ''बिलायती माल न छुओ'' कहने से हिन्दुस्तानी मिलों का माल खूब बिकने लगा । खूब नफा होने लगा, तो सेठ लोग भी गांधीजी की आरती उतारने लगे, जमींदार भी दंडवत करने लगे और अब गांधीजी ने भी बार–बार कहना शुरू किया, में सेठों जमींदारों का धन छीनना नहीं चाहता.. सेठ जमींदार किसानों मजदूरों के माँ–बाप बन जायें ।''[३०३]

डिप्टी कलक्टर गंगाप्रसाद विलायती सर्ज खरीदने के लिए बाजार जाता है, बाजार का जो हाल था उसका चित्र देखिये –

बजाला उस समय प्रायः उजडा सा पड़ा था । दुकानदार हाथ पर हाथ धरे बैठे थे । गंगाप्रसाद एक ऊनी कपड़े की दुकान पर पहुँचा । “कोई अच्छी सर्ज दिखाइये ।.. विलायती सर्ज के स्थान निकालो, .. बाबू साहेब, स्वदेशी का नारा सुन करहे हैं आप ! ... दिखाता इसलिए नहीं हूँ कि लोग बाग विलायती कपड़ों की होली करने पर उतार आये हैं । भला इस बाजार में विलायती सर्ज को कौन पूछेगा ।”[३०४]

गांधीजी की प्रेरणा से आये दिन विदेशी वस्त्र अग्नि को समर्पित होते रहते थे । उसका भी एक चित्र इस प्रकार है बीच चौराए पर कपड़ों का ढेर लगाया गया .. व्याख्यानों के बाद इस विदेशी कपड़ों के ढेर में आग दी गई । .. उस लपट के निकलते ही गोलो ने ‘महात्मा गांधी की जय’ और ‘ भारत माता की जय’ के नारे लगाये ।”[३०५]

चर्खा तथा खादी प्रचार :

अपने रचनात्मक कार्यक्रम में गांधीजी ने अछूतोद्धार हिन्दू–मुस्लिम एकता तथा ग्राम्य जागरण के अतिरिक्त चर्खा तथा वन खादी कातना अनिवार्य अंग माना था । खादी उत्पादन तथा चर्खों के द्वारा शहर की ओर उन्मुख आर्थिक प्रवाह को रोक कर उसे ग्रामोन्मुख बनाना ही एक मात्र उद्‌देश्य था । गांधीजी ने चर्खे की उपादेयता पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि उसक द्वारा हिन्दुस्तान की भुखें मरने वाली अर्ध–बेकार स्त्रियों को काम दिया जा सकता है । उनका काता हुआ सूत बनवाना और उसकी खादी लोगों को पहनाना, यही मेरा विचार है और यही मेरा आंदोलन है ।

बापू के उस आंदोलन की गर्जना कृपाशंकर के इन शब्दों मे समाई है : “आप हाथ से काते और बुने वस्त्र का व्यापार करे तो देश का जो धन

विदेशों को जा रहा है, वह तो बचे ही, साथ ही देश के किसानों की बेकारी और गरीबी भी दूर हो जाय ।... किसानों को कपास बोने के लिए उत्साहित करे, उन्हें उधार चर्खे बनवा कर दे, और उनके काते सूत को खरीद लें.. इस प्रकार सारे दशे में शुद्ध स्वदेशी वस्त्र के प्रचारक बने । डॉ. राजेन्द्र बाबू कहते है – चर्खा द्वारा ही हम युवकों को सहस्त्रों की संख्या में काम दे सकेंगे और जनता की धनवृद्धि में सहायक हो सकेंगे ।

अमरकांत (कर्मभूमि) चर्खे का महत्त्व बतलाते हुए कहता है – चर्खा रूपये के लिए नहीं चलाया जाता ? वह आत्म शुद्धि का एक साधन है ।"[३०६] गांधीजी चर्खे को आत्म–शुद्धि का ही एकमात्र साधन नहीं मानते थे अपितु वह तो राष्ट्र का प्राण उसे कहते थे । नीरोज खर्चा कातने को राष्ट्रीय आंदोलन के संदर्भ में एक फैशन की संज्ञा देती है उसका कथन है "अब देखती हूँ भले घर की स्त्रियाँ भी उनमें शामिल हो गई हैं । वहाँ तो हुल्लड़ की देर रहती है ।"[३०७] उसकी उक्त भावना का उतर इन शब्दों में उस मिलता है – "हमारे देश के प्राण ही ठहरे, कृषि, ताँत और चर्खा । .. ढाका की मसलिन जगत विख्यात है । .. आज भी वह प्रथा गाँवों में दीखती है । इस मूवमेन्ट ने केवल हमें सोते से जगाकर चर्खा हाथ पर धर दिया है ।"[३०८] इतने में बाहर से सतीश की आवाज सुनाई पड़ती है – 'मैं तो गर्व समझता हूँ विनय । हमारी माँ बहनों के हाथ की देश की बनी हुई वस्तु व्यवहार करने में गर्व तो है ही, इसके अतिरिक्त तृप्ति, संतोष, सान्त्वना जो है, .. अपने आप पर निर्भर रहना गर्व है, सार्थकता है और है मनुष्यत्वका यथार्थ प्रकाश ।"[३०९]

खदर के महत्त्व को स्वयं गांधीजी ने इन शब्दो में व्यक्त किया था "खादी देश की सब की आर्थिक स्वतंत्रता और समानता के प्रारंभ का चिहन है । खादी को .सके सारे फलितार्थों सहित स्वीकार करना चाहिए उसका अर्थ है संपूर्ण स्व्देशी मनोवृत्ति का रखना और जीवन की सारी आवश्यकताएँ

ग्रामवासियों की महेनत और बुद्धि से प्राप्त करना । खादी की उपादेयता का चित्र 'गांधी टोपी' में भी चित्रित किया गया है भाई साहब, खदर के कुरते में भी जेब होती है.. आज खादी की चदर ही सदाक्त की पताका है – रामनाम की चादर नहीं । देश की बोली है और खादी की झोली ।"[३१०]

जबतक हम कातेंगे नहीं तब तक हमारी पराधीनता बनी रहेगी । बापू के कथन में स्पष्ट दिखाई देती है – चर्खे और खदर में स्वराज्य है भारत की स्वतंत्रता है ।"[३११] महात्मा गांधी ने चर्खे के प्रचार और प्रसार के लिए ' अखिल भारतीय बुनकर संघ' की स्थापना की थी उसी के आधार पर 'मुक्ति के बंधन' में काँग्रेस कार्यकर्ता विशाल सिंह भी 'चर्खा मंडल' की स्थापना कर उसका घर–घर प्रचार करते हैं । ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार खादी प्रचार किया करते थे । विसालसिंह जब खादी प्रचार पर जाते, तब उन्हें मार्ग और बटियों पर, चक्की और पनघटों पर, घरों और खेतो पर दल केदल किसान उन कातते दिखाई देते । किसी के अंग में उसी के हाथ का कुर्ना और बुना स्वीटर था तो किसी के कंधे पर बैसा ही कम्बला विशाल भी गद गद हो जाते और कहते – "सूत के धागे केसे नहीं है स्वराज्य ।"[३१२]

चर्खे का संदेश जब गाँव–गाँव पहुँचे गया तो उसने गाँव का काया पटल कर दिया । उसी का एक चित्र 'बयालीस में द्रष्टव्य है – गाँव का रंग बदला हुआ पाया । चर्खे की भनभनाहट से गाँव गूँज रहा था और खदरधारी पुरुष और स्त्रियाँ दिखाई पड़ती थी । हिन्दू मुसलमान का भेद उठ गया था ।[३१३]

राधा–बाबू जेल से छूटने पर खादी प्रचारक बन गये थे । "गांधी महात्मा के हुक्म से खदर और चर्खे प्रसार करते फिरते थे । .. आस–पास के इलाको में हजारों चर्खे चलने लगे । .. जगह जगह कते हुए सूतों की लच्छियों का हिसाब लेते थे । बदले में कातने वाली औरतें पैसा भी पाती थी ।"[३१४] गांधीजी ने खादी स्वयंसवकों के माध्यम से संपूर्ण देश में खादी के क्रय और विक्रय केन्द्रों की स्थापना की थी ।

'रेणु' ने 'मैला आँचल' में ग्राम्य–खादी केन्द्र का सुंदर चित्र प्रस्तुत किया है । ग्रामवासी प्रसन्न है कि ''चर्खा सेन्टर खुल गया है । अब गाँव में गरीबी नहीं रहेगी पटना से दो मास्टर आये हैं – चर्खा मास्टर और करधा मास्टर । एक मास्टरनी भी आई है – औरतों को चर्खा सिखाने के लिए । औरतों से कहती है – ''चर्खा हमारा भतार पुत, चरखा हमार नाती, चरखा के बदौलत मोरा दुआर भुले हाथी । चर्खा की बदौलत हाथी ? जै.. गांधीजी की जै ।''[३५]

(घ) सविनय अवज्ञा आंदोलन

(१) नमक सत्याग्रह आंदोलन

महात्मा गांधी ने असहयोग आंदोलन में जो आह्वान किया था उसी कार्यक्रम की पूर्णाहुति का प्रयास सविनय अवज्ञा आंदोलन में हुआ । ब्रिटिश सरकार ने नमक जैसी आवश्यक और सुगतापूर्वक सुलभ वस्तु पर कर लगाकर उसे भारतवासियों के लिए एक कष्टसाध्य बोझ बना दिया था । ऐसे जनता अहितैषी नमक कानून को तोड़ने का कार्यक्रम सविनय सत्याग्रह के रूप में पुनः बापू ने प्रारंभ किया । 'सविनय भंग का अर्थ किसी नियम को भंग करके उसके लिए गिरफ्तारी का हुक्म होने पर तुरंत खुशी के साथ गिरफ्तार होना है ।

"बारह मार्च १९३० ई. की प्रातःकाल को ६१ वर्ष की उम्र में हाथ में लाठी लिए ७८ आश्रमवासी सत्याग्रहियों के साथ बापू नमक कानून को भंग करने के लिए डांडी यात्रा पर पैदल चल दिए । जैसे जैसे बापू नमक बताते जाते और कानुन का भंग करने के लिए सत्याग्रह करते जाते वैसे–वैसे उपन्यासकार भी उन ऐतिहासिक घटनाओं का अंकन अपनी कल्पना के मिश्रण से यथार्थ रूप में लेखनीबद्ध कराता गया ।

साबरमती के गर्भ में फिर तूफान उठता है । तूफान की सनसनी देश पर छा जाती है ।... महात्मा की समाधि टूट गई । गांधी ने अहिंसा के मंत्र पर सत्याग्रह के ब्रह्मास्त्र का फिर आहवान किया । डंडी मार्च (डांडी मार्च) की घोषणा वज्र–टंकार की तरह देश के जर्रे – जर्रे पर कोंध गई । पंडित जवाहरलाल नेहरू नमक सत्याग्रह के प्रभाव की समीक्षा में लिखते हैं कि ऐसा मालूम हुआ कि जैसे कोई बटन दबा दिया गया और अचानक सारे देश में, शहरों और गाँव में जिधर देखे रोज नमक बनाने की धूम फैल गई । सुरेन्द्र के दिशा–निर्देशन में नमक कानुन गाँव में उसे उबाल कर नमक तैयार करते

हैं । पुलिस उन पर अपना दमनचक्र चलाती है । उन्यासकार कहता है – "वाह रे सत्याग्रही वीरो ! एक भी टस से मस नहीं हुआ । सब अपने–अपने स्थानों पर कढ़ाई के कुन्दों को पकड़कर बैठ गये । बराबर लाठी की मार खाने पर भी पढ़ाई के कुन्दों को वीर नहीं छोड़ दे थे ।"[३१६]

गुरुदत्त ने महात्मा गांधीजी 'डांडी यात्रा' का चित्रण अपनी रचना में किया है । यथा – "अचानक एक दिन यह समाचार मिला कि महात्मा गांधी ... साबरमती के आश्रम के साठ सत्याग्रहियों को लेकर नमक कर के विरोध में सत्याग्रह करने के लिए दंडी चल पड़े है । ... महात्मा गांधी अहमदाबाद से पैदल वहाँ पहुँचे । ... वहाँ उन्होंने नमक बनाने का प्रयत्न किया ... उन पर मुकदमा चलाया गया और जेल भेज दिया गया ।"[३१७] उपर्युक्त चित्रण पूर्ण ऐतिहासिक है । नमक सत्याग्रह तो मात्र एक साधन था । साध्य तो स्वराज्य की प्राप्ति था । उसके लिए घर–घर नगर नगर तथा गांव–गाँव में नमक बनाने का जो आंदोलन चलाया गया उसका एक अन्य चित्रण इस प्रकार है – "कलकत्ते में भी नमक सत्याग्रह आरंभ किया गया । बारी–बारी से छोटे–छोटे झुडों में लोग नमक बनाने के लिए श्रद्धानंद पार्क में एकत्रित होते थे ।"[३१८]

बाबा बटेसरनाथ भी कहता है – "दस वर्ष बाद फिर काँग्रेस ने मोर्चा बंदी की । जन–विरोधी कानूनों से ऊबे हुए लाख–लाख लोग फिर मैदान में निकल आये ।... इस बार महात्मा गांधीजी अपने आश्रमवासी चेलों के साथ नमक तोड़ने लगे ।"[३१९] 'नमक भंग' का कार्य देखने के लिए जन–समूह उमड़ पड़ता था । क्योंकि 'नमक कानून तोड़ने का यज्ञ जिल्ले में कहीं न कहीं आए दिन होता ही रहता था । "बूढ़े बच्चे और जवान सैकड़ो की तादाद में तमाशा देखने आए थे । काफी दूर पर उधर अलग खड़ी औरतें भी गांधी बाबा का यह यज्ञ देखने आई थी ।"[३२०]

मन्मथनाथ गुप्त के 'बलि का बकरा' में 'घरसना नमक गोदाम सत्याग्रह' का चित्र अंकित किया गया है – "अंत में सरकार ने विवश होकर गांधीजी

को गिरफतार कर लिया । गांधीजी ने जब देखा कि समुद्र के पानी से नमक बनाने पर भी सरकार उन्हें गिरफतार नहीं कर रही है... तो उन्होंने नमक के कारखाने पर धावा करके नमक ले लेने का कार्यक्रम चलाया । पंद्रह हजार लोग एक साथ नमक के कारखाने पर धावा करने लगे ।"[३२१] 'घरसना नामक सत्याग्रह' इतिहास में प्रसिद्ध है । घटना तो ऐतिहासिक है परंतु मंतव्य उपन्यासकार ने अपने ढंग से प्रस्तुत किया है । नमक बनाने का एक अन्य चित्र भी प्रस्तुत है – "कस्बे के पूर्व में एक झील–सी थी, जिसका पानी कुछ अधिक खारा था ।" इसी का पानी बैल गाड़ियों पर बड़े–बड़े घडो पर लाया जाता था और कढ़ाई में डालकर नीचे से लकड़ी जलाकर नमक निकाला जाता था । इस प्रकार तैयार किया हुआ नमक पुडियों में बाँधकर कस्बे भर में बिकता था ।"[३२२]

भगवती चरण वर्मा ने अपने उपन्यासों में नमक सत्याग्रह का ऐतिहासिक अंकन किया है । यथा बापू की मार्च में डांडी यात्रा, अप्रैल में नमक कानून तोड़ना, गिरफतार होना, देशभर में नमक बनाकर नमक सत्याग्रह चलाया था । उसका एक चित्र प्रस्तुत करते हुए उपन्यासकार लिखता है – "आनंद भवन के सामने हजारों आदमियों की भीड़ खड़ी थी और 'भारत माता की जय', ' महात्मा गांधी की जय', 'मोतीलाल नहेरू की जय', 'जवाहरलाल की जय', के नारे लगा रही थी । ... अखबारों में यह खबर छप चूकी थी कि महात्मा गांधी अपने सत्याग्रहियों के साथ दांडी के नजदीक पहुँच चुके हैं । वे लोग परसों नमक बनाकर सत्याग्रह करेंगे ।"[३२३]

गाँव की हलचल 'झंडा पताका' को देखकर एक व्यक्ति मामा से पूछता है – "मामा बात क्या है ? तो मामा बोले कि गाँव के सभी लड़कों ने वोलंटियरी में नाम लिखा लिया है... कागरेसी तेवारी नीमक कानून तोड़ने वाले हैं । बड़े–बड़े चूल्हों पर कहानियों में चिकनी–मिट्टी और पानी डालकर खौला

रहे हैं ... पूछा कि यह क्या है भाई तो कहा कि नोमक कानून बन रहा है ।"[३२४]

(२) लगानबंदी आंदोलन

नमक सत्याग्रही की समाप्ति के बाद विदेशी वस्त्र–बहिष्कार मधनिषेध आंदोलन के साथ–साथ लगानबंदी आंदोलन प्रारंभ हुआ था । रायबरेली जिल्ला (उत्तर प्रदेश) से यह आंदोलन भारत के कोने–कोने में फैला गया । क्योंकि संसार में मंदी का प्रभाव छाया हुआ था । भारत भी उससे अछूत न रह सका । किसान की दशा बड़ी दयनीय हो गई थी । अनाज के दाम गिरते चले जा रहे थे । किसान को लगान देना कठिन होने लगा ।

हिन्दी उपन्यासों के विकास के इतिहास में सबसे पहले विश्वव्यापी मंदी के प्रभाव से विचलित कृषक की आर्थिक विपन्नता तथा उसके लगान न अदा कर पाने की विवशता के दर्शन 'कर्मभूमि' में होते हैं । 'सविनय सत्याग्रह' तक आते–आते भारतीय कृषक ने 'चंपारन सत्याग्रह', 'खेड़ा सत्याग्रह' तथा 'बारड़ोली सत्याग्रह' से अपने अनुभव और विश्वास में गुणात्मक वृद्धि कर ली थी । अवध प्रांत के कृषकों ने तो उस मंदी के कारण घरबार ही उजड़ गये थे । प्रेमचंद ने उसी असहायावस्था का चित्रण 'कर्मभूमि' में अंकित किया है – लेकिन इस साल अनायास ही जिन्सों का भाव गिर गया । इतना गिर गया कि जितना चालीस साल पहले था । जब भाव तेज था, किसान अपनी उपज बेच–बाचकर लगान दे देता था, लेकिन जब दो और तीन की जिन्स एक में बिके तो किसान क्या करे । कहाँ से लगान दे, कहाँ से दस्तुरियाँ दे, कहां से कर्ज चुकाये । विकट समस्या आखड़ी हुई, और यह दशा कुछ इसी इलाके की न थी सारे प्रांत, सारेदेश, यहाँ तक कि सारे संसार में यही मदी थी ।"[३२५]

लगानबंदी आंदोलन से किसान और जमींदार के संबंधों में तनाव उत्पन्न होने लगा । पुरुषोतम दास टंडन ने अवध के जमींदारों के नाम अपने एक

इश्तिहार में कहा था – "आपके और किसानों के बीच जो इस समय खींचतान है मुझे बहुत सत्ता रही है आप कृपा कर धीरज रखें । नालिशें न करे और गैर कानूनी तरीकों से मारपीट या कब्र कर लगान वसूल पाने की कोशिश न करें । किसान और जामींदार के हिंसात्मक संबंधों का चित्रांकन प्रेमचंद ने स्वामी आत्मानंद के निम्नोक्त कथन में चित्रित किया है जो बलपूर्वक जमींदार महंत के ठाकुरद्वारे को घेरकर अपनी माँग मनवाना चाहता है । उसका कथन है उसका कथन है –

"तो आओ, आज हम सब चलकर महंत जी का मकान और ठाकरद्वार घेर लें । जब तक वह लगान बिलकुल न छोड़ दे, कोई उत्सव न होने दे ।" बहुत सी आवाजें आईं "हम लोग तैयार है ।"[३२६]

अमरकांत इस हिंसा का विरोध करता है और गांधीजी के स्वर से स्वर मिलाकर कहता है – "अगर धैर्य से काम लोगे तो सब कुछ हो जायेगा । हुल्लड़ मचाओगे तो कुछ न होगा । उल्टे और डंडे पड़ेंगे ।"[३२७] जवाहरलाल नेहरू ने भी किसानों को सलाह दी थी कि लगान के बारे में कॉंग्रेस ने आपसे कहा कि जो किसान आसानी से दे सकते है वह समझौता करके दे । अमरकांत भी समझौता तथा शांति के द्वारा उक्त प्रश्न को सुलझाना चाहता है । वाइसराय से मिलने के बाद महात्मा गांधी ने भी कृषको से कहा था कि वे धैर्य एवं शांति रखें । आकस्मिक विपति – आर्थिक मंदी का सामना हिम्मत से करें । सरकार, कांग्रेस और जमींदारों के एक आपसी समझौते के अनुसार यह मान लिया गया था कि किसान केवल आधा लगान इस समय अदा कर दे । इस ऐतिहासिक घटना का उल्लेख भी प्रेमचंद ने 'महंत जी द्वारा चार आने की छूट की घोषणा' से किया है ।

अलका मे भोला चमार भी – चमड़े का बाजार गिरने का हाल सावित्री को बताया है जो युगीन मंदी के प्रभाव की ओर संकेत हैं ।"[३२८] लगान बंदी का एक चित्र भी 'अलाका' में चित्रित किया गया है ।

"बधुआ ने डरते–डरते, पलकें तिलमिलाते हुए धीरे से पूछा है कहाँ जायेंगे रे महगुँ ? 'तू तो बात पूछता है और बात की जड़ पूछता है ।" 'तो लगान फिर किसको दिया जायेगा ? किसी को नहीं, लगान दिया गया तो सुराज कैसा ?"[३२९] 'अलका' में लगानबंदी के और कई चित्र भी हैं जो उस युग के किसान की दशा पर प्रकाश डालते हैं ।

रांगेय राघव ने 'सीधा सादा रास्ता' में लगानबंदी का चित्रण यत्र–तत्र किया है । जिसमें जमींदारों द्वारा किसानों का शोषण, उनका दमनचक्र, धांधली, मारपीट, गाली गलौज, जायदाद, की कुर्की आदि के प्रसंगों की संयोजना है । विस्तार में न जाकर लगानबंदी के बारे में अलगू, गोवर्धन, बैजनाथ की आपसी बातचीत का एक चित्र प्रस्तुत है । "अलगु जमींदार के अत्याचार को भाग्य की बात मानकर संतोष कर लेता है । गोवर्धन का कहना है "अगर भाग्य ही सब कुछ होता तो महात्मा गांधी इतनी बड़ी लड़ाई क्यों लड़ते ?

कुछ पुरुषार्थ भी होते हैं ? पंडित बैजनाथ बाजपेयी ने सिर हिलाकर कहा, 'पड़ोस के लोग लगानबंदी करेंगे तो हम बैठे नहीं रहेगे ?... गोवर्धन ने दृढ़ता से कहा, जमींदार अंग्रेजों से मिलकर किसान को चूसते रहे से । अब नहीं होगा । लगानबंदी कर दो । सरकार क्या करेगी ? जब खंभा ही टूटेगा तो छत गिर कर ही रहेगी ।"[३३०] लगान बंदी आंदोलन का संकेतात्मक चित्र ' स्वतंत्र भारत' बाबा बटेसरनाथ तथा 'टेढ़े–मेढ़े रास्ते' आदि रचनाओं, में भी चित्रित है ।

(३) गोलमेल संमेलन तथा गांधी इर्विन समझोता

भारतीय स्वातंत्र्य संघर्ष से भयभीत ब्रिटिश सरकार भारतीय जनता के मनोबल को तोड़ने और उसके उत्साह को कम करने के लिए कोई न कोई पैतरेबाजी प्रायः किया करती थी । दमन चक्र का चाबुक जब निरर्थक और संज्ञाहीन हो जाता था तब किसी न किसी समझौते का नाटक किया जाता

था । गोलमेज सम्मेलन के तीन दौर चलाये गये । पहले गोलमेज सम्मेलन में कॉंग्रेस ने प्रत्यक्ष भाग नहीं लिया । द्वितीय सम्मेलन में भाग लेने के लिए गांधीजी लन्दन गये । पर उससे पूर्व 'सविनय सत्याग्रह' को समाप्त करने के लिए वाइसराय और बापू के मध्य पत्र व्यवहार होने लगा । अंततः बापू और लार्ड इर्विन में एक समझौता हुआ जिसे 'गांधी इर्विन समझौता' कहा जाता है । जिस में सत्याग्रहियों का छोड़ा जाना, शांतिपूर्ण पिकेटिंग करना, संधीय शासन तंत्र का विचार तथा ब्रिटिश हितों आदि पर सहमति हुई थी ।

गांधीजी बड़े विश्वास के साथ गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने के लिए लंदन पहुँचे । पर उन्हें खाली हाथ भारत लौटना पड़ा । हिन्दी उपन्यासों में बापू का लंदन जाना वहाँ से भारत आना, लार्ड इर्विन के साथ समझौते को किया जाना तथा भारत आते ही कैद कर दिया जाना अनेक प्रसंगात्मक चित्रों का अंकन किया गया है ।

'महात्मा गांधी लंदन से बैरंग वापस आये हैं – लंदन की सैर कर । नाम तो बना काम कुछ न बना गोलमेज की सेज पर भारत का भाग्य सो गया । गांधीजी ने भारत की भूमि पर कदम रखा और पैरों में जंजीर पड़ गई । दमन का बाजार फिर गर्म हुआ ।

यह ऐतिहासिक सत्य है कि ब्रिटिश सरकार ने अपने समझौते का निष्ठापूर्वक पालन नहीं किया और गांधीजी भारत लौटने भी न पाये थे कि उतर पश्चिम सीमांत प्रदेश, उतर प्रदेश और बंगाल आदि प्रदेशों में पुनः अमानुषिक अत्याचार होने लगे थे । उसी ब्रिटिश दमन की ओर 'राजा साहब' ने संकेत किया है । "गांधीजी को द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में भिजवाने का प्रयत्न भारतीय नरम पंथियों श्री सप्रू और श्री शास्त्री आदि ने किया था । उसकी ओर गुरुदत ने भी संकेत करते हुए लिखा है – "अकस्मात समाचार पत्रों में कॉंग्रेस की सरकार को सुलह की चर्चा होने लगी । डॉ. तेजबहादुर सप्रू और मिस्टर जयकर इस काम में गहरी दिलचस्पी लेने लगे । ... कुछ

दिन की भाग दौड के पश्चात् डॉ. सप्रू और श्री जयकर अपने प्रयत्न में सफल हो गये... महात्मा गांधी ने गोलमेज परिषद में विलायत जाना स्वीकार कर लिया ।"[३३१]

अंग्रेजी की एक कहावत की तरह ही गोलमेज परिषद में केवल एक ही बात पर बार–बार विचार हुआ कि "मौसम कैसा है ? फलतः उस संमेलन का परिणाम नकारात्मक रहा । "स्वतंत्र भारत में अयोध्याप्रसाद का कथन है कि – "विलायत में गोलमेज सभा होने की चर्चा तो हो रही है । किन्तु फल की पूर्ण आशा नहीं बैठती ।

गांधीजी जब गोलमेज संमेलन में भाग लेने के लिए गये थे तो उनके अर्धनग्न फकीराना वेश को लेकर ब्रिटिश नौकरशाही में बैचेनी फैल गई थी । गांधीजी ने फकीराना वेश के अलावा किसी अन्य वेश में बादशाह से मिलने से स्पष्ट इनकार कर दिया था । गांधीजी के उस व्यक्तित्व का चित्रांकन उपन्यासकार ने इस प्रकार किया है – "गांधीजी नवम्बर में ब्रिटिश बादशाह से मिलाए गए, इस प्रकार तरह–तरह का दबाव पड़ने पर उन्होंने अपने साधारण वस्त्रों के अलावा और कुछ पहनने से इनकार किया । यही नहीं वह अजीब लिबास में आये । घुटनों तक धोती थी, उपर से सिलबिले ढंग से एक चादर ओढ़ ली । जहाज के जो फोटो आये, उनमें तो यह भी दिखाई देता था कि कभी–कभी वह इस चादर को भी उतार देते थे, लंदन में एक सभा में भाषण करते हुए वह घुटनों तक धोती मात्र पहने रहे ।

यह भी ऐतिहासिक सत्य है कि लंदन जाते समय जहाज में 'राइट' के एक विशेष संवाददाता ने गांधीजी का साक्षात्कार लिया था और उसके भावी कार्यक्रम के बारे में पूछा था । गांधीजी की वेशभाषा पर रांगेय राघव ने एक चित्र अंकित किया है – श्यामनाथ से उसका नौकर पूछता है – क्यों मालिक ? गांधी महात्मा विलायत गये है ?

"हाँ, श्यामनाथ ने कहा ।

"और वे खोर ओढ़े भी बादशाह से मिलेंगे ? उसके स्वर में गर्व था फिर वह कहने लगा,

"मालिक ! राजा साहब के लोग कहते है कि वे तो महात्मा है ।"[३३२]

गोलमेज परिषद में भारत के सभी वर्गों के प्रतिनिधि थे । 'बाबा बटेसरनाथ' में उसका चित्रण द्रष्टव्य है – "१९१३ में अंग्रेजों ने गोलमेज कान्फ्रन्स का नाटक रचा । इस देश के पचासों प्रतिनिधि उसमें शामिल हुए गांधी, जिन्ना, अम्बेदकर और दूसरे बड़े–बड़े आदमी, सेठों के नुमाइन्दे, रियासतों के नुमाइन्दे, जमींदारों के एवजी दीगर जमातों और जातियों के मुखिया यह कान्फ्रन्स क्या थी शिवजी की बारात थी पूरी । जितने मुँह उतने बोल, विलायती राजनीतिज्ञों के मनोरंजन के लिए वह एक अच्छा अखाड़ा रहा ।... समझौते का फल यही हुआ कि कुछ नहीं हुआ । गांधीजी सदभावनाओं के गुब्बारे लटकाये हुए विलायत से वापस आये, खाली हाथ ।"[३३३] उपर्युक्त चित्रण में उपन्यासकार ने पूर्ण यथार्थवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है । गोलमेज परिषद से भारत को क्या मिला यह भी इतिहास प्रेमी भली भाँति जानते हैं ।

'नमक सत्याग्रह' तथा 'लगानबंदी आंदोलन' के पश्चात् जो गांधी इर्विन समझौता सम्पन्न हुआ था उसका स्पष्ट प्रभाव 'कर्मभूमि' में दिखाई देता है । जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि 'सविनय सत्याग्रह' के बाद लार्ड इर्विन ने गांधीजी को समझौते के लिए बुलाया था । दोनों के मध्य समझौता हुआ । इसी प्रकार का समझौता 'कर्मभूमि' में भी एक कमेटी बनाकर किया गया है । लार्ड इर्विन की भावना का अंकन निम्नांकित वाक्यांश से स्पष्ट हो जाता है "साहब इस झगड़े को जल्द तय कर देना चाहते हैं । और इसलिए उनकी आज्ञा है कि सारे कैदी छोड़ दिए जाय और एक कमेटी करके निश्चय कर लिया जाय कि हमें क्या करना है ।"[३३४] 'साहब' से लार्ड इर्विन की है । गांधीवाद अमरकांत 'साहब' के सुझाव का शीघ्र ही स्वागत करता है । सामायिक राजनीति के संदर्भ में उसका कथन है – "हम इसके सिवा और

क्या चाहते हैं कि गरीब किसानों के साथ इन्साफ किया जाय और जब उद्देश्य को पूरा करने के इरादे से एक ऐसी कमेटी बनाई जा रही है तो हमारा धर्म है कि उसका स्वागत करे ।"[३३५]

सत्याग्रहियों को 'समझौते' के अनुसार छोड़ दिया गया था । 'अपराजित' में उसका चित्रांकन हुआ है । यथा – "गांधी इर्विन समझौते के फलस्वरूप सारे राजनीतिक कैदी छूटे । जनता की पहली विजय थी जब किसी रियासत या आत्मसर्मपण के कारण नहीं बल्कि पैक्ट के फलस्वरूप लोग छूट रहे थे । लोगों में जोश था, सबके चेहरे खिले हुए थे जैसे स्वराज्य अभी नहीं आया था, पर उसके भिनसार की पहली किरणें दिखाई पड़ रही थी ।"[३३६]

पंडित जवाहरलाल नेहरू ने गांधी इर्विन समझौते से अपनी असहमति व्यक्त की थी । उसका एक सांकेतिक चित्र–देखिये – "महात्मा जी से बड़े लार्ड इर्विन महोदय ने समजौता किया, जो पंडित जवाहरलाल नेहरू को पसंद नहीं और फिर विलायत में १६३० तथा १६३१ में एक गोलमेज सभा एकत्र की गई ।

(ङ) स्वातंत्र्य संघर्ष की प्रमुख घटनाओं का चित्रांकन

हिन्दी उपन्यासों में भारतीय स्वातंत्र्य संघर्ष का चित्रण उस रत्नमय सागर के समान है जिसमें जहाँ चाहे डूबकी लगाइए कोई घटनात्मक रत्न हाथ अवश्य लगेगा । संभव है कुछ रत्नों पर घूल लिपटी हो या कुछ दबे पड़े हों । परंतु राजनीतिक संदर्भ प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में चाहे या अनचाहे उपन्यासों में बहुधा देखने को मिलते हैं । इच्छा तो थी उन सभी उपलब्ध चित्रित घटनाओं पर प्रकाश डाला जाए परंतु जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि कुछ सीमाएँ होती हैं । इस तथ्य का ध्यान आते ही कुछ को छोड़ना पड़ रहा है और कुछ को समेटना । इसीलिए स्वातंत्र्य संग्राम की प्रमुख–प्रमुख घटनाओं का ही विश्लेषण संभव है ।

(१) कांग्रेस के विभिन्न अधिवेशन

'काँग्रेस' की स्थापना का श्रेय भी लार्ड हयूम को ही जाता है । दुखराम के शंका प्रकट करने पर कि क्या "विलायती व्यक्ति ने काँग्रेस को स्थापित किया ?" भैया कहना है – "हाँ, गोरे साहबों ने काले साहबों को बढ़ावा दिया । पच्चीस साल तक तो काँग्रेस में इन्हीं काले साहबों का जोर हो रहा । इनका काम था साल में एक बार किसी बड़े शहर में इकठा होना और हाथ जोड़कर अंग्रेजी सरकार से प्रार्थना करना ।"[३३७]

'सूरत काँग्रेस' का अपना एक इतिहास है । जिसने स्वातंत्र्य संग्राम को एक नई चेतना प्रदान की थी । लोकमान्य तिलक की राजनीति उस अधिवेशन पर छा गई थी । गरम और नरम दल का प्रारंभ यहीं हुआ था । उपन्यासकार उस घटना का वर्णन करते हुए कहता है कि १९०७ में सुरत में जो काँग्रेस हुई, उसमें गरम दल के केवल ३०० सज्जन थे तथा नरम दल के १००० । फिर भी लोकमान्य तिलक महोदय ने नरम दल की खुशामदी नीति का घोर प्रतिवाद किया । नरम दल वालों की कुछ थोड़ी सी मारपीट भी हुई

और सभा भंग हो गई ।... गरम दल का प्रभाव दिनोदिन बढ़ता गया । मुक्ति के बंधन का रचनाकार कहता है – ''सम्राट के जयघोष पर अब तक कॉंग्रेस का अधिवेशन समाप्त होता था । इस बार वह घोष वंदे मातरम् के सुमधुर मंत्र में बदल गया ।''[३३८]

'लखनऊ समझौता', 'कांग्रेस' और 'लीग' का ही समझौता न था अपितु वह दो कौमों का समझौता था । १६१६ का साल आधुनिक भारत के राजनीतिक इतिहास में एक सीमा चिन्ह है । इस समझौतो से उत्पन्न सांप्रदायिक सदभाव का छायाभास घूमिल रूप में 'प्रेमाश्रम' में इजादहुसेन के कथन में मिलता है – ''दोस्तो, अब मजहब परवरी का जमाना नहीं रहा । पुरानी बातों को भूल जाइए । आप बारह । हमसे गले मिलाने के लिए बढ़े लेकिन हम पिरमिद सुलताबूद के जोश में हमेशा आपशे दूर भागते रहे ... हमारी तंगदिली को भूल जाइए । उसी बेगाना कौम का एक फर्द हकीर आज आपकी खिदमद में इतहाद का पैगाम लेकर हाजिर हुआ है... हम इतदाह की सदा से इस पाक जमीन के एक–एक गोरों को भर देना चाहते हैं ।''[३३६]

'लखनऊ समझौते' पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए गंगाप्रसाद कहता है – ''लखनऊ का समझौता कागज पर हुआ है, दिलों में नहीं हुआ है । वह समझौता सिद्धांत है, कर्म नहीं है और फिर आप यह भूल जाते है कि वह केवल समझौते हैं ।''[३४०]

'स्वतंत्र भारत' और 'इन्दुमती' में भी 'लखनऊ' पैक्ट का उल्लेख किया गया है ।

'लाहोर कॉंग्रेस' में पूर्ण स्वराज्य की रूपरेखा बननी आरंभ हुई थी और पं. जवाहरलाल नेहरू उसके सभापति मनोनीति किए गये थे । सरकार मिन्टो पार्क में अधिवेशन किए जाने की आज्ञा टाल रही थी । उस घटना का अंकन एक पंजाबी गीत में किया गया है ।

"मिन्टो पार्क नू ले जाओ वई लंदन चुक्क के ।
आसा रावी ते झंडा झुलादेंगे वई ।"[३४१]

अर्थात् अरे अंग्रेजो, मिन्टो पार्क को लंडन उठाकर ले जाओ, हम अपना झां रावी के किनारे फहरा लेगे ।

कांग्रेस अधिवेशन में मनोनीति सभापति की खूब समधज के साथ सवारी तथा जलूस निकाला जाता है । वह परंपरा आजतक चली आ रही है । जवाहरलाल नेहरू का जो भव्य जुलूस निकाला गया था उसे देखने के लिए चेतन को पहली रात सर्दी लगती रही लेकीन कँग्रेस नगर पहुँचकर महज खुशी से ही वे पहली रात न सोए थे... प्रधान के जलूस में वे दोनों शामिल हुए । जुलूस कांग्रेस नगर अथवा (लाजपतराय नगर) से जो रावी के तट पर बनाया गया था पैदल स्टेशन तक गया और पंडित जवाहरलाल नेहरू के आने पर फिर बाजारों में से होता हुआ चला ।"[३४२]

अमृतसर में भी कांग्रेस का अधिवेशन हुआ था । उसका चित्रण ज्ञानप्रकाश और गंगाप्रसाद के कथोपकथनों द्वारा चित्रण किया गया है । ज्ञानप्रकाश गंगाप्रसाद से कहता है – "तो फिर चलते हैं मेरे साथ अमृतसर ।" गंगाप्रसाद चोंक पड़ा, "होश में तो हो चाचा । मुझे अमृतसर कांग्रेस में चलने को कहते हो ? सरकार तक खबर पहुँच गई तो जो कुछ तरक्की वरक्की होने वाली है... सब समझ लो... रुक गई ।"[३४३] सरकारी नौकरी की परवाह न करते हुए गंगाप्रसाद ज्ञानप्रकाश के साथ अमृतसर कांग्रेस अधिवेशन में जाने की सूचना ज्वालाप्रसाद को देते हुए कहता है – में कल अमृतसर के लिए रवाना हो रहा हूँ । आज २२ दिसम्बर है, २६ दिसम्बर से वहाँ कांग्रेस हो रही है । "तो क्या तुम्हारा कांग्रेस में जाना जरूरी है ?" ज्वालाप्रसाद ने पूछा । "जरूरी तो इस दुनिया में कुछ भी नहीं है, लेकिन देश में जो नई चेतना आ रही है उसके दर्शन तो में करना हो चाहता हूँ ।"[३४४]

सन् १९४२ में बम्बई में जो ऐतिहासिक काँग्रेस का अधिवेशन हुआ था उसका प्रभावांकन 'ज्वालामुखी' में स्पष्ट दिखाई देता है । उपन्यासकार द्वारा किया गया चित्रांकन विशुद्ध ऐतिहासिक है । जो समकालीन, युगीन हलचलों की याद दिलाता है – "बघा के बाद बम्बई और ७ अगस्त १९४२ का दिन गोवालिया टेंक में अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी का अधिवेशन हुआ जिसमें वर्धा के प्रस्ताव पर मुहर लगानी थी । लोगों में एक अजीब हलचल थी । वातावरण में गंभीरता थी, पर विशिष्ट प्रकार का उल्लास भी थी, दिलो में अशंका थी, उमंगे थी ।"[३४५]

बम्बई अधिवेशन के बाद जिन काँग्रेसी कार्यकर्ताओं को अदालत में सजाएँ दी गई थीं उनमें अभयकुमर भी था । उसी का एक और चित्र प्रस्तुत है ।

"अदालत ने बाद जिन काँग्रेसी कार्यकर्ताओं को अदलात में सजाएँ दी गइ थीं उनमें अभयकुमार भी था । उसी का एक और चित्र प्रस्तुत है ।

"अदालत ने पूछा – "तुम बम्बई काँग्रेस के अधिवेशन में शरीक हो । गए थे ?

"जी हाँ ।"

"फिर ? फिर क्या ?"

"यानी वहां के नेताओं के भाषण सुने ?"

"जी हाँ, उसी के लिए तो गया था ?"[३४६]

इसके अतिरिक्त अन्य अखिल भारतीय काँग्रेस अधिवेशनों का चित्रण भी आंशिक रूप से अन्य उपन्यासों में किया गया है, यथा – 'अहमदाबाद – कांग्रेस' नागपुर कांग्रेस, गया कांग्रेस 'मद्रास कांग्रेस' कानपुर कांग्रेस कलकता कांग्रेस और हरिपुर कांग्रेस आदि आदि ।

(२) साइमन कमिशन

भारत पर एक नया शासन–विधान लादने के लिए सात सदस्यों का सर जान साइमन के नेतृत्व में एक कमीशन भारत आया । उसमें एक भी भारतीय न था । इसलिए 'साइमन कमिशन का बहिष्कार भारत के सभी दलों ने किया । प्रदर्शनों में लाठियाँ चलीं । कई लोग घायल हुए ।"[३४७] साइमन कमीशन की हलचल दुखराम ने भी सुन रखी थी । वह भैया से पूछता है – "साइमन कमीशन क्या है भैया ?"

"भैया बिलायती जों के बहुत चालक है भाई । जब लोगों में ज्यादा असंतोष देखती हें, तो पाँच–सात आदमियों की गुट को यह कह कर भेज देती है, कि यह लोग जाकर जांच–पड़ताल करेंगे । फिर हम तुम्हारे लिए जरूर कुछ करेंगे, इसी को कमीशन कहते हैं । उस वक्त जो कमीसन आया था, उसका मुखिया था साइमन जोकों का एक छटा सरदार इसलिए उसे कमीशन कहा जाता है ।"[३४८]

साइमन कमीशन बहिष्कार को लेकर कामतानाथ और ज्ञान प्रकाश जिनमें एक पूंजीपति वर्ग का और दूसरा कॉंग्रेस दल का कार्यकर्ता हें, आपस में नोक झोक होती है उसका चित्रण वर्मा जी ने अंकित किया है –

"जी वे स्वराज्य देने आए, और ये उन लोगों से बात न करे कितनी बार बड़ीं हिमायत है । रायबहादुर कामतानाथ ने अपनी ऊँची आवाज में कहा "हिन्दुस्तान को स्वक्या कद्दु मिलेगा ।"

ज्ञानप्रकाश मुस्काराए "रायसाहब, मिलने के नाम से तो कट्दु ही हाथ लगेगा । इसलिए हम लोगों ने साइमन कमीशन का बहिष्कार किया । उन लोगों से मिलने से कोई फायदा होता तो हम लोग जरूर मिलते ।"[३४९]

जब साइमन कमीशन भारत का दौरा कर रहा था तो 'साइमन गो बैक' के नारों से सारे भारत में उसका विरोधात्मक स्वागत किया जा रहा था । उसी समय का चित्रण गुरुदत ने अपनी लेखनी से किया है – कमीशन

भारतवर्ष में आया, परंतु भारतवासियों ने इस कमीशन को अपने माथे पर कलंक का टीका समझा । इस कमीशन का बहिष्कार किया गया । उसके स्थान–स्थान पर पहुँचने पर काले झंडे दिखाये गये । 'साइमन गो बैक' के नारे लगाये गये ।... जहाँ जहाँ कमीशन गया वहाँ ही पुलिस की लाठियों से फोडे गये सिरों के रक्त से भूमि रंजित हो गई । लाहौर में जगतप्रसिद्ध पंजाब–केसरी लाला लजपतराय पर लाठियाँ चली... लखनऊ में जवाहरलाल नेहरू पर डंडे पड़े ।

साइमन कमीशन जब पंजाब में पहुँचा तो उसका बड़ा विरोध हुआ । लजपतराय की छाती में पड़ी लाठियों के कारण उनकी मृत्यु हो गई थी । ' साइमन गो बैक' तो हर भारतीय की जबान पर था ।

(३) स्वराज्य की व्याख्या

भारतीय वेदों में ऋग्वेद में 'स्वराज्य' शब्द का प्रयोग मिलता है यथा –

"नहिं नुयादधीमसीद्र को वीर्या परः ।

तस्मिन्नृण्णामुत ऋतुदेवाआजासिसंदधुर चर्न्नतु स्वराजम् ।"

यह एक आश्चर्यजनक बात है कि लेटिन भाषा के 'REGERE' जिससे ' REGIME' शब्द बना है । संस्कृत भाषा के राज् और ऋग (REG) में अद्‌भुत साम्य है । वेदों में भी इस शब्द के विभिन्न प्रयोग राजा स्वराजा, स्वराज, स्वराट्, स्वराजम्, स्वराजे, स्वराजः आदि रूपों में मिलते हैं ।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के बाद सन् १९०६ में कांग्रेस के अधिवेशन में दादाभाई नौराजी ने 'स्वराज्य' शब्द की उद्‌घोषणा की थी । उन्होंने कहा था 'स्वराज्य' का अर्थ है – "अपना राज, अपना राष्ट्र तथा अपनी सरकार की स्थापना ही हमारी जनता का लक्ष्य है । सन् १९०६ से लेकर 'पूर्ण स्वराज्य की घोषणा सन् १९२९ तक 'स्वराज्य' शब्द के अर्थ को लेकर वाद–विवाद चलता रहा । क्योंकि 'स्वराज्य की लोग तरह–तरह से

व्याख्या करते थे । कभी 'होमरूल', कभी औपनिवेशिक स्वराज्य और कभी पूर्ण स्वराज्य की गूंज राष्ट्रीय संग्राम में छाई रही । भारतीयों नेताओं द्वारा 'स्वराज्य' की समय–समय पर वैयक्तिक व्याख्या भी की गई । यथा गांधीजी के शब्दों में स्वराज्य का अर्थ है देश की बहुसंख्यक जनता का शासन । यथा पं. नहेरू के अनुसार स्वराज्य का वास्तिविक अर्थ है संपूर्ण भारतीय जनता विशेषकर कृषकों की कठिनाइयों का विनाश करना । देशबंधु चित्त रंजन दास पं. गोविंदवल्लभ पंत, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद आदि ने भी स्वराज्य की व्याख्या अपने अनेक भाषणों में की थी ।

'स्वराज' से जन सामान्य का क्या अभिप्राय था, इसका चित्रांकन भी उपन्यासों में उपलब्ध होता है । यथा सत्याग्रही विमल से जेल के अन्य कैदी को सत्याग्रही नहीं है, उस स्वराज्य के बारे में पूछ कर अपनी शंका का निवारण करना चाहते है । एक कैदी पूछता है – आप गांधी बाबा के चेले हैं । हाँ ... अब स्वराज कब जायेंगे वह ? "तुम लोगों को क्या जल्दी है ?"

"जब गांधी बाबा का राज होगा तो सब जेलखाने से छोड़ दिये जायेंगे ।"

"चोरी और हत्या करने वाले तो स्वराज में भी जेल में रखे जायेंगे ।"

"यह क्यों ?"

तो क्या तुम लोग समझते हो कि स्वराज में चोरों और हत्यारों को दंड नहीं दिया जायेगा ? स्वराज्य में तो सबको यही शिक्षा दी जायेगी कि कोई अपराध न करो ।

परंतु हम समझते थे कि स्वराज्य में सबको खुला छोड़ दिया जायेगा, जिसकी जो इच्छा हो, सो करे ।"[३५०]

नौकरशाही के अत्याचारों से दुःखी देवीदीन अपनी शंका प्रकट करते हुए पूछता है – "तो सुराज मिलने पर दस–दस पाँच–पाँच हजार के अफसर नहीं

रहेंगे ? वकीलों की लूट नहीं रहेगी । पुलिस की लूट बंध हो जायेगी ।”[३५१] बापू भी सत्य और अहिंसा तथा न्याय के बल पर स्वराज्य चाहते थे । ‘मुख में राम बगल में छुरी’ रखने से स्वराज्य तो मात्र एक स्वप्न है । उसके लिए हृदय की पवित्रता आवश्यक है । प्रेमचंद समकालीन राजनीतिक नेताओं की द्वि–मुखी प्रवृत्ति पर धनिया के माध्यम से व्यंग्य करते हैं । धनिया का कथन है – “ये हमारे गांव के मुखिया हें, गरीबों का खून चूसने वाले । सूद–ब्याज डेढ़ी–सवाई, नजर–नजराना, घूस–घास जैसे भी हो, गरीबों को लूटो । उस पर सुराज चाहिए । जेल जाने से सुराज न मिलेगा । सुराज मिलेगा धरम से न्याय से ।”[३५२]

गरीब किसान बुधुआ को स्वराज्य की आवश्यकता सबसे अधिक है । इसीलिए वह महँगू से पूछता है – “सुराज क्या है रे ?” बुधुआ ने महुँगू से पछा ।

“किसानों का राज । गंभीर होकर महँगू ने कहा ।”[३५३]

बुधुआ के निराश मन में विद्यमान कोहरा हटाने लगता है । उसकी आँखो के सामने एक ओर कोड़ा थामे जमींदार का चित्र नाचने हटने लगता है तो दूसरी और ‘स्वराज’ से मिलने वाले मुक्ति की प्रसन्नता । क्योंकि “अबके उसके खेत की खरीफ डेढ़ हाथ से ज्यादा नहीं बढ़ी, वह भी जगह–जगह जली हुई । इसलिए उसे सुराज की सब से ज्यादा खोज है कि दो–चार रोज में मिल जाय तो जमींदार के कोड़ो से पीठ का निकट (का) संबंध जाता रहे ।”[३५४]

पंडित नहेरू ने एक कृषक–सभा में भाषण देते हुए कहा था कि “वास्तविक स्वराज्य पंचायती पद्धति में निहित है । पंचायती शासन के द्वारा ही उनकी समस्या का समाधान संभव है । नहेरू के उसी भाव का अंकन ‘राहुल’ ने किया है । ‘स्वराज्य का मतलब है, अपना राज, पंचायती राज । उसमें मेहनत करनेवालों को भूखा नहीं मरना पड़ेगा ।”[३५५]

हिन्दू–मुस्लिम समस्या के कारण आसन्न स्वाधीनता देश के द्वार पर से बार–बार लौट जाती थी । 'स्वराज्य' मिलने के चिन्ह घुमिल पड़ते जाते थे । गीता और भावरिया के वार्तालाप द्वारा यशपाल ने स्वराज्य के न मिलने के कारण पर प्रकाश डाला है । गीता कहती है – "तो फिर एकता कैसे होगी ? स्वराज्य कैसे मिलेगा ? एकता हो कैसे सकती है?" भावरिया ने आपति की "हिन्दू पूरब की ओर मुख कर भजन करता है, मुसलमान पश्चिम की और मूँह करके नमाज पढ़ता है । हिन्दू सीधे तवे पर रोटी सेकता है, मुसलमान उल्टे तवे पर ।

विशालसिंह के शब्दों में स्वराज्य का संबंध भौतिक जगत से न होकर आध्यात्मिक जगत से है । उनका कथन है – "स्वराज्य अपने में राज्य, अपने मन का आधिपत्य । इंद्रियाँ हमारी चपल है, किसी एक कर्म में उन्हें नियोजित कर देने से उन पर राज किया जा सकता है । यदि हम यह भीतरी स्वराज्य प्राप्त कर ले तो बाहरी स्वराज्य स्वयं हमारे पास आकर उपस्थित हो जायेगा ।"[३५६]

सत्याग्रहियों के विशाल जुलूस को देखकर रामनाथ स्वयं से पूछते हैं – "आखिर ये सब के सब चाहते क्या है ? स्वराज्य ? यह स्वराज्य है क्या चीज ? जनता के प्रतिनिधियों के द्वारा जनता का शासन और जनता ? यह अनपढ़, मूर्ख और कंगाल जनता ? किसी के भी वरगलाने में यह जनता आ सकती है ।"[३५७]

गाँव–गाँव में बड़ी चर्चा है कि "सुराज' काट कर मिल रहा है । अर्थात् देश का विभाजन कर स्वराज्य दिया जा रहा है । बावनदास स्वराज्य का अर्थ सबको समझौते हुए कहता है – "सुराज माने अपना राज, भारतवासी का राजा अब अंग्रेज लोग यहाँ राज नहीं कर सकते । ... ए अंग्रेजों । 'भारत छोड़ो' क्यों कहा था गांधीजी ने इसीलिए ।"[३५८]

(४) आजाद हिन्द फौज का चित्रण

भारतीय स्वातंत्र्य संघर्ष में आजाद हिन्दी सेना की भूमिका का ऐतिहासिक महत्त्व है । नेता जी सुभाषचंद्र ने भारत की स्वाधीनता के लिए ' तुम मुझे खुन दो, में तुम्हें स्वाधीनता दूँगा'' की ललकार से न केवल भारतीय जनमानस में नवीन चेतना का प्रसार किया अपितु ब्रिटिश साम्राज्यवाद के गढ़ो को ढाहते हुए प्रथम बार राष्ट्रीय तिरंगा भारत की भूमि पर लहरा भी दिया ।

नेताजी सुभाषचंद्र बोस का वैचारिक मतभेद कांग्रेस और गांधीजी से हो गया था ।'फरवर्ड ब्लाक' की स्थापना का कारण भारत को समाजवादी तरीकों से पराधीनता के पाश से मुक्त करना था उनकी लोकप्रियता से भयभीत होकर ब्रिटिश सरकार ने उन्हें नजरबंद कर दिया था । वह ब्रिटिश सरकार के गुप्तचरों की आँख में धूल झोंक्कर जेल से निक्ल भागे और रुस होते हुए जर्मनी पहुँच गये । इस इतिहास प्रसिद्ध रोमांचकारी घटना का विवरण 'बलिदान' में चित्रित हुआ है । नलिन और रागिनी बंगाल के दौरे पर गये हुए है । नलित ज्यों ही अखबार के पन्ने उलटता है, वह खुशी से उछल कर रागिनी से कहता है । ''रागिनी शेखर रूस में है । रागिनी दौड़ी हुई आई और जोर–जोर से अखबार की सुर्खी पढ़ने लगी । ''होनहार क्रांतिकारी शेखर रूस में । सुर्खी के नीचे शेखर की तस्वीर थी, जिसके नीचे लिखा था नेपाल जेल से गायब होकर शेखर रुस में प्रकट । फौजी दोस्तों से भारत को मुक्त कराने की तैयारी में ।''[३५६]

रघुवीरशरण मित्र ने 'शेखर' के में नेताजी सुभाषचंद्र की कल्पना की है । क्योंकि पूरा विवरण नेता जी के जीवन की घटना से साम्य रखता है । भारत का प्रत्येक व्यक्ति उसके जीवन की घटना से परिचित है स्वयं लेखक ने पात्र का परिचय नेता जी के रूप स्पष्ट भी कर दिया है । जब शेखर से पूछा जाता है आप कौन है ? तब शेखर कहता है – ''में हिन्दुस्तानी हूँ सरदार ! भारत राष्ट्र को स्वाधीन करानेके उद्देश्य से खाक छानता फिर रहा

हूँ... और यदि में पहिचान ने में गलती नहीं कर रहा हूँ तो आप नेताजी... ।''[३६०]

शेखर के सभी कार्यकलापों में नेता जी में 'नेताजी' के कार्यो की छाया स्पष्ट अंकित हुई है । उनका रूप में रहना, सहायता के लिए प्रयत्न करना आदि–आदि ।''[३६१] इम्काल पर पहुँचे हुए नेता जी को अंतराष्ट्रीय परिस्थितियों के कारण वापस होना पड़ा और नेता जी भूमिगत हो गये । अनेकानेक कहानियाँ उनके जीवित रहने, मरने या छिपे होने के बारे में चल पड़ी । उन्हीं का आधार लेकर 'बलिदान' के नेता जी रूपी शेखर का कथन है –

''सरकार, मेरी अन्तरात्मा मुझे प्रकट होने की स्वीकृति अभी नहीं होती । इन्काल के मोर्चे की असफलता से मेरा हृदय बहुत दुःखी हुआ है... लेकिन जब तक समय नहीं आता तब तक कुछ नहीं होता... इतने बलिदान हुए, पर गुलामी न जली । में उसी दिन प्रकट हो जाऊँगा जिस दिन गुलामी जलेगी ।''[३६२]

द्वितीय विश्वयुद्ध में जापान ने हथियार डाल दिए थे और आजाद हिन्द फौज के सैनिकों पर दिल्ली के लाल किले में मुकदमा चलाया गया था । उस मुकदमे का चित्रण अनेक उपनयासों में हुआ है । 'बलिदान' में चित्रित चित्र इस प्रकार है – लालकिले के दरवाजे पर भारी भीड़ को चीरता हुआ नलिन आगे निकल कर खड़ा हो गया । आज आजाद हिन्द फौज का मुकदमा है । बड़े–बड़े वकीलों और नेताओं की कारें शान से दुर्ग में जा रही हैं । कुमदमे की पैरवी करने के लिए नहेरू और भुलाभाई देसाई भी चोगा पहिन कर किले में घुसे । जयघोष से दुर्ग का दरवाजा गुंजने लगा । 'सेना नी सुभाष की जय', 'पंडित नहेरू की जय', 'आजाद हिन्दी फौज के वीरों की जय... मुकदमे की बहस खत्म हुई । भुलाभाई देसाई ने जबरदस्त दलील रखी कि हर गुलाम को स्वतंत्रता के लिए लड़ने का अधिकार हैं ।''[३६३]

उपर्युक्त चित्रण में कल्पना तथा यथार्थ का मिश्रण हुआ है, और कल्पना ने यथार्थ घटनाओं को उभार ने का पूर्ण अवसर प्रदान किया है । यशपाल ने भी लालकिले के मुकदमे का अंकन अपनी एक रचना में किया है – “दहेली में आजाद हिन्द सेना के नेताओं का मुकदमा चल रहा था । संपूर्ण देश और आजाद हिन्द सेना के कैदी उत्सुकता से मुकदमे के परिणाम की प्रतिक्षा कर रहे थे । जनता की प्रबल माँग के सामने अंग्रेज सरकार को झुकना पड़ा ।”[३६४]

अनंतः ब्रिटिश सरकार ने आजाद हिन्द सेना के सभी अभियुक्तों को छोड़ दिया था । धनसिंह (मनुष्य के रूप) आजाद हिन्द सेना में भर्ती हो जाता है । नेता जी ने बर्लिन रेडियों से जो भाषण भारतवासियों के नाम प्रसारित किया था उसका अंकन करना यशपाल नहीं भूले हैं यथा – “एक रात अर्जुन लाल और धनसिंह ने बहुत धीमे स्वर में बोलता आजाद हिन्द रेडियों सुना । रेडियो पर समाजवादी नेताओं को सलाह दी, जैसे भी हो अगस्त ४२ की क्रांति को जारी रखा जाये । जापान आ रहा है । वह अंग्रेजों के पाँव उखाड़ देगा ।”[३६५] यह सत्य है कि नेता जी ने आजाद हिन्द रेडियों जर्मनी से ३१ अगस्त १९४२ को देशवासियों के नाम संदेश प्रसारित किया था । यशपाल ने ‘ आजाद हिन्द’ फौज के वर्णन में इस बात को ध्यान में रखा है कि द्वितीय महासमर में भारतीय कम्युनिस्ट दल जापानी जर्मनी आदि का विरोध और ब्रिटिश सरकार का समर्थन कर रहा था । इस तथ्य के अनेक चित्रों की संगति भी उपन्यास में सहज खोजी जा सकती है ।”[३६६]

‘आजाद हिन्द सैनिक’ जब काक्सबाजार में पहुँचे उसका चित्रण भी फासीवाद के विरोध के रूप में ही उपन्यासकार ने किया है – पहाड़ी चटगाँव में चारों ओर सेना दिखाई दे रही है । फौजी सामने, फौजी कठोरता और दृश्यता या चंचलता । उस रम्य स्थान में मनुष्य निश्चित रहा होगा, किंतु वहाँ

एक सनसनी और विक्षोम है । एक ओर असम, दूसरी ओर काक्स बाजार और स्वयं चटगाँव एक भयद आशंका में आप्लुत थे ।"[३६७]

विसर्जन में 'आजाद हिन्द सेना' की अमरगाथा को उपन्यास के कथान के रूप में गृहण किया गया है । कमांडर के रूप में नेता जी सुभाष बोस की कल्पना का स्पष्ट आभास दिखाई देता है । जिस प्रकार नेताजी देश के सैनिकों में आजादी के लिए बलिदान होने की भावना भरते थे । उसी प्रकार 'विसर्जन' का कमांडर भी नेता जी का अनुसरण करता हुआ दिखाई देता है । वह सैनिकों का संबोधित करते हुए कहता है – "मेरे बहादुर जवानो तुम्हारी सेना का नाम है आजादी सेना । तुम को इस झंडे के नीचे एकत्रित करने वाला, तुम्हारा देशप्रेम है । तुमको जीवन उत्सर्ग करने की प्रेरणा देने वाला तुम्हारा कर्तव्य ज्ञान है... तुम इतिहास बनाने जा रहे हो ।"[३६८]

आजाद हिन्द सेना बर्मा, थाइलेन्ड, मलाया को जीतते हुए भारत की तरफ बढ़ रही थी । जहाँ–जहाँ नेता जी ने सैनिकों के सामने भाषण दिये उसका संकेत 'विर्सजन' में उपलब्ध है । नेता जी का नारा था 'दिल्ली चलो' । 'विसर्जन' का कमांडर अपने उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए पुनः कहता है – "तुम्हारा नारा है दिल्ली चलो और तुम्हारा ध्येय है भारत को आजाद करो ।"[३६९] सैनिक गगनभेदी नाद में एक स्वर से कहते हैं – "दिल्ली चलो भारत को आजाद करो ।"[३७०] अंदमान–निकोबार को 'आजाद हिन्द सेना' ने जीतकर अपने अधिकार में कर लिया था । उस इतिहास प्रसिद्ध घटना का अंकन भी प्रतापनारायण जी ने किया है । नेता जी के सहायकों में कैप्टन शाहनवाज, कैप्टन धिल्लन तथा रासबिहारी, कैप्टन मोहनसिंह, राघवन तथा मेनन आदि थे ।"[३७१] इन्हीं नेताओं के नेतृत्व में अंडमान पर चढ़ाई की गई थी । उसका चित्रण करते हुए उपन्यासकार कहता है – "चार घंटे तक बराबर युद्ध होता रहा । अंत में विजय जापानियों के हाथ रही । उनकी सेना ने अडंमान की शहीद भूमि पर अपने चरण रखे । सबसे पहले उतरने वालों में लेफिटनेन्ट

कर्नल यशवंतसिंह और उनके तीनों साथी मानसिंह और हरनामसिंह थे । उन्हें आशा न थी कि इतनी शीघ्रता से युद्ध समाप्त हो जायेगा । उन्होंने उतारते ही भारत माता की जय जयकार की, जिसको सभी सैनिकों ने दोहराया ।

कर्नल यशवंतसिंह, मानसिंह और हरनामसिंह की कल्पना में ऐसा लगता है नेता जी के सैनिक अफसरों श्रीयुत मेनन, दिल्लन, शाहनवाज, राघवन, मोहनसिंह आदि में से ही कोई न कोई व्यक्ति है ।

'आजाद हिन्द सेना' का अधिकांशत विवरणात्मक अंकन 'मशाल' में किया गया है – नेता जी ने खून मांगा और बदले में देश को आजादी दिलाने की प्रतिज्ञा की । फौजियों ने खून नहीं बल्कि उसके साथ शरीर, प्राण, आत्मा सब कुछ देश के लिए नेता जी के चरणों पर न्यौछावर करने की सोंगध खून की बूंदो से प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर करने की ।

भारत के वर्ग आजाद हिन्द फौज के सैनिकों की रिहाई को लेकर आंदोलन कर रहे थे । जनता में एक नवीन उत्साह था । कांग्रेस दल आजाद हिंद सैनिकों को छुड़वाने के लिए आंदोलन कर रहा था । सैनिको को छुड़ाने के लिए कांग्रेस ने पैरवी की तैयारी की । देश के नामी गरामी वकील, एडवोकेटों और बैरिस्टरों ने खुलकर सहयोग दिया । आजाद हिन्दी फौज के तीन प्रमुख अफसरों से मुकदमे का नाटक सरकार ने शुरु किया । ... इधर मुकदमा चल रहा था उधर जनता का आंदोलन चल रहा था ।... कभी जनता की आवाज... बच्चा बच्चा रहे पुकार, सहगल दिल्लन, शाहनवाज ।

(५) नाविक विद्रोह

'आजाद हिन्द सेना' के कार्यो से भारतीय जनता में उमंग की एक नई लहर छा गई थी । उस उमंग का प्रभाव भारतीय नौ सेना पर पड़ा । जिससे फलस्वरूप फोर्ट, बैरक, कैसलबैरक, अकबर, चीता के सभी नौ सैनिकों को लम्बा, महोल, मछलीमार तथा हमला नामक जहाज के सैनिकों ने हड़ताल कर

दी । भारतीय स्वाधीनता की प्राप्ति, में नाविक विद्रोह का योगदान विशेष महत्त्वपूर्ण रहा है ।

नाविक विद्रोह का समर्थन करने के लिए गीता देशवासियों से हड़ताल करने का आहवान करते हुए कहती है – "ये हिन्दुस्तानी जहाजी सिपाही आपके ही भाई और बेटे हैं । भूख और अपमान से ऊबकर उन्होंने न्याय की माँग की है । उसका अपमान देश का अपमान है । उसकी भूख देश की भूख है । आज ये गुलामी की जंजीरें तोड़कर आजादी की लड़ाई लड़ने के लिए आपकी ओर मिलाप और सहायता का हाथ बढ़ा रहे है ।"[३७२] जनता द्वारा नाविक विद्रोह का पूर्ण समर्थन, हड़ताल के अतिरिक्त जहाजी सिपाहियों के नीले कालर, सफेद वर्दियाँ, फौजी ढंग का मार्च, फौजी लारियों पर कांग्रेसी झंडे आदि के चित्र भी उपन्यास में अंकित है ।"[३७३]

नाविक विद्रोह का आंशिक विवरण 'झूठा सच' में भी किया गया है ।"[३७४]

(६) शुद्धि आंदोलन

अंग्रेजों की कूटनीति का प्रभाव भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम में सांप्रदायिकता के रूप में पल्लवित हुआ । सांप्रदायिकता के कारण ही अंग्रेजी शासन भारत की धरती में अंगद का पाँव बनने का प्रयत्न करता रहा । क्योंकि, हिन्दू–मुसलमान एक ही धरती के दो अंकुर होते हुए भी आपस में धर्म के नाम पर लड़ते रहे । चतुर अंग्रेज हमारी धार्मिकता का लाभ बंदर बाँट के रूप में बटोरता रहा ।

पं. मदनमोहन मालवीया ने 'अखिल भारतीय हिन्दू महासभा' का संगठन किया । "जिसका उद्देश्य गाय की रक्षा करना था ।"[३७५] परंतु धीरे–धीरे यह संगठन धार्मिकता के रग में रंग ने लगा । इतिहासकारों का मत है कि ' खिलाफत संगठन' के जन्म का कारण हिन्दू सभा का जन्म था । क्योंकि हिन्दू

महासभा कट्टरता की पोषक थी । 'शुद्धि आंदोलन' का चित्रण हिन्दी के कुछ उपन्यासों में मिलता है जिनमें 'भाई', 'भूले बिखरे चित्र', 'निशिकांत', 'कुल्लीभाट', 'बयालीश' आदि प्रमुख है ।

ऋषभचरण जैन ने शुद्धि आंदोलन का वर्णन पात्रों के वार्तालाप में चित्रित किया है, "बुंदू कहता है – "यहाँ भी आरिया समाज खुलने वाली है ?"

और मुसलमानों को हिन्दू बनवेंगे ?

बुंदू–अजी, देखें तो कौन माई का लाल आता है शहर से, और जारी करता है अड्डा मारे लाठियों के एक–एक का भेजा खोल दूँगा ।"[३७६]

"ओफफो ! बेचारे मुसलमानों पर ये हिन्दू लोग कैसा जुल्म करते है ?"

"अजी यही तक थोड़ा ही है । यह आरिया समाज है न... ?

"हाँ ।"

"इस आरिया समाज के मुर्गे गली–गली में घुमते हैं । जहाँ किसी मजलूम मुसलमान को देखा, फुसलाकर अपने साथ ले आए । नौकरी दिलाने का लालच दिया और हिन्दू बना दिया ।"[३७७]

जहाँ एक ओर मुसलमानों को शुद्ध किया जा रहा था उनकी देखा–देखी 'तबलीग' भी आरंभ हो गया ।

"इस्लाम का नाम निशान इस हिन्दू मुल्क में दाँतों के बीच जबान की तरह मौजूद है ।

"तो आप यहां क्या तब लीग का काम शुरू करना चाहते है ।"

हा ! इधर देहातों में तबलीन का काम खूब जोर के साथ शुरू होने की उम्मीद है । इस तरफ हजारों चमार और भंगी पाक इस्लाम के झंडे के नीचे आने को तैयार है ।"[३७८]

निशिकांत में शुद्धि आंदोलन का चित्रण किया गया । निशिकांत अपने पास बैठे व्यक्ति से पूछता है यह कौन है ? उसे उत्तर दिया जाता है कि "मुसलमान को आर्य बना रहे है ।"

कांत अचरज से मुस्काराया – "मुसलमान आर्य बन रहा है, उसने एक बार फिर उस युवक को देखा पंडित, जी को देखा, स्वामी दयानंद के चित्र को देखा, फिर सुना पंडित जी उस युवक से कह रहे तुम अब आर्य हो, नित्यप्रति गायत्री का जाप करो ... शुद्ध कार्य करो, अब तुम्हारा नाम धर्मपाल है ।"[३७९]

रांगेय राघव ने भी शुद्धि आंदोलन पर एक पात्र से कहलाया है – "हिन्दुओं ने इसके बदले में यहाँ आर्य समाज के अंतर्गत शुद्धि आंदोलन भी चलाया । में कहता हूं ठीक है । सब ठीक है । पर क्या उससे हिन्दुस्तान में कुछ फर्क आया ?"[३८०]

'भूले बिखरे चित्र' में शुद्धि आंदोलन पर चर्चा की गई है । यह पाजी यूरोपियन आपको अपने क्लब में किसी भी हालत में न घुसने देंगे, जोनाधन साहब अगर आप मेरी बात मानिएँ तो शुद्ध हो जाइए । हम लोगों ने पिटाई के डर से जो हिन्दू–मुसलमान बन गए थे और अकाल की वजह से जो हिन्दू किरिस्तन बन गए थे, उन सब लोगों को शुद्ध करने का बीड़ा उठा लिया है । तो डेविड साहेब, इस मौके से फायदा उठाइए ।"[३८१]

हिन्दू–मुस्लिम धर्म के इन्हीं झगडों ने देश का विभाजन कराया था । देश विभाजन की समस्या को लेकर भारत की सड़कों, गलियों पर जो रक्त बहाया गया उससे सभ्य मानव सिहरा उठा ।

संदर्भ सूची :

१	पुरुष और नारी	राजा राधिकारमण प्रसादसिंह	२०
२	शेखरः एक जीवनी	अज्ञेय	५६
३	नई इमारत	रामेश्वर शुक्ल अंचल	६५-६६
४	ग्राम स्वराज्य	महात्मा गांधी	५३
५	दो पहलू	यज्ञदत्त शर्मा	१४०-१४१
६	चढँती धूत	अंचल	३११
७	अनबुजी प्यास	दुर्गाशंकर महेता	२३८
८	ग्राम स्वराज्य	महात्मा गांधी	१४
९	स्वराज्य दान	गुरुदत्त	२२
१०	मुक्ति के बंधन	गोविंदवल्लभ पंत	२७३
११	अंचल मेरा कोई	वृंदावनलाल वर्मा	२२३
१२	टेढे मेढे रास्ते	भगवती चरण वर्मा	१४३
१३	सीधा सादा रास्ता	रांगेय राघव	७५
१४	भूले बिसरे चित्र	भगवती चरण वर्मा	५८५
१५	प्रेमचंद कलम का सिपाही	अमृतराय	२२२
१६	रंगभूमि	प्रेमचंद	३६४
१७	यथोपरि		५४३
१८	रंगभूमि	प्रेमचंद	५४६
१९	कायाकल्प	प्रेमचंद	१५५
२०	गबन	प्रेमचंद	३२०
२१	कर्मभूमि	प्रेमचंद	३४४
२२	भाई	ऋषभचरण जैन	१४१
२३	हारडाइनेस	ऋषभचरण जैन	१२७

२४	यथोपरि		१२७
२५	त्यागपात्र	जैनेन्द्रकुमार	७३
२६	मुक्ति के बंधन	गोविंदवल्लभ पंत	२५५
२७	यथोपरि		२५५
२८	कराची की काँग्रेस	जीतमल लूणियाँ	३८
२९	सत्याग्रह	ऋषभचरण जैन	५८
३०	पुरुषो और नारी	राजा राधाकामण प्रसादसिंह	६४
३१	यथोपरि		१६५
३२	बलिदान	रघुवीर शरण मिश्र	१३५
३३	यथोपरि		२६
३४	निशिकान्त	विष्णु प्रभाकर	२६०
३५	यथोपरि		४२
३६	ज्वालामुखी	अनंत गोपाल रोवडे	१२१
३७	यथोपरि		२६६
३८	संन्यासी	इलाचंद जोशी	१६०-१६१
३९	बलि का बकरा	मंमथनाथ गुप्त	३१-३२
४०	मुक्ति के बंधन	गोविंदवल्लभ पंत	६७
४१	बलचनमा	नागार्जुन	६६
४२	बाबा बटेसरनाथ	नागार्जुन	६३
४३	सीधा सादा रास्ता	रांगेय राघव	३६७
४४	बीज	अमृतराय	२६
४५	झूठा सच वतन और देश	यशपाल	८२
४६	प्रेमाश्रय	प्रेमचंद	८३
४७	प्रेमाश्रय	प्रेमचंद	२३८

४८	प्रेमाश्रय	प्रेमचंद	१६६
४६	मेरे स्वप्नो का भारत	महात्मा गांधी	८०
५०	कर्मभूमि	प्रेमचंद	२३०
५१	कर्मभूमि	प्रेमचंद	२३०
५२	यथोथरि		२३२
५३	सीधा सादा रास्ता	रांगेय राघव	२७६
५४	मनुष्यानंद	पांडेय बेचेन शर्मा 'उग्र'	१८६
५५	पुरुष और नारी	राजा राधिकारमणसिंह	६४-६५
५६	यथोपरि		१७०
५७	यथोपरि		७८
५८	मुक्ति के बंधन	गोविंद वल्लभ पंत	१२६
५६	सिंहावलोकन भाग–१	यशपाल	१३४
६०	प्रतिशोध	दुर्गाप्रसाद खत्री	५२
६१	यथोपरि		१४
६२	रक्तमंडल भाग–१	दुर्गाप्रसाद खी	४८
६३	यथोपरि		४८
६४	सिंहावलोकन भाग–२	यशपाल	१२१८
६५	रक्तमंडल भाग–१	दुर्गाप्रसाद खी	४८
६६	यथोपरि खंड–र, भाग–३		११
६७	यथोपरि खंड–र, भाग–३		१३४
६८	सुफेद शैतान खंड–१, भाग–२		५६-६०
६६	पूरब और पश्चिम	राजा राधिकारमण प्रसादसिंह	१०३
७०	आत्मदाह	आचार्य चतुरसेन	२७४
७१	बंदी जीवन	रविन्द्रनाथ सन्याल	३

७२	बलिदान	रघुवीर शरण मित्र	८
७३	ज्वालामुखी	अनंत गोपाल शेवडे	२४०
७४	शेखर: एक जीवनी दूसरा–भाग	अज्ञेय	५७
७५	चढ़ती धूप	अंचल	१२३
७६	यथोपरि		१२५
७७	दादा कामरेड	यशपाल	६०
७८	कल्याणी	जैनेन्द्र कुमार	६५
७६	रैन अँधेरी	ममन्ननाथ गुप्त	३२
८०	जिच	ममन्ननाथ गुप्त	८१
८१	बीज	अमृतराय	२४
८२	भारतीय नव जागरण का इतिहास	बाबूराव जोशी	११३
८३	शेष–अशेष	उदयशंकर भट्ट	३५६
८४	यथोपरि	डॉ. शेफाली	२१७
८५	बाबा बटेसरनाथ	नागार्जुन	८६
८६	प्रतिशोध	दुर्गाप्रसाद खत्री	१६
८७	जीने के लिए	राहुल सांकृत्यान	५२
८८	मुक्ति बे बंधान	गोविंदवल्लभ पंत	२६८
८६	सिंहावलोकन भाग–२	यशपाल	२२४
६०	कर्मभूमि	प्रेमचंद	२६६
६१	बलिदान	रघुवीर शरण मित्र	६८
६२	बलिदान	रघुवीर शरण मित्र	६६
६३	सिंहावलोकन भाग–२	यशपाल	७६-८२
६४	बलिदान	रघुवीर शरण मित्र	१६२

९५	शेष–अशेष	उदयशंकर भट्ट	१७३
९६	यथोपरि		१७३
९७	सिंहावलोकन भाग–१	यशपाल	८६
९८	शेष–अशेष	उदयशंकर भट्ट	१७७
९९	सिंहावलोकन भाग–१	यशपाल	८६
१००	रंगभूमि	प्रेमचंद	४३१
१०१	मुक्ति बे बंधान	गोविंदवल्लभ पंत	४६
१०२	राष्ट्रिय आंदोलन का इतिहास	मम्मनाथ गुप्त	२७१
१०३	भारत सन् ५७ के बाद	शंकरलाल तिवारी	१७२
१०४	कल्याणी	जैनेन्द्रकुमार	९८
१०५	बंदी जीवन	राचीन्द्रनाथ सान्याल	५७
१०६	रक्तमंडल, खंड–१, भाग–२	दुर्गाप्रसाद खत्री	८
१०७	यथोपरि		३४
१०८	यथोपरि खंड–१, भाग–१		११४
१०९	आत्मदाह	आचार्य चतुरसेन	२७५
११०	सिंहावलोकन भाग–१	यशपाल	१२८
१११	रंगभूमि	प्रेमचंद	२०२
११२	काकोरी के भेंट	पं. रामप्रसाद 'बिस्मिल'	२०
११३	रंगभूमि	प्रेमचंद	२०६
११४	काकोरी के भेंट	पं. रामप्रसाद 'बिस्मिल'	१४३
११५	दादा कामरेड	यशपाल	२१०
११६	रक्तमंडल, खंड–१, भाग–१	दुर्गाप्रसाद खत्री	१७८
११७	भारत जाग उठा	उमाशंकर	४३
११८	आत्मदाह	आचार्य चतुरसेन	२७५

११६	सिंहावलोकन भाग–२	यशपाल	२२२
१२०	बाबा बटेसरनाथ	नागार्जुन	१०३
१२१	सिंहावलोकन भाग–२	यशपाल	२२२
१२२	रक्तमंडल खंड–१, भाग–२	दुर्गाप्रसाद खत्री	५४
१२३	भूले बिखरे चित्र	भगवतीचरण वर्मा	७००
१२४	मुक्ति पथ	इलाचंद जोशी	२२
१२५	भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन का इतिहास	मन्मनाथ गुप्त	१६४
१२६	जिच	मन्मनाथ गुप्त	६३
१२७	सिंहावलोकन भाग–३	यशपाल	८२
१२८	भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन का इतिहास	मन्मनाथ गुप्त	२७१
१२९	शेवडे ज्वालामूखी	अनंत गोपाल	२९८
१३०	बीजख	अमृतराय	२२
१३१	काकोरी के भेंट	बिस्मिल	२०
१३२	सिंहावलोकन भाग–२	यशपाल	१८८
१३३	बुझते दीप	दयाशंकर मिश्र	१२६
१३४	जीने के लिए	राहुल सांकृत्यायन	५४
१३५	रक्त मंडल खंड–१, भाग–१	दुर्गाप्रसाद खत्री	११६
१३६	चढ़ती धूप	अंचल	१५१
१३७	यथोपरि		२४६
१३८	यथोपरि		२६५
१३९	यथोपरि		२८०
१४०	भागों नहीं बदलो	राहुल साकिर्ताएन	२९६

१४१	पैरोल पर	बज्रेन्द्रनाथ गौड	१४१
१४२	इन्सान	यज्ञदत्त शर्मा	१२२
१४३	दादा कामरेड	यशपाल	२१७
१४४	यथोपरि	यशपाल	१७६
१४५	बीज	अमृतराय	१०८
१४६	डॉ. शेफाली	उदयशकंर भट्ट	१८४
१४७	निमंत्रण	भगवती प्रसाद वाजपेयी	११४
१४८	बलिदान	रघुवीर शरण मित्र	२२
१४९	बलिदान	रघुवीर शरण मित्र	६९
१५०	बलिदान	रघुवीर शरण मित्र	६९
१५१	देशद्रोही	यशपाल	५६
१५२	गोदान	प्रेमचंद	५२
१५३	नई इमारत	अंचल	१४४
१५४	बलचनमा	नागार्जुन	१६३-६४
१५५	स्वतंत्र भारत	मिश्र द्वय	२०-२१
१५६	जीने के लिए	राहुल सांकृत्यायन	३०६
१५७	सीधा सादा रास्ता	रांगेय राघव	२८०
१५८	इन्दुमती	सेठ गोविंददास	३३६
१५९	सीधा सादा रास्ता	रांगेय राघव	२९०
१६०	यथोपरि		२९८-९९
१६१	मशाल	भैरव प्रसाद गुप्त	२०८
१६२	भागो नहीं बदलो	राहुल सांकृत्यायन	२०६
१६३	श्री पहाडी निर्देशक		२५३
१६४	सीधा सादा रास्ता	रांगेय राघव	१४३

१६५	अचल मेरा कोई	वृंदावनलाल वर्मा	२१४
१६६	भूले बिखरे चित्र	भगवतीचरण वर्मा	६७१
१६७	भूले बिखरे चित्र	भगवतीचरण वर्मा	६७३
१६८	मैला आँचल	फणीश्वरनाथ 'रेणु'	६५
१६९	पुरुष और नारी	राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह	४-५
१७०	पुरुष और नारी	राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह	२००
१७१	ज्वालामूखी	अनंत गोपाल शेवडे	३३
१७२	इन्दुमती	गोविंददास	१६
१७३	मुक्ति के बंधन	गोविंद वल्लभ पंत	७३
१७४	(क) भारत सरकार गृह विभाग, राजनीति पत्रावली संख्या (ख) १०६ आव जुलाई		१६२०
१७५	बलचनमा	नागार्जुन	१००
१७६	बलचनमा	नागार्जुन	१००
१७७	प्रत्यागत	वृंदावनलाल वर्मा	४३
१७८	बाबा बटेसरनाथ	नागार्जुन	६३
१७९	सन्यासी	इलाचंद जोशी	१७६
१८०	मेरा देश	धनीराम 'प्रेम'	३
१८१	डॉ. शेफाली	उदयशंकर भट्ट	३५
१८२	मंगलसूत्र एवं अन्य रचनाएँ	प्रेमचंद	३८०
१८३	कुल्लीभाट	निराला	८६
१८४	आत्मदाह	आचार्य चतुरसेन शास्त्री	१३३
१८५	भूले बिखरे चित्र	भगवती चरण वर्मा	४८४
१८६	जीने के लिए	राहुल सांकृत्यायन	२१६

१८७	अनुबुझी प्यास	दुर्ग शंकर महेता	८०
१८८	गिरती दीवारे	उपेन्द्रनाथ 'अश्क'	७४
१८९	रंगभूमि	'प्रेमचंद'	१७६
१९०	यथोपरि		१६३
१९१	बाबा बटेसरनाथ	नागार्जुन	६०
१९२	गोदान	प्रेमचंद	१३
१९३	शेखरः एक जीवनी, उत्थान	अज्ञेय	११५
१९४	रंगभूमि	'प्रेमचंद'	५१६
१९५	दि मार्डर्न रिव्यु खंड-३१	सं. रामानंद चटर्जी	१३१
१९६	रंगभूमि	'प्रेमचंद'	१२२
१९७	प्रत्यागत	वृंदावनलाल वर्मा	११
१९८	यथोपरि		१२
१९९	रंगभूमि	'प्रेमचंद'	१३८
२००	यथोपरि		५४३
२०१	रंगभूमि	'प्रेमचंद'	५३२
२०२	कायाकल्प	प्रेमचंद	११८
२०३	जीने के लिए	राहुल सांस्कृत्यायन	२४६
२०४	भूले बिखरे चित्र	भगवती चरण वर्मा	५५४
२०५	रंगभूमि	'प्रेमचंद'	२६०
२०६	यथोपरि		३४७
२०७	भाई	ऋषभरण जैन	६१
२०८	प्रत्यागत	वृंदावनलाल वर्मा	६७
२०९	यथोपरि		५५-५६
२१०	सीधा सादा रास्ता	रांगेय राघव	२३४

२११	बाबा बटेसरनाथ	नागार्जुन	६३
२१२	रंगभूमि	'प्रेमचंद'	५१२
२१३	दो पहलू	यज्ञदत्त शर्मा	१८
२१४	विषाद मठ	रांगेय राघव	१२
२१५	बयालीस	प्रतापनारायण श्रीवास्तव	३२२
२१६	ज्वालामूखी	अनंत गोपाल शेवडे	१६५
२१७	भूले बिखरे चित्र	भगवती चरण वर्मा	५४६
२१८	मैला आँचल	फणीश्वरनाथ 'रेणु'	३२
२१९	मेरा देश	धनीराम 'प्रेमह	७
२२०	प्रेमचंद, प्रेमाश्रम		४३
२२१	यथोपरि		६३
२२२	यथोपरि		११९
२२३	यथोपरि		१४९
२२४	प्रेमचंद, प्रेमाश्रम		२३०
२२५	प्रेमचंद, रंगभुमि		६८
२२६	सूर्यकांत, त्रिपाठी 'निराला' अलका		४७
२२७	यथोपरि		५६
२२८	सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' अलका		६५
२२९	सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, कुल्लीभाट		११७
२३०	राहुल सांकृत्यायन, भागों नहीं बदलों		३०२
२३१	अंचल, बढती धूप		४५

२३२	प्रतापनारायण श्रीवास्तव, बयालीश		४४
२३३	नागार्जुन, बलचनमा		१७८
२३४	नागार्जुन, बाबा बटेसरनाथ		८७
२३५	फणीश्वरनाथ 'रेणु' मेला आँचल		१२
२३६	यथोपरि		६
२३७	प्रेमचंद, सेवासदन		२३०
२३८	यथोपरि		४२
२३९	यथोपरि		४१
२४०	यथोपरि		२०
२४१	यथोपरि		३१
२४२	प्रेमचंद, रंगभूमि		१६३
२४३	यथोपरि		५८
२४४	यथोपरि		७६
२४५	यथोपरि		२१०
२४६	यथोपरि		२५६
२४७	यथोपरि		२६८
२४८	प्रेमचंद, गोदान		२५१
२४९	इलाचंद जोशी, लज्जा		६४
२५०	प्रतापनारायण श्रीवासतव, बिदा		१५०
२५१	यथोपरि		१०६
२५२	अँचल, चढती धूप		७६,७७
२५३	यथोपरि		७२

२५४	यथोपरि		१५७
२५५	वृंदावनलाल वर्मा, अंचल मेरा कोई		११५
२५६	यथोपरि		२१८
२५७	यज्ञदत शर्मा, दो पहलू		२३०
२५८	गोविंददास, इन्दुमति		२६१
२५९	विष्णु प्रभाकर, निशिकांन्त		१०६
२६०	भगवती चरण वर्मा, टेढे मेढे रासते		२२७
२६१	दुर्गाप्रसाद खत्री, प्रतिशोध		४
२६२	पाडये बेचेन शर्मा, 'उग्र' चंद हसीनों के खतूत		४६
२६३	प्रेमचंद, रंगभूमि		४०६
२६४	प्रेमचंद, कायाकल्प		३३६
२६५	यथोपरि		२०८
२६६	प्रेमचंद, कायाकल्प		३३
२६७	यथोपरि		३४
२६८	यथोपरि		३४३५
२६९	प्रेमचंद, गोदान		१६३
२७०	ऋषचरण जैन, भाई		६५
२७१	रघुवीर शरण मित्र, बलिदान		१४
२७२	राजा राधिकारमण प्रसाद, राम–रहिम		५०२
२७३	यथोपरि		६७६
२७४	यथोपरि		६७३

२७५	गुरुदत, पथिक		२५७
२७६	प्रतापनारायण श्री वास्तव, विसर्जन		८३
२७७	प्रतापनारायण श्री वास्तव, बयालीस		११३
२७८	यथोपरि		२१५
२७९	यथोपरि		२००
२८०	प्रतापनारायण श्री वास्तव, बयालीस		२४४
२८१	यशपाल, झूठा सच (वतन और देश)		१०१
२८२	फणीश्वरनाथ 'रेणु' मैला आंचल		२४७
२८३	जवाहरलाल नेहरू, मेरी कहानी		१२१
२८४	भगवतीचरण वर्मा, भूले बिखरे चित्र		५२१२२
२८५	लज्जाराम शर्मा महेता, हिन्दू गृहस्थ		६८
२८६	प्रेमचंद, वरदान		७
२८७	दुर्गाप्रसाद खत्री, रक्त मंडल, खंड दो, भाग तीन		१०
२८८	धनीराम 'प्रेम' मेरा देश		५८
२८९	यथोपरि		६०
२९०	राजा राधिकारमण, प्रसाद सिंह, पुरुष और नारी		३

२९१	आचार्य चतुरसेन, धर्मयुग		६६
२९२	प्रेमचंद, सेवा सदन		१७७
२९३	प्रेमचंद, विविध प्रसंग, संकलन : अमृतराय भाग–३		१६४
२९४	प्रेमचंद, सेवा सदन		१८०
२९५	अज्ञेय, शेखर एक जीवनी		११६
२९६	राहुल सांकृत्यायन, भागो नहीं बदलो		६६
२९७	यशपाल, पार्टी कामरेट		२२
२९८	उदयशंकर भट्ट, डॉ. शेफाली		२०४
२९९	प्रेमचंद, गबन		१७०
३००	यथोपरि		१७१
३०१	अज्ञेय, शेखर एक जीवनी (उत्थान)		११५
३०२	यथोपरि		११६
३०३	राहुल साकृत्यांयन, भागो नहीं बदलो		२०६,१०
३०४	भगवतीचरण वर्मा, भूले बिखरे चित्र		५१३,१४
३०५	यथोपरि		५१३
३०६	प्रेमचंद, कर्मभूमि		१४
३०७	उषादेवी मित्रा, वचन का मोल		५७
३०८	यथोपरि		५७
३०९	यथोपरि		६०
३१०	राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह,		१२

	गांधी टोपी		
३११	यज्ञदत शर्मा, दो पहलू		२६६
३१२	गोविंद वल्लभ पंत, मुक्ति के बंधन		१००
३१३	प्रताप नारायण श्री वासतव, बयालीस		२५३
१३४	नागार्जुन, बलचनमा		११८
३१५	फणीश्वरनाथ 'रेणु' मैला आंचल		१२५
३१६	दो पहलू	यज्ञदत्त शर्मा	२२
३१७	स्वाधीनता के पथ पर	गुरुदत्त	३१६-२०
३१८	यथोपरि		३२०
३१६	बाबा बटेसरनाथ	नागार्जुन	६३
३२०	यथोपरि		६७
३२१	बलि का बकरा	मन्मथनाथ गुप्त	४२
३२२	बलि का बकरा	मन्मथनाथ गुप्त	४४-४५
३२३	भूले बिखरे चित्र	भगवतीचरण वर्मा	७३६
३२४	मैला आँचल	फणीश्वणनाथ 'रेणु'	४०
३२५	कर्मभूमि	प्रेमचंद	२८७
३२६	कर्मभूमि	प्रेमचंद	२६०
३२७	यथोपरि		३०२
३२८	अलका	सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'	५०
३२६	यथोपरि		५६
३३०	सीधा सादा रास्ता	रांगेय राघव	३५६
३३१	स्वाधीनता के पथ पर	गुरुदत्त	३८१

३३२	सीधा सादा रास्ता	रांगेय राघव	८२
३३३	बाबा बटेसरनाथ	नागार्जुन	१०४
३३४	कर्मभूमि	प्रेमचंद	४००
३३५	यथोपरि		४०१
३३६	अपराजित	मन्नथनाथ गुप्त	२२
३३७	भागो नहीं बदलो	राहुल सांस्कृत्यायन	२०६
३३८	मुक्ति के बंधन	गोविंद वल्लभ पंत	७२
३३९	प्रेमाश्रम	प्रेमचंद	१६२
३४०	भूले बिखरे चित्र	भगवती चरण वर्मा	४३९-४०
३४१	गिरती दिवार	उपेन्द्रनाथ अश्क	७४
३४२	यथोपरि		४९८
३४३	भूले बिखरे चित्र	भगवती चरण वर्मा	४२५
३४४	यथोपरि		४२१
३४५	ज्वालामुखी	अनंतगोपाल शेवड़े	३७
३४६	ज्वालामुखी	अनंतगोपाल शेवड़े	२४३
३४७	आत्मकथा	डॉ. राजेन्द्र प्रसाद	४१०
३४८	भूले बिखरे चित्र	भगवती चरण वर्मा	२०९
३४९	स्वाधीनता के पथपर	गुरुदत्त	६५४
३५०	मेरा देश	धनीराम 'प्रेम'	३९
३५१	गबन	प्रेमचंद	१७२
३५२	गोदान	प्रेमचंद	११०
३५३	अलका	सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'	५८
३५४	यथोपरि		६१-६२
३५५	जीने के लिए	राहुल सांस्कृत्यायन	२३०-३१

३५६	मुक्ति के बंधन	गोविंद वल्लभ पंत	१००
३५७	टेढे मेडे रास्ते	भगवती चरण वर्मा	५०
३५८	मेला आँचल	फणिश्वरनाथ 'रेणु'	२३२
३५९	बलिदान	रघुवीर शरण 'मित्र'	२२
३६०	यथोपरि		४४
३६१	यथोपरि		३९
३६२	यथोपरि		२०२
३६३	यथोपरि		२४-२५
३६४	मनुष्य के रूप	यशपाल	२९२
३६५	यथोपरि		१२९
३६६	मनुष्य के रूप	यशपाल	२८७
३६७	विषादमठ	रांगेय राघव	१७
३६८	विसर्जन	प्रतापनारायण श्रीवास्तव	२७९
३६९	विसर्जन	प्रतापनारायण श्रीवास्तव	२८१
३७०	यथोपरि		२८१
३७१	भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन का इतिहास	मन्मथनाथ गुप्त	५१३
३७२	पार्टिकामरेड	यशपाल	८१-८२
३७३	यथोपरि		७९
३७४	झूठा सच	यशपाल	४९
३७५	यथोपरि		१३४-३५
३७६	भाई	ऋृषभचरण जैन	६४
३७७	यथोपरि		६२
३७८	यथोपरि		७८

३७९	निशिकांत	विष्णु प्रभाकर	६०
३८०	सीधासादा रास्ता	रांगेय राघव	२२६
३८१	भूले बिखरे चित्र	भगवती चरण वर्मा	२००

अध्याय–५

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के परिप्रेक्ष्य में आधुनिक हिन्दी उपन्यासों का मूल्यांकन

◆ विषय प्रवेश

(अ) स्वातंत्र्य की प्रमुख घटनाओं का चित्रांकन

◆ कोंग्रेस के विभिन्न अधिवेशन

◆ नरमदलीय भावाभिव्यक्ति

◆ रोलेट एक्ट एवं जलियावाला बाग

◆ स्वराज्य पार्टी

◆ क्रिप्स आगमन

◆ अगस्त आंदोलन

◆ बंगाल का अकाल

◆ भारत का विभाजन एवं साम्प्रदायिकता

◆ गांधी हत्या

◆ स्वाधीनता का आलोक

(ब) भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम के प्रमुख चरित्रों के चित्रण की समीक्षा

◆ उपसंहार

अध्याय–५
भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के परिप्रेक्ष्य में आधुनिक हिन्दी उपन्यासों का मूल्यांकन

◆ विषय प्रवेश :

मानव की सबसे प्रबल प्रवृत्ति है – आनंद की खोज । इस प्रवृत्ति की तृप्ति के लिए उसने आदिकाल से अब तक अनेक साधन अपनाये हैं । जिनमें साहित्य अथवा काव्य सबसे श्रेष्ठ है । अतः साहित्य या काव्य मानव की आनंदमयी चेतना का ही प्रतिरूप है । जो विविध आवरणों में साकार होता है और उनमें से एक उपन्यास भी है ।

उपन्यास मानव के मनोरंजन का प्रबलतम साधन है । किन्तु मनोरंजन के साथ–साथ जनरंजन की भी उसमें अपूर्व क्षमता है । अर्थात् सर्वसाधारण में लोकप्रियता की दृष्टि से भी उपन्यास का स्थान बहुत ऊँचा है । कारण स्पष्ट है कि सामान्य जन शुष्क सैद्धांतिक विचारात्मक अथवा गूढ़ रहस्यात्मक रचनाओं की अपेक्षा उन रचनाओं में अधिक रुचि लेते है जो उनकी रागात्मक चेतना को उद्वेलित कर सके । रागात्मक चेतना को उद्वेलित करने की सबसे अधिक शक्ति कथा–साहित्य में है । और कथा–साहित्य में उपन्यास सर्वोपरि है । इस में चरित्रों के माध्यम से बुना जाता है वे मानव–जीवन के ही एक अनिवार्य अंग होते है । इस तरह उपन्यास जीवन को उसकी पूरी गतिशीलता के साथ प्रतिबिंबित करता है, किन्तु उसमें जीवन का जो चित्र होता है वह कैमेरे से लिए गये फोटों भी भाँति यथावत नहीं होता । अपितु उसमें कल्पना के अनेक रंगों का ही मिश्रण रहता है । जिससे जीवन का वह चित्र वास्तविक होने के साथ साथ संवेदनात्मक और आकर्षक भी बन जाता है । इस प्रकार उपन्यास वस्तुतः वास्तविकता, भावात्मकता और रोचकता की एक समन्वित त्रिमूर्ति है ।

जिसके प्रति भिन्न भिन्न रुचि के व्यक्तिओं के मनमें भी अनुराग और आकर्षण होना सहज संभव है ।

भारतवर्ष ऋषिमुनियों का देश है । ऋषि–मुनियों ने अनेक वर्षों तक तप करके भारतीय जनता का कल्याण करना चाहा था । साथ ही साथ देशवासियों को त्याग, तप, उदारता, सहिष्णुता, प्रेम का अमर संदेश दिया था । भारतवर्ष के तत्कालीन समय के प्रशासकों ने अपने ऋषिमुनियों से पायी उदारता के कारण ही विदेश की जनता को व्यापार करने हेतु भारत में प्रवेश करने की अनुमति दी थी । सभी विदेशी जातियों में अंग्रेज भी 'इष्ट इन्डिया कंपनी' की स्थापना के माध्यम से व्यापार करने लगे । तर्कबुद्धिशील अंग्रेज प्रजाति ने तत्कालीन समय के मुगल शासकों को सुरा और सुंदरी में व्यस्त देख कर राष्ट्र की शासन घूरा अपने हाथ में लेनी चाही । मुगल शासक भी वर्षों के लगातार युद्ध के कारण आर्थिक दृष्टि से विपनन हो गए । मुगलों की इस विपन्नता को देखकर अंग्रेजों ने भारत की शासन व्यवस्था अपने हाथ में ले ली थी । और विभिन्न अंग्रेज गवर्नरों के माध्यम से शासन होने लगा । अंग्रेजों की शोषणनीति के कारण भारतीय जनता त्रस्त हो चुकी थी । देश के उन्नायकों ने इ. सन् १८८५ में 'नेशनल कोंग्रेस' की स्थापना की । इस राष्ट्रीय संस्था की स्थापना का उद्देश्य भारतीय जनता में जागृति लाना और संगठित करना था । देश की पराधीनता को दूर करने के लिए देश के उन्नायकों एवं जनता की ओर से विभिन्न असहयोग आंदोलन, बारडोली सत्याग्रह, धरासण सत्याग्रह, नमक सत्याग्रह, १८५७ विप्पलव आदि विभिन्न आंदोलनात्मक कार्यक्रम किये गए । ई. सन् १९४२ का 'भारत छोड़ो' आंदोलन पूरे देश में व्याप्त था । इस प्रकार अंग्रेजशासन कालीन भारत अनेक आंदोलनात्मक कार्यक्रमों से परिपूर्ण था ।

साहित्य और समाज एक–दूसरे के अन्योन्याश्रित है । साहित्यकार समाज में जन्म लेता है । समाज में ही पनपता है । अतः समाज में जो कुछ भी घटित होता है उनसे सबसे पहले साहित्यकार अनुप्राणित होता है । परतंत्रता

कालीन भारतवर्ष को स्वतंत्र बनाने के लिए जो आंदोलनात्मक कार्यक्रम किये गये थे एवं अंग्रेजों के शोषण का भारतीय जनता भोग बन चुकी थी । उनका सबसे अधिक प्रभाव साहित्य पर पड़ा है । आधुनिक हिन्दी साहित्य के उपन्यासों में उपन्यासकारों ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की घटनाओं का चित्रण किया है । वे निम्नलिखित रूप में हैं –

(अ) स्वातंत्र्य संग्राम की प्रमुख घटनाओं का चित्रांकन :

हिन्दी–उपन्यासों में भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम का चित्रण उस रत्नमय सागर के समान है जिसमें जहाँ चाहे डूबकी लगाइए कोई न कोई घटनात्मक रत्न हाथ अवश्य लगेगा । संभव है कुछ रत्नों पर धूल लिपटी हो या कुछ दबे पड़े हों । परन्तु राजनीतिक संदर्भ प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में चाहे या अनचाहे उपन्यासों में बहुधा देखने को मिलते है । इन सभी पहलुओं को एक दायरे में रखना असंभव है । इसी लिए हमने यहाँ कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाओं का विश्लेषण इस प्रकार किया है –

◆ 'काँग्रेस' के विभिन्न अधिवेशन :

'काँग्रेस' की स्थापना का श्रेय भी लार्ड ह्यूम को ही जाता है । दुःख राम के शंका प्रकट करने पर कि क्या ''विलायती जोंकों ने काँग्रेस को स्थापित किया ?' भैया कहता है ''हाँ, गोरे साहबों ने काले साहबों को बढ़ावा दिया पच्चीस साल तक तो काँग्रेस में इन्हीं काले साहबों का जोर रहा । इनका काम था साल में एक बार किसी बड़े शहर में इकट्ठा होना और हाथ जोड़कर अंग्रेजी सरकार से प्रार्थना करना ।''[१]

'सूरत काँग्रेस' का अपना एक इतिहास है । जिसने स्वातंत्र्य संग्राम को एक नई चेतना प्रदान की थी । लोकमान्य तिलक की राजनीति उस अधिवेशन पर छा गई थी ।[२] गरम और नरम दल का प्रारम्भ यहीं हुआ था

उपन्यासकार उस घटना का वर्णन करते हुए कहता है – "१९०७ में सूरत में जो कॉंग्रेस हुई, उसमें गरमदल के केवल ३०० सज्जन थे तथा नरम दल के १००० । फिर भी लोकमान्य तिलक महोदयने नरम दल की खुशामदी नीति का घोर प्रतिवाद किया । नरमदल जवालों की कुछ थोड़ी सी मारपीट भी हुई और सभा भंग हो गई । .. गरम दल का प्रभाव दिनोंदिन बढ़ता गया ।"[३] 'मुक्ति के बंधन' का रचनाकार कहता है – 'सम्राट के जयघोष पर अब तक कॉंग्रेस का अधिवेशन समाप्त होता था । इस बार वह जयघोष वंदे मातरम के सूत्रधार मन्त्र में बदल गया ।"[४]

कॉंग्रेस अधिवेशन में मनोनीत सभापति की खूब सजधज के साथ सवारी तथा जुलूस निकाला जाता है । वह परम्परा आज भी चली आ रही है । पंडित जवाहरलाल नेहरू का जो भव्य जुलूस निकाला गया था उसे देखने के लिए चेतना की विकरालता और उत्सुकता का एक चित्रण द्रष्टव्य है –

"दिसम्बर का महीना था । कड़ा जाड़ा पड़ रहा था । प्रधान के जुलूस से तीन–चार दिन पहले वे वहाँ पहुँचे । .. चेतन को पहली रात सर्दी लगती रही लेकिन कोंग्रेस नगर पहुँचकर महज खुशी से ही वे पहली रात न सोए थे.. प्रधान के जलूस में वे दोनों शामिल हुए । जलूस कॉंग्रेस नगर अथवा (लाजपतराय नगर) से जो रावी के तट पर बनाया गया था । पैदल स्टेशन तक गया और पंडित जवाहरलाल नेहरू के आगे पर फिर बाजारों में से होता हुआ चला ।"[५]

इसके अतिरिक्त अन्य अखिल भारतीय कॉंग्रेस अधिवेशनों का चित्रण भी आंशिक रूप से अन्य उपन्यासों में किया गया है यथा 'अहमदाबाद – कॉंग्रेस', 'नागपुर – कॉंग्रेस', 'गया – कॉंग्रेस', 'मद्रास – कॉंग्रेस' 'कानपुर – कॉंग्रेस', 'कलकत्ता – कॉंग्रेस' और 'हरिपुरा – कॉंग्रेस' आदि–आदि ।

◆ नरमदलीय भावाभिव्यक्ति :

'भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस' की स्थापना से लेकर लगभग सन् १६०५ ई. तक काँग्रेस का विश्वास पूर्णतः ब्रिटिश राज की राजभक्ति में था । उसकी न्यायप्रियता उदारता पर नरमपंथियों को पूर्ण आस्था थी । वह ब्रिटिश सरकार की शक्ति में वृद्धि की कामना किया करती थी, उसे फूलना और फलना देखना चाहती थी । वैधानिक आन्दोलन द्वारा अंग्रेजों की कृपा से स्वराज्य को प्राप्त कर लेना ही उसका एकमात्र उद्देश्य था । सन् १८६३ ई. में सरदार दयालसिंह मजीठिया ने कोंग्रेस अधिवेशन के स्वागत भाषण में कहा था – "भारत में ब्रिटिश शासन कीर्ति का कलश, हम उस विधान के मातहत सुख से रहे हैं जिसका विरुद है आजादी और जिसका दावा है सहिष्णुता ।"[६]

मेहता लज्जाराम शर्मा द्वारा रचित 'आदर्श हिन्दू' में राजभक्ति का चित्रण उपलब्ध होता है उसका कारण युगीन प्रभाव है । अपनी राजभक्तिपरक भावना को अभिव्यक्त करते हुए उपन्यासकार ने कहा है "परमेश्वर का लाख धन्यवाद है कि उसकी अपार दया से हम भारतवासियों को ब्रिटिश गवर्नमेन्ट की उदार छाया में निवास करके हजारों वर्षों के अनन्तर सच्चे शान्ति सुख को अनुभव करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है ।[७]

भारत का मध्यम–धनी वर्ग विशेष कर उच्चवर्ग के लोग जिनका स्वार्थ ब्रिटिश सरकार से जुड़ा हुआ था, ऐसे परिवर्तन कभी नहीं चाहते थे जिनसे उनके स्वार्थों को चोट लगे । जनसेवक, राजा महेन्द्रकुमार आदि उसी वर्ग का प्रतिनिधित्व 'रंगभूमि' में करते हैं । जो ब्रिटिश सरकार से अपने स्वार्थ के कारण नरमदलवालों की तरह जुड़े हुए हैं ।

पंडित जवाहरलाल नेहरू का यह कथन कि "राजभक्तों को नरम बनते बनते इतना पीछे को हटना पड़ा कि ब्रिटिश सरकार ओर उनकी विचारधारा में अन्तर ढूँढना कठिन हो गया ।"[८] 'अमृत बाजार पत्रिका' ने 'नरम–पंथी' उसी राजनीति पर टीका टिप्पणी करते हुए लिखा था कि "काँग्रेस क्या है ?

यह भिखारियों की एक जमात है । प्रत्येक वर्ष भारतीय एक स्थान पर भिक्षा के लिए एकत्र होते हैं और फिर किसी उद्देश्य की प्राप्ति के बिना बिखर जाते हैं ।"[६]

प्रसंगवशता अन्य रचनाओं में भी नरमदल तथा राजभक्ति का चित्रण मिलता है । यथा – 'स्वतंत्र भारत', 'इन्दुमती', 'जीने के लिए', 'बलि का बकरा', 'सीधा सादा रास्ता', 'रूपा–जीवा', पार्टी कामरेड', 'निशिकान्त', 'शेष–अशेष' आदि आदि ।

◆ रोलेट–एक्ट एवं जलियावाला बाग :

पश्चिमी भारत की विप्लववादी राजनीतिक गतिविधियों से ब्रिटिश शासन–तंत्र परेशान हो उठा था । "क्रातिकारी आन्दोलन, विशेषकर 'गदर' की पुनरावृत्ति की नियुक्त की गई थी ।"[१०] उस कमेटी के सुझावों के अनुसार भारतीयों से वे नाम मात्र के अधिकार भी छीन लिए गये थे जो उन्हें प्राप्त थे ।[११] भारत सरकारने राष्ट्रीय संग्राम के दमन हेतु विशेष कानूनों द्वारा अधिकार पाने के लिए 'धारासभा' में दो बिल पेश किए ।" गांधीजी के नेतृत्व में सारे भारतने उन बिलों का जोरदार विरोध किया ।"[१२] पंजाब में भी जलियांवाला बाग में विरोध दिन मनाया गया किन्तु विशाल शान्त जनमानस पर गोलियों की बौछार करके ब्रिटिश सरकारने अपनी अमानुषिकता का परिचय दिया ।

रोलेट–कानून का विरोध करने के लिए अप्रैल में तिथि निश्चित की गई थी । उनका वर्णन करते हुए 'आत्मदाह' में लिखा हैं – 'चैत के दिन थे, अमृतसर में वैशाखी का मेला था' के द्वारा विरोध दिवस समय की ओर संकेत किया गया है ।"[१३] सभा होने की सूचना का भी अंकन उपन्यासकारने किया है । "दोपहर ढलने लगा था... एक लड़का कस्तर पीट–पीट कर जलियांवाला

बाग में सभा होने की घोषणा कर रहा है । इससे कुछ पूर्व ही सैनिक अफसर सभा बंदी घोषणा कर गये थे ।[१४]

'स्वराज्यदान' में वर्णित सन, माह, व्यक्ति तथा स्थान भी 'जलियांवाला बाग' के संदर्भ में ऐतिहासिक हैं । जलियावाला बाग में निहत्थे लोगों की गोलियों से भूनकर जो ढेर लगा दिया था उनका चित्रांकन गुरुदत ने भी किया है – ''अहाते के एक ओर एक दीवार थी और सबसे अधिक लाशें उसी दीवार के समीप थी । एक सथान पर लाशों का ढेर लगा था । एक कितना भयंकर दृश्य था ।[१५] लाशों के यह ढेर का दृश्य कल्पनात्मक नहीं है अपितु यथार्थतापुर्ण है । क्योंकि ''ब्रिटिश सैनिकों की एक टुकड़ी ने निहत्थे लोगों के जन–समूह पर बिना पूर्व सूचना के लगातार तब तक गोलीबारी की जबतक सभी गोलियाँ समाप्त नहीं हो गई ।

◆ स्वराज्य पार्टी :

'भारतीय राष्ट्रीय कॅाँग्रेस' के इतिहास में 'सूरत कॅाँग्रेस' (१९०७) के बाद पुनः कॅाँग्रेस का विभाजन थोड़े समय के लिए 'परिवर्तनवादी' और 'अपरिवर्तनवादी' वर्गों में हो गया । 'कौसिल–प्रवेश' के प्रश्न पर कॅाँग्रेस में खींचतान आरंभ हुई थी । चितरंजन दास, मोतीलाल नहेरू और हकीम अजमलखां ने स्वराज्य दल का निर्माण किया था जो कोंसिल में जाकर ब्रिटिश सरकार से असहयोग करना चाहते थे ।[१६] 'स्वतन्त्र भारत' में स्वराज्य दल के निर्माण पर प्रकाश डाला गया है – ''इधर महात्मा की सम्मति के प्रतिकूल पंडित मोतीराम नहेरू तथा देशबन्धु दास के नेतृत्व में स्वराज्य पार्टी स्थापित हो गई थी ।[१७]

'रैनअंधेरी' के रचनाकार गुप्तजी ने 'स्वराज्य दल' के निर्माण, उसके नेताओं की गतिविधि के बारे में उपन्यास के पात्रों द्वारा प्रकाश डाला है – ''रमादेवी राजेन्द्र से पूछती है कि' तुमने राजनीति छोड़ दी ?'

'नहीं मैं सी.आर.दास की पार्टी में हो गया हूँ ।'

'ओह यानी अब तुम कौंसिल के मेम्बर बनोगे ?'

वह बोला– 'माँ जी ! आज यहाँ पं. मोतीलाल नहेरू और सी.आर.दास पधारने वाले हैं ।[१८]

गांधीजी तथा उनके अनुयायियों तथा 'स्वराज्य दल' में जो मतभेद चर्खा तथा कौंसिलों को लेकर उत्पन्न हो गया था ।[१९] उनका वर्णन श्यामा के शब्दों में इस प्रकार है – 'इस समय कॉंग्रेस में दो धाराएं चल रही हैं – एक कह रही है कि कौंसिल प्रवेश करो और उन्हें सुधारों या खत्म करो, दूसरी कह रही है कि चर्खा–करधा आदि का रचात्मक कार्य करो ।"[२०]

'देशबन्धु' स्वराज्य दल' के जन्मदाता थे । देश की राजनीति में उनका सक्रिय सहयोग था । 'रंगभूमि' के डाक्टर गांगुली में देशबन्धु चितरंजन दास की आत्मा हो सकती है ऐसा विचार अमृतराय ने व्यक्त किया है ।"[२१]

◆ क्रिप्स–आगमन :

द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण ब्रिटिश साम्राज्य लड़खड़ाने लगा था । जर्मनी–जापान का प्रतिरोध बढ़ता ही जा रहा था । भारत में व्यक्तिगत सत्याग्रह चल रहा था । युद्ध में भारत की सभी राजनीतिक पार्टियाँ केवल साम्यवादी दल को छोड़कर ब्रिटिश सरकार का कड़ा विरोध कर रही थीं, चर्चिल और अमेरी बड़े परेशान थे । क्योंकि आगामी महीनों में जो कुछ विस्फोट होने जा रहा था उसकी गुप्त रिपोर्ट उन्हें मिल चुकी थी । फलतः अमेरी ने भारतीयों का सहयोग पाने की इच्छा से क्रिप्स महोदय को कुछ प्रस्तावों के साथ भारत भेजा । परन्तु क्रिप्स के झोल में 'फूट डालो और राज्य करो' के अतिरिक्त कुछ न था । जो योजना लेकर वह भारत आये थे उसका पूर्ण रूप से विरोध हुआ, क्योंकि 'क्रिप्स प्रस्ताव के अनुसार किसी भी

प्रान्त को भारतीय संघ से अलग होने का पूरा अधिकार दे दिया गया था। प्रकारान्त से जो मुस्लिम लीग की माँग का ही समर्थन था।"[२२]

'क्रिप्स आगमन' की घटना का उल्लेख हिन्दी उपन्यासों में अंशतः ही मिलता है जो वर्णनात्मक रूप में है। इतिहासकार और उपन्यासकार के कथन में भेद निकलना कहीं कहीं तो बड़ा ही कठिन का लगता है। दोनों में समानता है। परन्तु कुछ ही ऐसे उपन्यास हैं जिनमें पात्रों के द्वारा उक्त घटना का अंकन किया गया है। गोविन्ददास लिखते है – "मार्च सन् ४२ में सर स्टैफड क्रिप्स को भारतीय राजनीतिक गुत्थी सुलझाने के लिए भारत भेजा।... क्रिप्स ने आते ही बड़े बड़े आशावादी वक्तव्य दिए.. क्रिप्स मिशन असफल हुआ।"[२३]

महात्मा गांधी पर क्रिप्स की चालबाजी का बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा। वे क्रिप्स से मिल तो सही पर उनके दिल को बड़ा धक्का लगा। कुछ सार उन प्रस्तावों में न देखकर कॉंग्रेस ने उन्हें अस्वीकृत कर दिया था।[२४] क्रिप्स की असफलता से भारत में रोष व्याप्त हो गया उसके आगामी परिणामों का संकेत करते हुए यशपाल कहते हैं – "कॉंग्रेस के नेताओं और ब्रिटिश पार्लियामेन्ट के प्रतिनिधि सर क्रिप्स में कोई समझौता न हो सका। कॉंग्रेस के क्षेत्र में फिर से आन्दोलन आरंभ होने की सनसनी फैलने लगी। वर्धा में कॉंग्रेस की केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति नये आन्दोलन के कार्यक्रम पर विचार कर रही थी।"[२५]

◆ अगस्त–आन्दोलन :

क्रिप्स मिशन के असफल होने के बाद आगे चलकर महात्मा गांधीजीने 'करो या मरो' तथा 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' के नारे लगाने की तैयारी आरम्भ कर दी। अगस्त १९४२ ई. में बापू ने अंग्रेजों के नाम एक अपील जारी की थी जिसमें उन्होंने भारतीय जनता से कहा था – "वह उन खतरों एवं

मुसीबतों का साहस और सहिष्णुता के साथ सामना करे जो कि उनको उठानी पड़ेगी.. इस आन्दोलन (भारत छोड़ो) का आधार अहिंसा है । एक ऐसा भी समय आ सकता है जबकि हिदायतों का जारी करना .. संभव न हो ।.. प्रत्येक भारतीय को, जो स्वतंत्रता चाहता है ओर उसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न करता है स्वयं अपना पथ–प्रदर्शक होना चाहिए और आगे बढते रहना चाहिए ।"[२६]

बम्बई प्रस्तावों की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप सभी बड़े बड़े नेताओं को अंग्रेजी सरकारने गिरफतार कर लिया । 'बम्बई प्रस्ताव' को दृष्टि में रखकर जनता स्वयं ही अपना नेतृत्व करने लगी । देश एक महान क्रान्ति की लपटों में सुलगने लगा । जनता का यह विश्वास दृढ हो चला कि स्वाधीनता उपहार की वस्तु नहीं, प्राप्त करने की वस्तु है । इस अगस्त क्रान्ति का स्वरूप सन् १८५७ की क्रान्ति से कम भयंकर न था । इसका प्रभाव हिन्दी के उपन्यासों – 'नई इमारत' 'बयालीस' 'ज्वालामुखी', 'ब्रिच' आदि में प्रमुख रूप से परिलक्षित हुआ है ।

'अंचल' नें 'नई इमारत' में 'अगस्त क्रान्ति के विभिन्न पहलुओं' की विवेचना की है । आरती के माध्यम से गांधीजी के अगस्त प्रस्ताव की भावना को व्यक्त किया गया है ।

सरदार ने भी 'अगस्त प्रस्ताव' पर कहा था कि – "सम्पूर्ण भारत में क्रांन्ति की लपटें फैलने लगीं । सरकारी इमारतों, रेलवे स्टेशनों, पुलिसथानों, डाकखानों, बसों तथा ट्रामों आदि पर आक्रमण होने लगा । उपन्यासकार ने जनता के उस ऐतिहासिक कार्य का अंकन इस प्रकार किया है – "स्वतन्त्रता का आन्दालन बड़े वेग से चलने लगा, शासकों के दुर्ग–पुलिस स्टेशनों' पर जनता का अधिकार होने लगा । यातायात के साधनों पर भी उन्होंने कब्जा कर लिया ।" कचहरी डाकखानां पर राष्ट्रीय झंड़ा फहरा दिया गया ।"[२७] सर

भगवानसिंह जो ब्रिटिश शासन के प्रतीक हैं, चिल्लाकर सत्याग्रहियों से कहते हैं – "रास्ता छोड़ो ।" सत्याग्रहियों का प्रत्युतर था भारत छोड़ो ।"[२८]

अगस्त आन्दोलन में जिन नेताओ को गिरफ्तार किया गया उसका चित्रण 'ज्वालामुखी' में इस प्रकार दिया गया है – "आठ अगस्त की उस अँधेरी रात्रि को पुलिस की मोटरों की घर्र–घर्र और फोजी जूतों की टापों से बम्बई की गलियाँ प्रतिध्वनित हो उठीं । रात–बेरात महात्मा गांधीजी, सरदार पटेल, जवाहरलाल नेहरू, मोलाना आजाद ओर वर्किंग कमेटी के सभी सदस्य गिरफ्तार कर लिए गए और स्पेश्यल गाडी से पूना और अहमदनगर की ओर रवाना कर दिए गए ।"[२९]

इस प्रकार इस क्रान्तिकारी घटना को कई उपन्यासकारों ने अपनी कलम में केद करके चिरस्थायी बनाया है ।

◆ बंगाल का अकाल :

ब्रिटिश भारत में सन् १९४२–४३ के अकाल में जो भयानक क्रूरता दखेने को मिली उसका वर्णन करना असंभव है । ....आदमी, औरतें, नन्हें बच्चे हजारों की तादाद में रोज खाना न मिलने के कारण मरने लगे । कलकत्ते के महलों के सामने लोग मर कर गिर पड़ते । उनकी लाशें बंगाल के अनगिनत गाँवो की मिट्टी की झोंपड़ियों में और देहातों में सड़कों पर और खेतों पर पड़ी थी ।"[३०]

प्रोफेसर के. पी. चट्टोपाध्याय तथा मणिलाल नानावती ने एक कमिशन के समक्ष अपने बयान में बताया था कि अकाल से मरने वालों की संख्या लगभग ३५ लाख थी । परन्तु सरकारी वकील ने केवल २२ लाख ही मृतकों की संख्या मानी थी ।

बंगाल के अकाल का कुछ ही उपन्यासों में चित्रण हुआ है । मुख्यतः 'विधामठ' और 'महाकाल' में उसका यथार्थ अंकन मिलता है । परन्तु 'भिक्खुं

ने 'भंवरजाल' में उस अकाल के कारण पर प्रकाश डाला है । "न सूखा पड़ा न पाला पड़ा । न कहीं बाढ़ आई न और कुछ । फिर भी बंगाल की हरी–भरी भूमि बंजर हो गई । धान के खेत आग पैदा करन लगे । अनाज के नाम पर पत्थर बरसने लगे और चंद दिनों में ही तीस लाख मासूम जिन्दगियाँ मोत में बदल गई, बिना किसी जलजले और कहर के फना हो गई ।"[३१]

'विषाद मठ' के माध्यम से 'राघव' ने पूंजीवादी और नोकरशाही के शोषण का पर्दाफाश करने तथा समाजवादी चेतना को उभारने के लिए 'विषाद मठ' में बंगाल के अकाल का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है ।

अरुण और इकबाल की बात–चीत के द्वारा इस बंगाल के अकाल का कारण स्पष्ट करते हुए कहा कि इस अकाल का कारण पूंजीपति वर्ग ही था । क्योंकि उन्होंने अनाज गोदामों में बंद कर रखा था ।

अमृतलाल नागरने बंगाल के अकाल का हृदय–विदारक चित्रण 'महाकाल' में चित्रित किया है । दाने–दाने चावल के लिए मानव और पशु में कोई अन्तर नहीं रह गया था । उसका एक चित्र द्रष्टव्य है – "मुनीर की लाश के आस–पास चावल बिखरा था, जिसे बटोरने के लिए लोग गिद्धों की तरह टूट पड़े थे । उन्हें इस बात का कोई ख्याल न था कि उसके पास ही एक आदमी की उनके ही एक साथी की लाश पड़ी हुई है ।"[३२]

◆ भारत का विभाजन एवं साम्प्रदायिकता :

हिन्दुओं की प्रबल कट्टरता तथा मुसलमानों के उससे भी अधिक कठोर हो जान से भारत को बड़ी हानि उठानी पड़ी । एक ओर मुस्लिम लीग तथा दूसरी ओर हिन्दू महासभा 'तू डाल डाल में पात पात' वाली कहावत चरितार्थ कर रही थीं । अंग्रेज दोनों दलों के हाथ में ढेल थमा रहे थे । महात्मा गांधीजी एकता का प्रयत्न असफल होता जा रहा था ।

मुस्लिम लीग ने विविधवत २३ मार्च १६४० ई. को पाकिस्तान की माँग प्रस्तुत कर दी । दूसरी ओर हिन्दू महासभा ने वी. डी. सावरकर के सभापतित्व में अहमदाबाद में १६३७ ई. में ही द्विराष्ट्र के सिद्धान्त की बात मान ली थी ।[३३] यही कारण है राष्ट्रीय मुक्ति–आन्दोलन के इतिहास में सन् १६४० के बाद राजनीतिक साम्प्रदायिकता का रंग दिन–ब–दिन गहरा होता गया । साम्प्रदायिकता के भडकीले– चमकीले चित्रों को हिन्दी उपन्यासकारों ने भी यथार्थ रूप में अपनी रचनाओं में चित्रित किया है ।

मुस्लिम लीग के नेता मोहम्मदअली जिन्ना ने सपष्ट कहा था कि भारत के विभाजन के अलावा और कोइ दूसरा रास्ता नहीं है । मुसलमानों को उनका पाकिस्तान तथा हिन्दुओं को हिन्दुस्तान दे दीजिए । पाकिस्तान की माँग का चित्र 'बलिदान' में चित्रित किया गया है –

"यह क्या किया अन्यायी । माँ की छाती पर मोटर चलादी ।" उसने लापरवाही से उत्तर दिया – "मैं पाकिस्तान बनाने जा रहा हूँ ।" प्रतिध्वनि – "मगर अंधे होने से टक्कर खा जाओगे । तुम इन अंग्रेजों की मुठी में खेलरहे हो ।" ... जिन्हा – "मुझे स्वतन्त्रता नहीं, पाकिस्तान चाहिए ।"[३४]

भारत–पाकिस्ता विभाजन के बाद जो दंगा–फसात हुएँ थे उनका चित्रण 'बलिदान' उपन्यास में हुआ है "बंगला के जख्म अभी सूखे नहीं कि बिहार में खुन बहने लगा । बम्बई में छुरे चले, सरहद में सर फूटे.. हर तरफ कत्लेआम मच गया और आज पंजाब में आग के भयानक शोले दहक रहे हैं ।"[३५]

◆ गांधी–हत्या :

भारत–पाकिस्तान की समस्या, शरणार्थी समस्या आदि के कारण देश का वातावरण विषैला होता गया । पाकिस्तान के 'पावने' को लेकर भारत का एक वर्ग विशेष गांधीजी से प्रसन्न नहीं था । गांधीजी पर बम्ब भी फेंका गया था

परन्तु अन्नतः जनवरी १९४८ ई. को उन्हें गोली से उड़ा दिया गया अपने लोगों के दुःख–सुख के लिए जीनेवाले महात्मा को अपने ही लोगों की धृणा का शिकार बनना पड़ा ।

हिन्दी के उपन्यासकारों ने गांधी–हत्या की इस घटना को यथार्थ एवं रचनात्मक ढंग से अपने उपन्यासों में चित्रित किया है । मिश्रद्वय ने गांधीजी की हत्या का वर्णन सीधे–सीधे इस प्रकार किया है – ''३० जनवरी १९४८ को उनके सामने आकर एक मनुष्यने पिस्तोल से उन पर तीन चार गोलियाँ दागीं, और बेचारे शान्तिप्रिय अहिंसावादी महात्मा का प्राण–पंखेरु उड़ गया । सारे भारत में हाहाकार मच गया ।''[३६]

भारत–पाकिस्तान के विभाजन से परेशान व्यक्ति के मनमें जो भावना गांधीजी के प्रति छिपी हुई थी, उसका अंकन 'दो दुनिया' में हुआ है । क्रोधी व्यक्ति का कथन है – मैंने प्रतिज्ञा कर ली हैं कि कुछ दिन बाल–बच्चों को खोजूंगा और यदि वे नहीं मिले तो इसका सारा बदला उस ढोंगी बूढ़े से चुकाऊँगा । जिसके कारण आज आदमियों की यह दुर्गति हुई है ।''[३७]

इस प्रकार गांधी–हत्या के प्रसंग पर कई उपन्यासकारों ने कलम चलाई है । उनके उपन्यासों को देखें तो 'सत्याग्रह', 'जीने के लिए', 'सन्यासी' 'दो दुनिया' आदि आदि ।

◆ स्वाधीनता का आलोक :

राजा राममोहन रायने 'सांस्कृतिक पुनर्जागरण' का जो बीज भारत की भूमि पर बोया था वह लगभग डेढ़ शताब्दी के बाद अनेक घात–प्रतिघात, झंझावात आदि का सामना करते हुए उन्मुक्त रूप से पन्द्रह अगस्त सन् १९४७ को दासता की कुहासा को चिरता हुआ प्रस्फुटित हो उठा । स्वाधीनता के बालरवि की उषाकालीन शक्तिम किरणोंने उसका अभिषेक किया । लालकिले पर तिरंगा लहरा लहरा कर ब्रिटिश साम्राज्यवाद को विदाई दे रहा था ।

भारत देश आजाद होने पर जनमानस अपार हर्ष से फूला नहीं समा रहा था । सर्वत्र नवीन भारत का स्वागत हो रहा था । साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र में नये आयाम अपना विस्तार खोज रहे थे । उपन्यासकार भी उस पावन बेला की मादकता का अंकन अपनी लेखनी से करने में तल्लीन था । उसी पावन वेला की मादकता को उपन्यासों में नाना प्रकार से चित्रित किया गया है ।

"१५ अगस्त को काँग्रेस की आज्ञा से सारे देश में अपूर्व उत्सव मनाया गया । युग युग की गुलामी की जंजीर जिस दिन झनझना कर टूट गई, उस दिन उत्सव होना कुछ स्वाभाविक था । रात को ऐसी रोशनी हुई कि दिवाली भी उसके सामने मात होगई ।"[३८]

अंग्रेजों ने जब सत्ता हस्तातरित की तो उसका आँखों-देखा हाल गुरुदत्त ने इस प्रकार चित्रित किया है –

"रात के साढ़े बारह बज रहे हैं । पार्लियामेन्ट के होल के बाहर दिल्ली के लोगों का अपार जनसमूह हर्ष और उल्लास से भरा हुआ नवजात स्वतंत्रता का स्वागत करने के लिए ढाढें मार रहा है । इस समय जिधर भी दृष्टि जाती है लोगों के सिर ही सिर दिखाई देते हैं । लोगों ख़ुशी से फूले नहीं समाते ।"[३९]

अमृतराय ने स्वाधीनता की प्रशस्ति में कहा है – "ऐतिहासिक दिन १५ अगस्त १९४७ ! न जाने कब से इन्तजार था इस दिन का । ... यह नीले समुद्र सा अपार निरभ्र आकाश उस पर किसी देवदूत शिल्पी के हाथों सोने के अक्षरों से अंकित १५ अगस्त १९४७ । स्वाधीनता दिवस ... ।"[४०]

इस प्रकार सन् १८५७ से लेकर सन् १९४७ अर्थात् नब्बे वर्ष तक की स्वाधीनता प्राप्ति की प्रतिक्षा और उसके लिए किये गये विभिन्न आंदोलनों की घटनाओं का चित्रण प्रेमचंद से लेकर अमृतराय तक के विभिन्न उपन्यासकारों ने किया है । सच तो यह है कि हिन्दी साहित्य में उपन्यास-लेखन की व्यवस्थित

शुरूआत आधुनिककाल यानी सन् १८५७ से ही होती है । अतः आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में प्रथम भारतीय स्वतंत्रता–संग्राम से लेकर स्वतंत्रता–प्राप्ति तक को विभिन्न घटनाओं प्रसंगों का अंकन प्राप्त होता है । वैसे तत्काल में देश का माहोल ही कुछ इस प्रकार का था कि उससे संवेदनशील साहित्यकारों का प्रभावित हो जाना स्वाभाविक था । परतंत्रताकालीन भारत एवं स्वाधीनता–संग्राम की घटनाओं के चित्रण की दृष्टि से प्रेमचंदजी का संपूर्ण कथासाहित्य दस्तावेज के समान है । भारतीय स्वाधीनता संग्राम की प्रमुख घटनाओं से जो उपन्यासकार प्रभावित हुए थे उनका एवं औपन्यासिक रचनाओं का परिचय दिया गया है । इस परिचय के दौरान इतना तथ्य तो अवशय प्राप्त हुआ कि उस समय पूरे भारत देश की स्थिति डामाडोल थी । भारत के सामाजिक–राजनीतिक जीवन में कुछ गर्म हवा बह रही थी ।

(ब) भारतीय स्वातंत्र्य–संग्राम के प्रमुख चरित्रों के चित्रण की समीक्षा :

◆ विषय प्रवेश :

उपन्यास में मानवीय जीवन की कथा प्रस्तुत की जाती है । और अच्छे बुरे प्रसंग मानवजीवन में ही घटित होते हैं । अतः चरित्र उपन्यास का प्राणतत्व माना जाता है । उपन्यासकार चरित्रों का चुनाव करके उन्हें पाठकों के सामने पसंद कर एक आदर्श प्रस्तुत करना चाहता है

भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम का इतिहास बहुत ही विशाल है, उनके अध्ययन से इतनी बात तो अवश्य ही स्पष्ट होती है कि उस संग्राम में महात्मा–गांधीजी का जबरदस्त योगदान रहा है । अतः आधुनिककाल में महात्मा गाँधी की विचारधारा से प्रभावित उपन्यास रचनाएँ की गई हैं । जिनकी समीक्षा कुछ इस प्रकार है –

हिन्दी के उपन्यासकारो नें प्रायः अपने उपन्यासों में गाँधीजी को आदर्श मानकर उनका छायांकन पात्र के रूप में, उनकी वेश–भूषा के रूप में, जीवन–चर्चा के रूप में तथा अन्य नाना गांधीय कार्यक्लापों तथा विचारों के रूप में चित्रित किया है ।

'प्रेमाश्रम' उपन्यास का प्रेमशंकर चरित्र भी गाँधीजी की ही प्रतिकृति है । गाँधीजी की भाँति वह भी रेलके तीसरे दर्जे में यात्रा करता हैं । कुली की प्रतिक्षा में न रहकर अपने सामान स्वावलम्बन की गांधीय भावना के अनुसार सवयं उठाकर चल देता है । प्रेमचंदजीने उसी गांधीयभाव का चित्रांकन इस प्रकार किया है – "ज्ञानशंकर, गाड़ी आते ही पहले और दूसरे दर्जे की गाड़ियों में झांकने लगे किन्तु प्रेमशंकर इन कमरों में न थे । तीसरे दर्जे की सिर्फ दो गाड़ियाँ थी, वह इन्हीं गाड़ियों के कमरे में बैठे हुए थे । ज्ञानशंकर अभी तक कुलियों को पुकार रहे थे कि प्रेमशंकर ने अपना सब सामान उठा लिया और बाहर चले ।"

गाँधीजी की तरह 'रंगभूमि' का सूरदास भी कर्तव्य की भावना को प्रमुखता देता है । उसमें गांधीजी की ही – सी दृढ़ता है । वह सत्य के ' इन' से मुँह नहीं मोड़ता सबको जीवन–संघर्ष की प्रेरणा देता हुआ भागता फिरता है –

"भाई क्यों रण से मुँह मौड़े ?
बीरों का काम है लड़ना, कुछ नाम जगत में करना
× × ×
क्यों जीत की तुझको इच्छा, वर्षो हार की तुझको चिन्ता
× × ×
भाई क्यों रण से मुँह मौड़े ?"

सूर में गाँधीजी की ही नम्रता है । वह हार और जीत की चिन्ता न करके शुद्ध हार्दिक नम्रता से शत्रु के प्रति भी विनत होकर कहता हैं "भैया,

अगर हमने झेल में तुमसे कोई अनुचित बात कही हो या कोई अनुचित व्यवहार किया हो तो हमें माफ करना । मेरा काम तो लड़ना है और वह भी धरम की लड़ाई लड़ना । अगर एक साहब दगा भी करे तो मैं उनसे दगा न करुँगा ।" सूर के इन शब्दों में गाँधीवाद की अभिव्यक्ति हुई है । यदि नहीं वह गाँधीजी के समान ही शरणागत को आश्रय देता है । दीन–दुखी के लिए उनकी झोंपड़ी का द्वार सर्वदा खुला रहता है । 'सुभागी' जब उससे शरण माँगती है तब सूरदास सुभागी को अपने विरोधी भैरों की चिन्ता न करते हुए शरण भी देता है ।[४१]

सूर गांधीजी की तरह पूंजीवादी औद्योगीकरण का विरोध करते हुए कहता है कि – "कारखाने का खुलना ही हमारे ऊपर विपति का आना है ।" यहाँ प्रेमचंद गांधीवाद के समर्थन के लिए और औद्योगीकरण के विरोध हेतु नायक राम से गवाह के रूप में कहलाते भी हैं कि – "दीनबंधु सूरदास बहुत पक्की बात कहता है । कलकता, बम्बई, अहमदाबाद, कानपुर आपके हक्वाल से सभी जगह धूम आया हूँ । जजमान लोग बुलाते रहते हैं । जहाँ जहाँ कल कारखाने हैं, वहां यही हाल देखा है ।

औद्योगीकरण के बारे में गांधीजी का मंतव्य था – "बड़े पैमाने पर औद्योगीकरण का अनिवार्य परिणाम होगा कि ज्यों–ज्यों प्रतिस्पर्धा और बाजार की समस्याएं खड़ी होंगी त्यों–त्यों गाँवो का प्रकट या अप्रकट शोषण होगा ।"[४२]

शत्रु के प्रति मित्रभाव जो गाँधी–दर्शन की विशेषता है । सूर में कूट–कूटकर प्रेमचंदने भर दी है । जिनके लिए 'सूर' लड़ता है वे ही उसकी टांग खींचकर गिरा देते हैं । सूर के दांत टूट जाते हैं । होंठ कट जाते हैं । मूर्छा आ जाती है । फिर भी यह पूछने पर कि – "किसी ने मारा है ?" सूर का उतर – "नहीं भैया, ठोकर खाकर गिर पड़ा था " आत्म–पीड़न, समान दृष्टि जो गाँधीविचारधारा के तंतु हैं, प्रेमचंद ने सूर के एक एक कथन में पिरो दिए हैं । मरणसन्न सूर अपने विरोधी राजा साहब के आगमन पर

उठने की चेष्टा करता है । विरोधी के प्रति प्रेम की भावना व्यक्त करते हुए कहता है – "राजा साहब आये हैं । उनका इतना आदर भी न करूँ ।"[४३]

गाँधीजी असहयोग आंदोलन के द्वारा जो आग उगल रहे थे उसमें ब्रिटिश साम्राज्य का चक्का बंद पड गया था । जान सेवक भी सूर को 'सत्यप्रिय आदमी' कहता है । क्योंकि महात्मा महामना गाँधीजी ने राष्ट्रीय स्वातंत्र्य–संग्राम को कभी भी हार या जीत के दाव पर नहीं चलाया । एक खिलाड़ी की भावना से हमेशा अपना कर्तव्य करते रहे । सूरदास भी – "जीता, तो प्रसन्नचित रहा, हारा तो प्रसन्नचित रहा.. खेल में सदैव नीति का पालन किया । कभी धांधली नहीं की कभी द्वन्दी पर छिपकर चोट नहीं की ।"[४४] "वह एक सत्याग्रही है । इसलिए उसकी प्रशंसा केवल उसके मित्र ही नहीं करते अपितु उसके विरोधी भी करते हैं ।

प्रेमचंदजी रचित 'कायाकल्प' का मुख्य चरित्र चक्रधर भी गाँधीवादी चरित्र है । उसमें भी बापू के अनेक गुणों का छायाभास खोजा जा सकता है । चक्रधर आंदोलनकारी उपद्रवियों को उसी प्रकार से समझाता है जिस प्रकार से अहिंसावादी बापू प्रायः समझाया करते थे । चक्रधार के ही शब्दों में देखिए – "अगर तुम्हें खून की प्यास है, तो मैं हाजिर हूँ । मेरी लाश को पैरों से कुचलकर तुम आगे बढ़ सकते हो ।" वह हमेशा हिंसा का विरोध करता है । 'बगावत को सजा' उसे भी मिलती है, जैसी गाँधीजी का मिला करती थी । दमन की चक्की में पिसनेवाले मजदूरों के इन वाक्यों से चक्रधर का गाँधीवादी रूप ओर उज्ज्वल हो जाता है – मजदूर – "भैया, शांत–शांत बका करते हो, उसका फल क्या होता है । हमें जो चाहता है, मारता है, जो चाहता है, पीसता है । शांत रहने से ओर भी तुम्हारी दुरगती होती है । हमें शांत रहना मत सिखाओ ।"[४५] चक्रधर के इन वाक्यों से पता चल जाता है कि वह गांधीजी के समान ही शांति का पुजारी है ।

अमरकांत को भी प्रेमचंदने गाँधीवादी विचारों के साँचे में ढाला है । वह राष्ट्रीय भावों में ओतप्रोत है । वह वैधानिक रीति से स्वराज्य प्राप्त करने का अधिकारी है । रोजाना रोज दो घण्टे बैठकर नियमानुसार कोठरी में जाकर चरखा चलाना, खादी का गटठा लादे गली–गली खादी बेचना, झाडु लगाना, अपनी चाली स्वयं मांजना, झोंपड़ी में निवास करना, हरिजन बच्चों के लिए पाठशाला खोलना आदि कार्य उसके गाँधीजी के ही कार्य है । गांधीजी अपने जीवन में वह सब स्वयं करते थे । अमरकांत गाँधीजी की तरह छुआछूत नहीं मानता । उसका कथन है कि – ''जो सच्चा है वह चमार भी हो तो वह आदर के योग्य है जो दगाबाज, झूठा, लम्पट हो वह ब्राह्मण भी हो, तो आदर के योग्य नहीं ।''[४६]

श्रीनाथसिंह ने 'जागरण' उपन्यास में भी अनेक गाँधीवादी पात्रों की रचना की है । कृपाशंकर तो इंग्लैड में शिक्षा पाकर भारतीय गाँवो में रहने लगते हैं । क्योंकि उनका स्पष्ट कथन है –

''कष्ट की कहानी ही मैंने सुनी थी । स्वयं कष्ट ना अनुभव नहीं किया था । आपने मुझे उन कष्टों का अनुभव कराया जो इस देश की जनता के कष्ट है । इन्हीं कष्टों की बदौलत आज में अपने देशवासियों के बहुत निकट आ गया हूं । उनमें मिल गया हूँ ।

'पतवार' उपन्यास का दिलीप गाँधीजी का अनुयायी है । वह भी पीड़ित मानवता का चीत्कार सुनने के लिए बस्तियों का चक्कर लगता है ।[४७] व्यंग्य अहिन्दी–भाषी उपन्यासकार शेखड़ेजी रचित 'ज्वालामुखी' का अभय नामकर चरित्र भी गाँधीजी का कट्टर भक्त बन गया । सेवाग्राम नजदीक था, इसलिए वहाँ भी झाल में दुकआध बार हो आता । .. कोलेज के भाषणों में, वादविवादों में, लेखों में वह गांधीजी का अहिंसक दृष्टिकोण ही पेश करता । 'हरिजन' का पद नियमित पाठक था और गाँधीजी के लेखों का एक–एक शब्द पढ़ता था ।''[४८] उपन्यासकार प्रभाकरजी ने निशिकांत को पूर्णतः गाँधीवादी पत्र

चित्रित किया है । निशिकांत प्रतिज्ञा करता है कि – (१) खददर पहनुँगा, अछूतो को अपने समान मानूँगा, राष्ट्रभाषा हिन्दी की सेवा करूँगा, हिन्दू मुस्लिम एकता का सेवा काम करूँगा ।"[४६]

आधुनिक हिन्दी उपन्यासकार यशदत शर्माने भी 'दो पहलू' में गाँधीजी के अनुयायी के रूप में गाँधीवादी चरित्र सुरेन्द्र की कल्पना की है । वह अपना परिचय इस प्रकार देता है – "मैं महात्माजी का शिष्य हूँ । उन्हीं का अनुयायी हूँ । यह उन्हीं की शक्ति का अंश है जो में इतनी यातनाओं को हँसकर सहन कर लेता हूँ ।"[५०]

उपन्यासकार नागार्जुन ने भी 'बलचनमा' में बलचनमा नामक पात्र के मुँह से गाँधीवादी पात्र की सजीवता का वर्णन कराया है । वह कहता है – "मैंने देखा, मालिक बहुत बदल गये थे । सुबह–शाम गाँधीजी का भजन गाते थे । जेल ही से गीता की एक छोटी पोथी ले आये थे । उधर अगले ही दिन एक चरखा खरीद लाए । अरे भैय, वहीं चरखा छोटे बक्स में बंद रहता । खाना–पीना भी उनका बदल गया था । मसला–मिरचाई कुछ नहीं, तरकारी उबालकर खाते थे ।"

'मुक्ति को बंधन' के चरित्र विशालसिंह पक्के गांधीवादी चरित्र है । गांधीजी के आंदोलन में वह हिस्सा लेते हैं । जनता को सत्याग्रह के लिए जगाते हैं । अपने भाषण में वह गाँधीजी की विचारधारा अहिंसा का प्रचार करते हुए कहते हैं –

"हमारा व्यक्तिगत न किसी से द्वेष है न किसी से लड़ाई । हम सैनिक हैं तो अहिंसा के । कोई हमसे शत्रुता साध नहीं सकता, हम सत्य के पुजारी है ।"[५१]

इस प्रकार हमारे राष्ट्र में चल रहे भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम से प्रेमचंद एवं प्रेमचंदोत्तरकाल को एकाधिक उपन्यासकार प्रभावित हुए थे । उस स्वातंत्र्य–संग्राम की एकाधिक घटनाओं तथा चरित्रों को अपने उपन्यास–सृजन

का कथ्य एवं चरित्र के रूप में अपनाया । भारतीय स्वाधीनता संग्राम के अग्रदूत एवं प्रेरणास्त्रोत महात्मा गाँधीजी रहे थे । उन्होंने अंग्रेजों के सामने सत्य एवं अहिंसा की लड़ाई लड़ी थी । जिसके व्यक्तित्व के पूरा हिन्दुस्तान एवं स्वयं अंग्रेज भी प्रभावित थे तो साहित्यकार एवं साहित्य उसस कैसे अछूता रह सकता है ? गाँधी विचारधारा एवं उनके चरित्र, व्यक्तित्व, स्वभावने प्रेमचंद युग एवं प्रेमचंदोत्तर युग के उपन्यासकारों को प्रभावित किये थे । अतः उन उपन्यासकारों ने अपने हिन्दी उपन्यासों में कहीं तो गाँधी विचारधारा वाले चरित्रों की सृष्टि की है, कहीं खुद गाँधी के चरित्र को पात्र के रूप में पसंद करके भारतीय स्वातंत्र्य–संग्राम के महत्त्वपूर्ण चरित्र को उजागर करने का खूबसूरत प्रयत्न किया है । एक तरह से इसे हम महात्मा गाँधीजी को श्रद्धांजली भेंट भी कह सकते हैं । इस विशेषता के दर्शन आधुनिक हिन्दी काव्य में भी होते है । क्योंकि कई हिन्दी–कवियोंने 'बापू' यानी महात्मा गाँधीजी के चरित्र को केन्द्र बनाकर काव्य–रचनाएं की थी । जैसे–सियारामशरण गुप्तजी कृत 'बापू' खंडकाव्य । अंत में मैं निष्कर्ष के रूप में ऐसा कहूँ तो अन्यथा नहीं होगा कि आधुनिक हिन्दी–उपन्यासकारों ने हड्डियाँ रूपी घटनाएँ एवं हृदय रूपी चरित्रों की सृष्टि के माध्यम से भारतीय स्वाधीनता संग्राम की घटनाओं से युक्त उपन्यास शरीर को मजबूत बनाने का सफल प्रयास किया है ।

संदर्भ सूची :

क्रम	लेखक	पुस्तक	पृ.नंबर
१	राहुल सांस्कृत्यायन	भागोनहीं बदले	२०६
२	के.पी. करुणाकरण	मार्डन वालिटिकल ट्रेडिशन	१४२
३	मिश्रद्वीप	स्वतंत्र भारत	६
४	गोविंद वल्लभपंत	मुक्ति के बंधन	२२
५	उपेन्द्रनाथ अश्क	गिरती दिवारें	४६८
६	पट्टाभि सीतारामैया	कोंग्रेस का इतिहास खण्ड एक	५८
७	लज्जाराम शर्मा मेहता	आदर्श हिन्दू भाग–१	२१
८	जवाहरलाल नेहरू	मेरी कहानी	५४४
९	रिपोर्ट ओन न्युझ पेपर्स बंगाल	दिसम्बर १९०७	५१५
१०	रिपोर्ट आदि साइनम कमिशन	पार्ट–३ अध्याय–६	२३०
११	कृष्णा हठीसींग	इंदु से प्रधान मीं	३६
१२	रिपोर्ट आक दि साइमन कमिशन	पार्ट–३ अध्याय–६	२४६
१३	आचार्य चतुर्सेन शास्त्री	आत्मदाह	२८६
१४	यथोपरि	–	२८७
१५	गुरुदत	स्वराज्यदान	५
१६	मौलाना अब्दुल कलाम आजाद	इंडियाविन्स फ्रिडम	१०
१७	मिश्रद्वय	स्वतंत्र भारत	१५
१८	मन्मथनाथ गुप्त	रैनअंधेरी	३८
१९	यथोपरि	–	४१
२०	मम्मथनाथ गुप्त	रैन अंधेरी	४७

२१	अमृेतराय	प्रेमचंद कलम का सिपाही	३४३
२२	डॉ. राजेन्द्र प्रसाद	खण्डित भारत	२४४
२३	गोविन्ददास	इन्दुमति	३८८
२४	डॉ. राजेन्द्र प्रसाद	खण्डित भारत	२४४
२५	यशपाल	देशद्रोही	२१२
२६	महात्मा गांधी	अंग्रेजों से मेरी अपील	८४
२७	प्रतापनारायण श्री वास्तव	बयालीस	३१८
२८	यथोपरि	–	३४३
२६	अनन्त गोपाल शेवड़े	ज्वालामुखी	५८
३०	जवाहरलाल नेहरू	हिन्दूसतानी की कहानी	१८
३१	श्रीकृष्णचंद्र शर्मा 'भिक्खु'	संक्रान्ति	१८५
३२	अमृतलाल नागर	महाकाल	६७
३३	अशोक महेता एन्ड अच्युत पटवर्धन	दिकमुनल ट्राइंगल इन इंडिया	१५४
३४	रघुवीरशरण मिश्र	बलिदान	७८
३५	रघुवीरशरण मिश्र	बलिदान	१३६
३६	मिश्रद्वय	स्वतंत्र भारत	८०
३७	मम्मथनाथ गुप्त	दो दुनिया	३६
३८	मन्मथनाथ गुप्त	बलिका बकरा	७७
३९	गुरुदत	देश की हत्या	२३०
४०	अमृतराय	बीज	२५६
४१	प्रेमचंद	रंगभूमि	१२५
४२	महात्मागांधी	मेरे स्वप्नों का भारत	३४
४३	प्रेमचंद	रंगभूमि	५६०

४४	यथोपरि	–	५५६
४५	प्रेमचंद	कायाकल्प	१२१
४६	प्रेमचंद	कर्मभूमि	१४२
४७	भगवती प्रसाद वाजपेयी	पतवार	११०
४८	अनन्त गोपाल शेवड़े	ज्वालामुखी	४६
४९	विष्णुप्रभाकर	निशिकान्त	४१
५०	यज्ञदत्त शर्मा	दो हलु	८८
५१	गोविन्द वल्लभ पंत	मुक्ति बंधन	१०४

☆☆☆

उपसंहार

उपसंहार

पीड़ित, दुःखी शोषित मानवात्मा का विद्रोह जीवन की एक अनिवार्यता है । दमन एवं अन्याय के सम्मुख कभी भी वह नतमस्तक नहीं होता । अपमान की ठोकरें खा–खा कर राष्ट्रभिमानी पुनः उस अन्याय एवं अनीति के विरुद्ध उठ खड़ा होता है । जब वह जागने लगता है तो राष्ट्र के जीवन में एक नवस्पंदन दृष्टिगोचर होता है । भारतीय स्वाधीनता स्वातंत्र्य–संघर्ष के इतिहास की कहानी, मानव–इतिहास में अध्ययन के सबसे अधिक आकर्षक विषयों में से एक है । राष्ट्रीय आंदोलन, राष्ट्रीय जागरण के फल स्वरूप देशवासियों का आत्मसम्मान वापस आया तब देश स्वतः स्वतंत्र हो गया ।

जब किसी राष्ट्र अथवा समाज के विचार सामूहिक रूप से प्रस्फुटित होने लगते हैं तब एक प्रबल जनक्रांति का जन्म होता है । देश की जनभाषा का माध्यम उसकी व्यापकता का वाहक बन जाता है । वह फलता और फूलता है और अन्ततः जीवन का एक अभिन्न अंग बन जाता है ।

'सांस्कृतिक–चेतना के पुनर्जागरण' से उदबुद्ध होकर राष्ट्रोत्थान की नवचेतना ने भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेस की स्थापना के बीज का वचन किया था । 'बंगभंग' के व्यक्ति आत्मविद्रोह ने कालांतर में राष्ट्र व्यापी जनआंदोलन का रूप धारणकर लिया था । बालकृष्ण गोखले तथा लोकमान्य तिलक एवं कलाधिक राष्ट्रप्रेमी उन्नायक अपने अपने झंड़ो के तले राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम को आगे बढ़ाते रहे लेकिन सफलता किसी को न मिलीं । गंगा–यमुना रूपी उक्त दोनों के साथ सरस्वती के रूप में महात्मा गांधी का संगम हुआ । जिसने राष्ट्रीय आंदोलन के प्रवाह को तीव्र से तीव्रतरकर 'असहयोग आंदोलन' से लेकर अगस्त–क्रांति तक ब्रिटिश साम्राज्य की जड़ों को झकझोर कर खोखला

कर दिया था । परिणाम स्वरूप स्वाधीनता के सूर्य का उदय हुआ और पराधिनता की अंधकारमय रात्रि समाप्त हुई ।

महात्मा गाँधी के राजनीति में प्रवेश से पूर्व लिखे गये हिन्दी उपन्यासों में सक्रिय स्वातंत्र्य–संघर्ष की भावना का नितांत अभाव है । कुछ उपन्यासों यथा – आदर्श हिन्दू बिगड़े का सुधार अथवा सती सुखदेवी, हिन्दू गृहस्थ, अरण्यबाला में जो राजनीतिक प्रवचन उपलब्ध है उनका स्वर युगीन नरमदली राजनीति के स्वर से भिन्न नहीं है । नरमदली नेताओं की भाँति 'ब्रिटिश राज' का गुणगान सूत्र रूप में उनमें उपलब्ध होता है । शेष लगभग सन् १६१६ तक उपन्यास साहित्य में राजनीतिक संघर्ष के चित्रण का मौन तथा उसक प्रति उपेक्षाभाव दृष्टिगोचर होता है ।

बंग–भंग के कारण स्वदेशी आंदोलन का जो सूत्रपात बंगाल में हुआ था, जिसकी चर्चा भारत के कोने–कोने में रही, उससे भी हिन्दी का उपन्यासकार अपना साक्षात्कार न कर सका । 'स्वदेशी आंदोलन' (१६०५ ई) पर रचित कोई भी रचना उपलब्ध न हो सकी ।

महात्मा गाँधीने जिस प्रकार भारतीय स्वातंत्र्य संघर्ष को एक नई दिशा की ओर मोड़ा उसी प्रकार हिन्दी उपन्यास साहित्य के इतिहास में प्रेमचंदजीने निश्चय ही उपन्यास साहित्य को सर्वप्रथम राजनीति से सम्बद्धकर उसे नये आयाम प्रदान किये । उपन्यास को जनआंदोलन का अभिन्न अंग बना दिया । राजनीति में गाँधीजी और हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचंद स्वातंत्र्य संघर्ष का नेतृत्व कर रहे थे । खुद भी अंग्रेजों के विरुद्ध 'सोने वतन' की प्रतियों लिखने के कारण जेल में गये थे । अर्थात् प्रेमचंदजी खुद भी अंग्रेजी शासन के शोषण के शिकार हुए थे ।

संपूर्ण विश्व की परिस्थितियाँ परिवर्तित हो रही थीं । ब्रिटिश साम्राज्य को भारत से समाप्त करने के लिए विभिन्न आंदोलन भारत में चलाये जा रहे थे, उन्हीं आंदोलनों के राजनीतिक दर्शन को जनता में उपन्यास के माध्यम से

प्रचारित किया जाने लगा । क्योंकि उपन्यास साहित्य की एक लोकप्रिय विद्या होने के कारण जनसामान्य में बहुत ही प्रचलित रहा है । उसका प्रभाव भी जनसापेक्ष होता है ।

महात्मा गाँधी के राजनीति में प्रवेश से हिन्दी उपन्यास के शिल्प यानी कलापक्ष में नवीन परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है । स्वातंत्र्य संघर्ष के विविध पक्षों का लेकर राजनीतिक उपन्यासों की नई परंपरा यहीं से आरंभ होती है, गाँधीवाद के सैंद्धातिक तथा व्यावहारिक दोनों ही पक्षों को उपन्यास का प्रमुख कथ्य बताया गया है, राष्ट्रीय संग्राम की कोई न कोई घटा किसी न किसी रूप में उपन्यासों में चित्रित की गई है ।

सन् १९३० तक के हिन्दी उपन्यासों में गाँधीवादी प्रमुख रूप से उपन्यासों में चित्रित हुआ है, उसकी आलोचना या समीक्षा प्रायः नहीं प्राप्त होती । 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि' कायाकल्प, जागरण मेरा देश, सत्याग्रह आदि रचनाएँ इसका प्रमाण हैं परंतु सविनय की आलोचना तथा समाजवाद की स्थापना के दर्शन प्रमुख रूप से होते हैं । क्योंकि राष्ट्रीय संग्राम में समाजवाद का प्रचार प्रबल रूप में हो गया था । समाजवादी चितंन को लेकर विरचित उपन्यासों में यशपाल, अंचल, राहुल, नागार्जुन अमृतराय आदि की रचनाएँ प्रमुख हैं ।

क्रांतिकारी आंदोलन का प्रतीक के रूप में चित्रण दुर्गादास खत्री के उपन्यासों में हुआ है कहीं-कहीं जैनेन्द्र कुमार ने भी गाँधीवाद के साथ क्रांतिवाद को भी अपनी रचनाओं का विषय बनाया है । किन्तु उसका स्वरूप धूमिल है । समाजवादी उपन्यासकारोने सन् १९४० के बाद पुनः क्रांतिकारी आंदोलन को कथानक के रूप में ग्रहण किया है ।

देश के साम्प्रदायिक वातावरण का प्रभाव हिन्दी उपन्यासों में प्रबल रूप में मिलता है । 'दो भाई', 'राम रहीम' 'प्रत्यागत' झूठा सच', देश की हत्या,

धर्मपुत्र आदि में साम्प्रदायिक समस्या ही उपर्युक्त उपन्यासों की प्रमुख कथा । वर्ण्यविषय है ।

ई. सन् १८८५ से १९६० ई. तक के उपन्यासों की समीक्षा से यह स्पष्ट हुआ है कि स्वातंत्र्य संघर्ष के उतार–चढाव के साथ–साथ उपन्यासकार भी उसी रूप में प्रभावित होता आया है । इसलिए तीन तरह के उपन्यासों की रचना उपन्यास उपन्यास साहित्य में उपलब्ध होती है (१) 'वाद' सापेक्ष (२) 'वाद' निरपेक्ष तथा (३) तटस्थ । तीसरे प्रकार के उपन्यासों का विषय केवल राष्ट्रीय संग्राम की प्रमुख घटनाओं पर प्रकाश डालना तथा उसके लिए उतरदायी परिस्थितियों का अंकन करना है । ऐसे तटस्थ उपन्यासों में मन्मथनाथ गुप्त के कुछ उपन्यास, इलाचंद्र जोशीजी के उपन्यास, मिश्रद्वय का 'स्वतंत्र भारत' गोविंददास का 'इन्दुमति' आदि प्रमुख है ।

स्वतंत्रता–प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील विभिन्न राजनीतिक विचारों के प्रभाव से उपन्यास साहित्य अपने को भिन्न न रख पाया । साहित्य में उसका प्रभाव पडना स्वाभाविक था । जिसका परिणाम यह हुआ कि गाँधीवादी, समाजवादी, साम्यवादी तथा आतंकवादी विचारों को लेकर विभिन्न उपन्यासों की रचना हुई है ।

जिस प्रकार भारतीय राजनीति में गाँधीजी छाये रहे उसी प्रकार 'गाँधीवादी' भी उपन्यास साहित्य में छाया हुआ है । हर एक राजनीतिक उपन्यास में गाँधीवाद तथा उनसे संबंधित कोई न कोई प्रसंग अवश्य ही मिल जायेगा । सन् १९२० के बाद की ऐसी कोई भी स्वातंत्र्य संघर्ष की घटना नहीं है जिसे उपन्यासों में स्थान न मिला हो । स्वातंत्र्योतर हिन्दी उपन्यासों में स्वातंत्र्य संघर्ष का अंकन पूर्ण यथार्थ रूप में किया गया है । कहीं कहीं उपन्यास ऐतिहासिक ग्रंथ का आभास देने लगता है । सर्वाधिक उपन्यासों की रचना क्रमानुसार गाँधीवाद, देश की साम्प्रदायिक समस्या, समाजवाद तथा क्रांतिकारी आंदोलन और अन्य विविध घटनाओं को लेकर की गई है ।

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन से ज्ञात होता है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व उपन्यास और स्वातंत्र्योत्तरकालीन हिन्दी उपन्यासों में भारतीय स्वाधीनता संग्राम का चित्रण हुआ है । भारतीय स्वाधीनता संग्राम का प्रारंभ सन् १८५७ के विप्लव से होता है । हिन्दी साहित्य के आधुनिककाल की शुरूआत भी इसी समय से ही होती है । इन्हीं दोनों तथ्यों को समेटते हुए प्रस्तुत शोध–अध्ययन 'आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम का चित्रण का सृजन किया गया है । भारतीय वर्ष की पराधीनता की विभीषिका का चित्रण और राष्ट्रीय चेतना को उजागर करना इस शोध अध्ययन की उपलब्धि रही है ।

प्रस्तुत शोध–अध्ययन कुल मिलाकर पाँच अध्यायों में विभाजित है । प्राक्कथन और उपसंहार अध्यायविहीन है । प्रथम अध्याय में आधुनिककाल की विभिन्न साहित्यिक परिस्थितियों का चित्रण किया गया है । आलोच्य शोध–प्रबंध के शीर्षक का संबंध आधुनिककाल से हैं । प्रत्येक साहित्यकार अपनी युगीन परिस्थितियों से अनुप्राणित होता है । पराधीन भारत वर्ष का कुछ माहौल ही इस प्रकार का था कि भावुक संवेदनशील साहित्यकार के लिए उससे अपरिचित रहना अस्वाभाविक था । अतः आधुनिककाल के स्वातंत्र्यपूर्व एवं स्वातंत्र्योतरकालीन उपन्यासकारों ने अपने युग की समकालीन राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक तथा साहित्यिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर उपन्यास साहित्य की रचना की थी । उन विभिन्न युगीन परिस्थितियों का आकलन प्रस्तुत अध्याय में किया गया है ।

प्रस्तुत शोध प्रबंध के द्वितीय अध्याय का शीर्षक 'भारतीय स्वतंत्रता–संग्राम के विविध आयाम है ।' अंग्रेजोंने दो सौ साल के लम्बे शासन के द्वारा भारतवर्ष में अपनी नींव मजबूत कर ली थी । इस दीर्घायु शासनकाल के द्वारा भारतीय जनता का अनेक तरह से शोषण किया गया । इस शोषण के कारण भारतीय जनताने पराधीनता का एहसास किया भारत देश को इस परतंत्रता की कारा में से मुक्त कराने के लिए इस देश में राष्ट्रीय उन्नायकों,

चिंतकों द्वारा विभिन्न अभियान चलाये गये थे । प्रस्तुत अध्याय में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के विभिन्न आयामों एवं घटनाओं कॉंग्रेस के विभिन्न अधिवेशन, जलियावालाबाग हत्याकांड, बंगाल का अकाल, भारत–पाकिस्तान विभाजन, हिन्द–छोड़ो आंदोलन इत्यादि का जिक्र किया गया है ।

तीसरे अध्याय का शीर्षक है – स्वतंत्रता संग्राम से प्रभावित हिन्दी उपन्यासों का परिचय । प्रस्तुत अध्याय में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की घटनाओं से प्रभावित होकर स्वातंत्र्यपूर्व एवं स्वातंत्र्योतरकालीन प्रेमचंद्युग एवं प्रेमचंदोतरयुग के उपन्यासकारों की ओपन्यासिक रचनाएँ चंद हसीनों के खतुत, गोदान, चंद्रकांता, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कर्मभूमि, वरदान, कायाकल्प गबन, जागरण, मनुष्यानंद बुधुवा की बेटी, सरकार तुम्हारी आँखों में, भाई, सत्याग्रह, सुनीता, मुक्तिबोध, त्यागपत्र, मेरा देश, राम–रहीम, गाधी की टोपी, पुरुष और नारी, दो पहलू, निमंत्रण, टेढ़े मेढ़े रास्ते, हृदयमंथन, चलते चलते, पतवार, सुखदा, विवर्त, जयवर्धन, आत्महाद, निशिकांत, गाँधीवादी, चबुतरा, बलि का बकरा, दादा कामरेड, देशद्रोही, शेखर एक जीवनी, पार्टी कामरेड, चढ़ती धुप, नइ इमारत, उल्का, विसर्जन, मनुष्य के रूप, झुठासच, टेढ़े मेढ़े रास्ते, मशाल, सती मैया का चौरा, बीज, बलचनमा, बाबा बटेशरनाथ, रतिनाथ की चाची, रंगमंच, प्रतिशोध, मृत्युकिरण, रक्तमंडल, सुफेद शैतान, निर्वासित, जययात्रा, जिच, स्वाधीनता के पथ पर, ‘पैरोल पर, निर्देशक, अमरबेल भंवरजाल, डॉ. शेफाली, शेष–अशेष, प्रत्यात्रत विदा, बयालीस, अप्सरा, अलका, कुल्ली भाट, आत्मदाह, धृणामयी, मुक्तिपथ, पथिक, चढती धूप, नई इमारत, विषादमठ, गिरती दीवारें, महाकाल, स्वराज्यदान, देश की हत्या, स्वतंत्र भारत हरिजन, अनबुजी प्यास, मुक्ति के बंधन, बयालीस के बाद, संक्रांति, इन्सान, पूरब और पश्चिम, मैला आँचलन, बुझते दीप, ज्वालामुखी, भुले बिसरे चित्र, रूपाजीवा, दो–दुनिया, रैन अंधेरी, अपराजित ई.सन् १९६० तक लिखे गये उपन्यासों का सांकेतिक रूप से परिचय दिया गया है ।

चतुर्थ अध्याय का शीर्षक है – आधुनिक हिन्दी – उपन्यासों में स्वतंत्रता संग्राम का चित्रण । प्रस्तुत अध्याय में सन् १८५७ से लेकर सन् १६६० तक के हिन्दी उपन्यासों में निरूपित स्वतंत्रता संग्राम का चित्रण किया गया है । क्योंकि भारतीय सवतंत्रता संग्राम की वास्तविक शुरूआत सन् १८५७ के विप्लव से होती है और अंत महात्मा गाँधीजी की मृत्यु से होती है । अतः इन प्रमुख दो धारा–प्रवाहों में विभाजित हिन्दी उपन्यासों का जीक्र किया गया है ।

पंचम अध्याय का शीर्षक है – भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के परिप्रेक्ष्य में आधुनिक हिन्दी उपन्यासों का मूल्यांकन । प्रस्तुत अध्याय में भारतीय स्वातंत्र्य – संग्राम की प्रमुख घटनाओं एवं वादों – गाँधीवाद, आश्रम स्थापना, आतंकवाद, गदर आंदोलन, राजनीतिक डकेतियाँ, काकोरी,–ट्रेन–कांड, अधिकारी वर्ग की हत्याएँ, समाजवाद, मजदूर–आंदोलन, चौराचौरी हिंसात्मक घटनात्मक कांड कृषक–आंदोलन, ग्राम्य जागरण, नारी–जागरण अछूतोद्धार–आंदोलन, हिन्दू–मुस्लिम–एक्य, स्वदेश–प्रेम, स्वभाषा प्रेम, स्वदेशी–वस्तु का प्रचार, नमक–सत्याग्रह, कांग्रेश अधिवेशन जलियावालाबाग हत्याकांड, साइमन कमिशन, बंगालकाल, भारत पाकिस्तान विभाजन गाँधी हत्या आदि विभिन्न घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी–उपन्यासों की समीक्षा की गई है । इस शोध–अध्याय में घटना एवं चरित्र को प्राधान्य दिया गया है । प्रेमचंदपूर्व युग प्रेमचंदयुग एवं प्रेमचंदोत्तर कालीन उपन्यासों में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की प्रमुख घटनाओं एवं भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के क्रांतिवीरों से प्रभावित आधुनिक हिन्दी उपन्यासों की समीक्षा की गई है । अतः कह सकते हैं कि प्रस्तुत अध्याय में भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम की घटनाओं एवं चरित्रों से संबंधित उपन्यासों की समीक्षा को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है ।

शोध–ग्रंथ के अंत में उपसंहार दिया गया है । जो अध्यायविहीन है । उपसंहार में संपूर्ण शोध–प्रबंध का परिचय दिया गया है । साथ ही भारतीय

स्वतंत्रता संग्राम की घटनाओं को पुनः स्मृति पर लाने का प्रयत्न किया गया है । भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास को पुर्नजीवित करना इस शोध–अध्ययन की सबसे बड़ी उपलब्धि है । राष्ट्रीय चेतना–मुक्ति में योग देना इस शोध–प्रबंध का उद्‌देश्य रहा है । साथ ही साहित्य के क्षेत्र में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को केन्द्र में रखकर जो उपन्यास लिखे गये हैं उनको प्रकाशित करने का उत्स रहा है ।

परिशिष्ट

परिशिष्ट
ग्रंथानुक्रमणिका

(क) आधारभूत ग्रंथ

क्रम	*ग्रंथ का नाम*	*लेखक*	*प्रकाशक*	*वर्ष*	*संस्करण*
१	अपराजित	मन्मथ नाथ गुप्त	दिल्ली	१९६०	प्रथम संस्करण
२	अप्सरा	सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'	लखनऊ	१९६४	ग्यारवाँ संस्करण
३	अल्का	सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'	लखनऊ	१९६४	षष्ठ संस्करण
४	आत्मदाह	आचार्य चतुर्सेन शास्त्री	दिल्ली	१९६०	तृतीय संस्करण
५	आदर्श हिन्दू भाग १ थी ३	लज्जाराम शर्मा मेहता	काशी	१९०८	–
६	उल्का	रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'	इलाहाबाद		–
७	कल्याणी	जैनेन्द्र कुमार	दिल्ली	१९३२	तेईसवाँ संस्करण
८	कर्मभूमि	प्रेमचंद	इलाहाबाद	१९७३	–
९	कायाकल्प	प्रेमचंद	इलाहाबाद	१९६३	२९ वाँ संस्करण
१०	कुल्लीभाट	सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'	बम्बई	१९३६	प्रथम संस्करण
११	गबन	प्रेमचंद	इलाहाबाद	१९७२	वर्तमान संस्करण

१२	गांधी टोपी	राधिका रमण प्रसाद सिंह	शाहाबाद	१६३६	द्वितीय संस्करण
१३	गिरती दिवारें	उपेन्द्रनाथ अश्क	प्रयाग	१६५७	तृतीय संस्करण
१४	गोदान	प्रेमचंद	इलाहाबाद		वर्तमान संस्करण
१५	चढ़ती धूप	रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'	इलाहाबाद	१६५५	वर्तमान संस्करण
१६	चलते–चलते	भगवती प्रसाद बाजपेयी	दिल्ली	१६५२	प्रथम संस्करण
१७	जिव	मन्मथ नाथ गुप्त	इलाहाबाद	२००३	प्रथम संस्करण
१८	जीने के लिए	राहुल सांस्कृत्यायन	इलाहाबाद	१६४८	तृतीय संस्करण
१६	ज्वालामुखी	अनन्त गोपाल शेवड़े	कानपुर		–
२०	झूठासच	यशपाल	लखनऊ	१६५६	द्वितीय संस्करण
२१	त्यागपत्र	जैनेन्द्र कुमार	दिल्ली	१६६७	तृतीय संस्करण
२२	दादा कामरेड	यशपाल	लखनऊ	१६६७	सप्तम संस्करण
२३	देशद्रोही	यशपाल	लखनऊ	१६६३	पंचम संस्करण
२४	देश की हत्या	गुरुदत्त	नई दिल्ली	१६६६	चतुर्थ संस्करण

२५	धर्मपुत्र	आचार्य चतुर्सेन शास्त्री	दिल्ली	१९७२	
२६	निर्वासित	इलाचन्द्र जोशी	इलाहाबाद	१९५१	पंचम संस्करण
२७	निमंत्रण	भगवती प्रसाद बाजपेयी	प्रयाग	१९५६	प्रथम संस्करण
२८	पथिक	गुरुदत्त	नई दिल्ली	१९५७	चौथा संस्करण
२९	पार्टि कामरेड	यशपाल	लखनऊ	१९७२	अष्टम संस्करण
३०	पुरुष और नारी	राधिका रमण प्रसाद सिंह	शाहाबाद	१९५१	प्रथम संस्करण
३१	पूरब और पश्चिम	राधिका रमण प्रसाद सिंह	शाहाबाद	१९३६	–
३२	पतवार	भगवती प्रसाद बाजपेयी	दिल्ली	१९६७	–
३३	प्रेमालय	प्रेमचंद	इलाहाबाद	१९७१	वर्तमान संस्करण
३४	प्रतिशोध	दुर्गाप्रसाद खत्री	वाराणसी	१९६५	नवां संस्करण
३५	बयालीस	प्रतापनारायण श्रीवास्तव	दिल्ली		प्रथम संस्करण
३६	बयालीस के बाद (विसर्जन)	प्रतापनारायण श्री वास्तव	लखनऊ	१९७	आठवाँ संस्करण
३७	बीज	अमृतराय	इलाहाबाद	१९६७	तृतीय संस्करण

३८	बलि का बकरा	मन्मथ नाथ गुप्त	वाराणसी	१९६१	द्वितीय संस्करण
३९	बलचनमा	नागार्जुन	दिल्ली	१९६०	द्वितीय संस्करण
४०	बाबाबटेसरनाथ	नागार्जुन	इलाहाबाद	१९४७	–
४१	भाई	ऋषभ चरण जैन	दिल्ली	१९६२	प्रथम संस्करण
४२	भागो नहीं बदलो (दुनिया)	राहुल सांस्कृत्यायन	दिल्ली	१९७३	–
४३	भूले बिसरे चित्र	भगवती चरण वर्मा	दिल्ली	१९६४	–
४४	मनुष्यानंद (बुधुवा की बेटी)	पांडेय बेचेन शर्मा 'उग्र'	दिल्ली	१९५८	तृतीय संस्करण
४५	मशाल	भैरव प्रसाद गुप्त	इलाहाबाद	१९५७	द्वितीय संस्करण
४६	मुक्तिपथ	इलाचन्द्र जोशी	इलाहाबाद	२०२०	छठा संस्करण
४७	महाकाल	अमृतलाल नायर	लखनऊ	१९६२	आठवाँ संस्करण
४८	मेरा देश	धनीराम, 'प्रेम'	इलाहाबाद	१९६२	चतुर्थ संस्करण
४९	मनुष्य के रूप	यशपाल	शाहाबाद	१९५१	तृतीय संस्करण
५०	मैला आँचल	फणीश्वर नाथ 'रेणु'	इलाहाबाद	२०११	–
५१	मुक्ति के बंधन	गोविन्द वल्लभ पंत	काशी	१९१४	–

५२	रक्त मण्डल	पांडेय बेचेन शर्मा 'उग्र'	वाराणसी	१६७०	बारहवाँ संस्करण
५३	रंगमंच	मन्मथ नाथ गुप्त	दिल्ली	१६६०	प्रथम संस्करण
५४	रंगभूमि	प्रेमचंद	इलाहाबाद	१६७३	वर्तमान संस्करण
५५	राम–रहीम	राधिका रमण प्रसाद सिंह	इलाहाबाद	१६५६	–
५६	रैन अंधेरी	मन्मथ नाथ गुप्त	दिल्ली	१६५६	प्रथम संस्करण
५७	लज्जा	इलाचन्द्र जोशी	इलाहाबाद	२०१६	–
५८	विदा	प्रतापनारायण श्री वास्तव			
५६	विषादमठ	रांगेय राघव	इलाहाबाद	१६५५	–
६०	विवर्त	जैनेन्द्र कुमार	दिल्ली	१६६८	तृतीय संस्करण
६१	शेखर : एक जीवनी (उत्थान)	अज्ञेय	बनारस	१६६१	सप्तम संस्करण
६२	शेखर : एक जीवनी (उत्थान)	अज्ञेय	बनारस	१६६१	पंचम संस्करण
६३	संन्यासी	इलाचन्द्र जोशी	इलाहाबाद	१६५६	द्वितीय संस्करण
६४	सती सुखदेव (ब्रिगेड का सुधार)	लज्जाराम शर्मा मेहता	बम्बई	१६०३	–
६५	सीधा–सादा रास्ता	रांगेय राघव	दिलली	१६५४	प्रथम संस्करण

६६	सुकैद शैतान	पांडेय बेचेन शर्मा 'उग्र'	वाराणसी	१९६८	चतुर्थ संस्करण
६७	सतीमैया का चोरा	भैरवप्रसाद गुप्त	इलाहाबाद	१९५९	प्रथम संस्करण
६८	सुखदा	जैनेन्द्र कुमार	दिल्ली	१९४१	द्वितीय संस्करण
६९	सुनीता	जैनेन्द्र कुमार	लखनऊ	२००७	तृतीय संस्करण
७०	सत्याग्रह	ऋृषभ चरण जैन	दिल्ली	१९५३	प्रथम संस्करण
७१	स्वराज्यदान	गुरुदत्त	नई दिलली	१९५९	प्रथम संस्करण
७२	स्वाधीनता के पथ पर	गुरुदत्त	नई दिल्ली	१९५५	चतुर्थ संस्करण
७३	सेवासदन	प्रेमचंद	प्रयाग	२००७	प्रथम संस्करण
७४	हरहाईनेस	ऋृषभ चरण जैन	प्रयाग	२०१५	–
७५	हिन्दू गृहस्थ	लज्जाराम शर्मा महेता	लखनऊ	१९६३	द्वितीय संस्करण

(ख) सहायक ग्रंथ सूची

क्रम	ग्रंथ / उपन्यास का नाम	लेखक	प्रकाशक	वर्ष	संस्करण
१	आधुनिक हिन्दी साहित्य	नन्ददुलारे वाजपेयी	इलाहाबाद भारतीय भण्डार	२००७	प्रथम संस्करण
२	आधुनिक हिन्दी साहित्य	वार्ष्णेय लक्ष्मीसागर	इलाहाबाद हिन्दी परिषद (विश्व विद्यालय)	१९४८	–
३	कांकोरी की भेंट	प्र.रामप्रसाद बिस्मिल	दिल्ली पथिक एण्ड कम्पनी	१९३२	–
४	कांग्रेस का इतिहास (प्रथम खण्ड)	सीतारामैया पट्टाभि	नई दिल्ली सस्ता साहित्य मण्डल	१९४८	पांचवाँ संस्करण
५	कुछ विचार	प्रेमचंद	इलाहाबाद, सरस्वती प्रेस	१९६५	प्रथम संस्करण
६	खंडित भारत	डॉ. राजेन्द्र प्रसाद	बनारस, ज्ञानमण्डल पुस्तकभंडार	१९४७	द्वितीय संस्करण
७	गदर पार्टि का इतिहास	प्रीतमसिंह पंछी	दिल्ली आत्माराम एण्ड सन्स	१९६१	प्रथम संस्करण
८	ग्रामस्वराज्य	महात्मा गांधी	अहमदावाद, नवजीवन प्रकाशन मंदिर	१९६३	प्रथम संस्करण
९	नयी समीक्षा	अमृतराय	हिन्दुस्तानी पब्लिशिंग हाऊस	२०००	प्रथम संस्करण

१०	प्रेमचंद : साहित्यिक विवेचन	नन्ददुलारे वाजपेयी	इलाहाबाद हिन्दी भवन	२०१६	प्रथम संस्करण
११	प्रेमचंद : कलम का सिपाही	अमृतराय	इलाहाबाद, हंस प्रकाशन	१९६२	प्रथम संस्करण
१२	प्रेमचंदपूर्व हिन्दी उपन्यास	कैलाश प्रकाश	दिल्ली, सस्ता साहित्य संसार	-	–
१३	बात–बात में बात	यशपाल	लखनऊ विप्लव कार्यालय	१९५४	द्वितीय संस्करण
१४	भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन का इतिहास	मन्मथनाथ गुप्त	दिल्ली, आत्माराम एण्ड सन्स	१९६०	द्वितीय संस्करण
१५	भारतीय राष्ट्रवाद के विकास की हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्ति	सुषमा नारायण	दिल्ली हिन्दी साहित्य संसार	१९६६	प्रथम संस्करण
१६	भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास	ताराचंद	भारत सरकार प्रकाशन विभाग दिल्ली	१९६५	प्रथम संस्करण
१७	महात्मा गांधी का समाजवाद	सीतारामैया, पट्टाभि	प्रयाग, मातृभाषा मंदिर	१९४६	तृतीय बार
१८	मेरी कहानी (आत्मकथा)	जवाहरलाल नेहरू	नई दिल्ली, सस्ता साहित्य मण्डल	१९६१	दशवाँ संस्करण
१९	मेरे स्वप्नों का भारत	महात्मा गांधी	अहमदावाद नवजीवन प्रकाशन मंदिर	१९६०	प्रथम संस्करण

२०	राष्ट्रीय आंदोलन का इतिहास	मन्मथनाथ गुप्त	आगरा शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी	१९६२	द्वितीय संस्करण
२१	राष्ट्रीय स्वाधीनता और प्रगतिशील साहित्य	रामेश्वर शर्मा	नई दिल्ली मानव भारतीय प्रकाशन	१९५३	–
२२	साहित्य का श्रेय और प्रेय	जैनेन्द्र कुमार	दिल्ली, पूर्वोदय प्रकाशन	१९५३	प्रथम संस्करण
२३	सत्य के प्रयोग (आत्मकथा)	महात्मा गांधी	अहमदावाद नवजीवन प्रकाशन मंदिर	१९५७	तीसरा पुनर्मुद्रण
२४	स्वतंत्रता की ओर	हरिभाऊ उपाध्याय	नई दिल्ली, सस्ता साहित्य मण्डल	१९४८	परिवर्धित संस्करण
२५	हिन्दी उपन्यासकोश खण्ड प्रथम	गोपाल राय	पटना, ग्रंथविवकेतन	१९६८	प्रथम संस्करण
२६	हिन्दी उपन्यास उपलब्धियाँ	लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	दिल्ली राधाकृष्ण प्रकाशन	१९७०	प्रथम संस्करण
२७	हिन्दी उपन्यास सिद्धांत और समीक्षा	मक्खनलाल शर्मा	दिल्ली प्रभात प्रकाशन	१९६५	प्रथम संस्करण
२८	हिन्दी उपन्यास : उद्भव और विकास	सुरेश सिनहा	दिल्ली अशोक प्रकाशन	१९६५	प्रथम संस्करण
२९	हिन्दी उपन्यास का उद्भव और विकास	लक्ष्मीकान्त सिन्हा	कानपुर ग्रंथ भारती प्रकाशन	१९६६	प्रथम संस्करण
३०	हिन्दी उपन्यास	सुषमा धवन	दिल्ली राजकमल प्रकाशन	१९६१	प्रथम संस्करण

३१	हिन्दी स्वराज्य	महात्मा गाधी	अहमदावाद नवजीवन प्रकाशन मंदिर	१६६८	प्रथम आवृत्ति
३२	हिन्दी गद्यसाहित्य	शिवदानसिंह चौहान	दिल्ली, राजकमल प्रकाशन	१६५४	द्वितीय संस्करण
३३	हिन्दी उपन्यास	शिवनारायण श्री वास्तव	वाराणसी सरस्वति मंदिर	२०१६	प्रथम संस्करण
३४	हिन्दी साहित्य का इतिहास	आचार्य रामचंद्र शुक्ल	नागरी प्रचारीणी	२००६	पांचवा संस्करण
३६	हिन्दी उपन्यास विवेचन	डॉ. सत्येन्द्र	जयपुर कल्याण एण्ड सन्स	१६६८	प्रथम संस्करण

(ग) हिन्दी पत्र पत्रिकाएँ

१. आलोचना उपन्यास विशेषांक (नई दिल्ली) १६५४

२. हिन्दी विश्वभारती – लखनऊ – १६६४ खण्ड–१०

३. हिन्दी साहित्य कोश – सं. धीरेन्द्र वर्मा, वाराणसी–२०२० वि.स.

४. हिन्दी उपन्यास कोश – सं. गोपालराय – पटना १६६८ दोनो भाग

५. हिन्दी विश्वकोष, खण्ड सात तथा ग्यारह

☆☆☆